प्रकाशक :

लक्ष्मीचन्द तालेड़ा — अध्यक्ष

अभयराज नाहर — मन्त्री :

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय,

महावीर बाजार, ब्यावर (राज०)



मुद्रक :—श्री मदनलाल शर्मा के प्रबन्ध से

★ गणेश प्रिंटिंग प्रेस, लोढ़िया बाजार, ब्यावर ★

विहंगावलोकन

जैनधर्म दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित रत्न श्री चौथमलजी महाराज भी भारत के उन सन्तो मे से हो चुके है जिन्होने आर्यावर्त्त की जमीन पर अहिंसा का झण्डा ऊँचा किया है। जीवन को सत्य के सांस्कृतिक धरातल पर खड़ा कर मानव को महामानवता का पाठ पढाया है। उनका साक्षाद् प्रभाव हिन्दुस्तान की राजधानी देहली से लेकर भारत के दक्षिणी छोर बम्बई के सागर तक मेवाड, मारवाड, मालवा, गुजरात तथा महाराष्ट्र के जनता जनार्दन मे गहरा पडा है। उधर उत्तर मे यू पी और पूर्व मे सी. पी दिवाकरजी के आलोक से वर्षों तक जगमगाता रहा है। उनका जन्म मालवा के नीमच ग्राम में हुआ किन्तु उनकी जन्म जयन्तियां और मृत्यु वर्षियां समूचे भारत में मनाने का उत्साह देखा गया। वह २० वी शताब्दी के भारतीय धर्म परम्परा के महान् सन्त थे। वह एक युग मे हुए और युग युग तक चान्द और तारो की तरह चमक रहे हैं यही उनकी विलक्षणता थी। वह जीवन के पारखी युग द्रष्टा और अनुपम महात्मा थे। वह मानवता के पैर पखारने वाले पुजारी और महामानव के सन्देश वाहक तथा अहिंसा देवी की निर्माण हो रही साकार प्रतिमा के अमर कलाकार के रूप मे आये थे।

उनका गौर वर्ण, विशाल आनन, अलौकिक वर्चस्व, उभरा ललाट, उत्तु ग नासिका, स्निग्ध अमृत पयस्विनी आंखें, सुगठित

देह, लम्बे हाथ मांसल अँगुलियें, और गम्भीर मृदु उच्च घोष आकर्षण और प्रेम का बिन्दु बन गया था। उनकी लावण्य मयी शरीर सम्पदा तथा चढ़ते हुये पुण्य की शालीनता का उनमे इतना गहरा मोहक सम्मिश्रण हो गया था कि वह सहसा ही जन मानस मे इष्टदेव की तरह छा जाते थे। वे सौन्दर्य के निखरे, जीवन के उजले, और अन्तः बाह्य रूप से घुले हुए मानवीय युग के आदर्श महा पुरुष थे।

सम्भव है कि आप इसे सामन्त युगीन अतिशयोक्ति समझे! किंतु मैं कहूँगा कि मारवाड, मेवाड़, मालवा के ग्रामो में घूमिये, मैं गया हूं, मैंने अपनी खुली आँखों से देखा है दीन-हीन किसान जो कि एक अक्षर भी नही जानता वह भी अहिंसा का गान गाता है, और जिनवाणी की जय बुलाता है। वह हर किसी साधु सन्त को देख कर अपना दिवाकरजी का शिष्य के रूप मे परिचय देता है और उनकी याद करता हुआ झट कह देता है कि अब ऐसे महात्मा कहाँ? इतना कहते ही उसकी आँखें नीची हो जाती हैं जैसे किसी की याद बिजली की तरह कौंध जाती हो .... यह अमिट प्रभाव सब उसी सन्त का है। शत शत मूक पशुओ की गर्दन काटने वाले खान्दानी कसाई आज मुखपत्ती बान्ध कर सामायिक का रसपान लेते हैं। चर्मकार, चाण्डाल, कुम्हार, लक्कडहारे, भील, जाट, जमीदार आज भी उस महात्मा की याद मे अहिंसा देवी की पूजा करता है। दिवाकरजी के गीतो को गाकर अपने जन मानस को तृप्त करता है। अब जरा आइये अभिजात्य वर्ग की ओर सामतो की ओर, ठाकुरो की ओर, पटेलों की ओर राजा और राणा की ओर। अलवर से मालवा तक और गुजरात तक समूचे राज्य मण्डल के ठाकुरो, सामन्तों राजा

और राणाओं पर एक साथ सत्य और अहिंसा की छाप डालने वाला इतना समर्थ संत इस शताब्दी मे नही हुआ। कौनसा ऐसा राजा और राणा है जो दिवाकरजी के प्रभाव से अभिभूत नहीं हुआ हो। एक बार नही अनेको बार जिसने अपने आपको उस सन्त की शान्त और निर्भीक वाणी के आप्लावित न किया हो और उसके उपलक्ष्य में किसी न किसी रूप मे अमारी की उद्घोषणा न की हो। आज मेवाड उसके नाम के आगे नतमस्तक होता है, मालवा उसके दर्शनो का प्यासा है, और गुजरात उसके प्रेम का पुजारी है। यही क्या यू. पी सी पी. भारत का अधिकांश हिस्सा उस महात्मा का उपकार मानता है, वह मालवा की थाती और भारत की विभूति थे। ये वह महात्मा हैं जो राणाओ के गुरु, दीनो के भगवान् और अहिंसा के प्रचारक तथा जिनवाणी के वरद पुत्र और साधुओ के नेता आदि सब कुछ एक साथ ही थे। उनका प्रकाश रङ्क कुटीर से लेकर राजा के हर्म्यप्रासादो तक एक साथ जगमगाता था। समूचा भारत जिस मेवाड के राणा की स्तुति करता नही थकता, वह महाराणा उन महात्मा दिवाकरजी के गुणगान करते हुए नही अघाते। क्या उनके तेजस्वी जीवन को अभिव्यक्त करने मे इतना ही परिचय पर्याप्त नहीं होगा ?

सचमुच दिवाकरजी साक्षाद् दिवाकर थे, उनके परिचय की क्या आवश्यकता ? वह तो सागर की गभीरता, मेरु की उच्चता, और आकाश की विशालता के साकार सम्मिलित मधुर रूप थे। वह शिव की तरह देव, दानव और मानव की तरह अमीर गरीबों को एक साथ दया दान, दमन अहिंसा, अपरिग्रह, और अनेकान्त का उपदेश दिया करते थे। सचमुच वे महामना अन्तर्दृष्टा, ऋषि, और गहरे विचारक थे। वे आचार्यत्व

की अपेक्षा सुधारक और नेतृत्व की अपेक्षा समाज स्रष्टा के रूप में अधिक पनपे। यही कारण है कि उन्होने अपनी विचार धारा को जनता के सामने बहुत ही सीधे, सादे, स्पष्ट और सुथरे रूप मे रखा जिसका कि उपयोग राजस्थान और मालवा की निरक्षर और निरीह जनता झोली भर २ कर लाभ उठा सकी।

वे विद्वान थे? पण्डित थे ? बहुभाषा विज्ञ थे ? या नहीं थे ? ये समस्त प्रश्न उनकी बहुमुखी प्रतिभा और मगलमयी वाणी तथा ओजस्विनी वक्तृत्व शक्ति के आगे निर्मूल हो चुके हैं। कवि को कहना भी है:—

जात न पूछो सन्त की पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥

यहां ज्ञान का अर्थ परीक्षा और पाण्डित्य नही अपितु चिन्तनशील ज्ञानराशि है। अशान्त विश्व को पण्डितों और विद्वानों की अपेक्षा जितनी आज मानव की आवश्यकता है इतनी किसी की भी नहीं और वे थे मानवता का मन्त्र फूंकने वाले महामानव सन्त ।

उनके हृदय में मानसरोवर था, वह वाणी के निर्झर से अमृत बनकर छलकता था, बस कदाचित् इस अमृतास्वाद मेदुरा गिरा का जिसको एक बार भी आनन्द मिल गया वह सदा के लिये उनका शिष्य बन गया।

उनके जीवन के सस्मरण सजीव ढंग से प्रकाशित करने का किसी ने प्रयास नहीं किया दीखता है जिसका मुझे खेद

अवश्य है क्योंकि जितनी जिन्दा दिली उनके साक्षाद् जीवन में थी उतनी तेजस्विता उनकी कहानी मे नही भरी जा सकती फिर भी हम प्रेम, प्यार, और स्नेह की दिव्य मूर्ति श्री प्यारचन्दजी म० का तो धन्यवाद ही करेगे कि उन्होने उनके यत्र तत्र दिये गये व्याख्यानो को व्यवस्थित रूप देकर प्रकाशित करने का भगीरथ प्रयास किया।

आज दिवाकरजी म. का वह पार्थिव पिण्ड तो नही है किन्तु उनकी अक्षर देह अवश्य सुरक्षित रखने की भरसक चेष्टा की गई है। इन अक्षरों मे दिवाकरजी की आत्मा बोलती है। लय ताल, सुर की तरह उनकी शैली का चमत्कार भी खूब चमकता है। विविध भाषाओ का सामञ्जस्य, उदाहरणो का सम्मिश्रण, कविताओ दोहा चौपाइयो की बोछारें सब अपना २ रूप सवारें हुए है। किन्तु वह मिठास और वह जादू तो उसी अमृत वाणी मे था कौधती हुई बिजली की तरह उनकी कडक बसन्त मे झूमती हुई कोयल सी मृदुता और मयूर जैसी गूजती हुई घोषमय वाणी तो इन अक्षरो मे प्राप्त नही हो सकती किन्तु शैली जीवन दर्शन तो खूब कूट २ कर भरा हुआ है जिसकी आज भारत के मायावी मनुष्य को अधिकतम आवश्यकता है। जीवन के साधको, और आत्मा के विद्यार्थियो को इस दिव्यज्योति से मार्गदर्शन मिलेगा और मिलेगी, जागतिक निस्सारता। वह कवि थे, किन्तु रोमान्स से दूर शोधक के रूप मे, आलोचक के रूप में और उपदेशक के रूप में ही वे कवि थे। उनकी कविताएँ सीधी आत्मा पर चोट करती है और जीवन को समृद्ध तथा बुराइया से दूर रहने का उद्बोधन देती हैं। वे इसी उद्देश्य के लिये कविता करते प्रवचन देते और विश्व मे प्रचार करते थे। यही एक धुन थी जो कि

दिवाकरजी के पद-पद में ध्वनित हो रही है और अमानवीय दुर्व्यसनो के प्रति जलन-सी उभरती हुई धाँय-धाँय कर अनल प्रज्वलित होकर मानवता मे तेज भर रही है ।

मैं विश्वास करता हूं कि ये दिवाकरजी की दिव्य ज्योति समाज मे देश में और विश्व मे आकाश दीप की तरह, प्रकाश स्तम्भ की तरह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की अभ्यर्थना करने वाले संसार को प्रकाश के कण प्रदान करेगी और व्याख्यान साहित्य को समृद्ध बना देगी इसी मंगलमयी भावना के साथ अब मैं बिदा लूंगा । अधिक फिर कभी ।

मुनि सुशील

शास्त्री, भास्कर, प्रभाकर साहित्य रत्न

विद्यारत्न, आचार्य

विषयानुक्रमणिका







पुरुष-प्रभाकर

स्तुतिः—



स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुत त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानिसहस्त्ररश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाए जाएँ ?

संसार मे सैकड़ो स्त्रियाँ, प्रतिदिन, सैकडों पुत्रों को जन्म दिया करती हैं, मगर किसी ने, हे प्रभो ! तुम्हारे सरीखे पुत्र को

जन्म नही दिया ! और यह ठीक है, क्योकि सभी दिशाएँ नक्षत्रों के समूह को धारण करती हैं, मगर अकेली पूर्व-दिशा ही सूर्य को उगाती है ।

आचार्य महाराज ने बड़े ही भावपूर्ण शब्दो मे यहां भगवान् ऋषभदेवजी की विशिष्टता प्रदर्शित करते हुए स्तुति की है । भगवान् की माता का नाम मरुदेवी था । वे पूर्व दिशा के समान है और उनके उदर से जन्म लेने वाले भगवान् ऋषभदेव सूर्य के समान है । संसार की अन्य स्त्रियां, अन्य दिशाओ के सदृश है जो नक्षत्रो को तो धारण करती हैं अर्थात् साधारण पुत्रो को जन्म देती है, मगर सूर्यसदृश भगवान् ऋषभदेव को जन्म नही दे सकती ।

यहाँ भगवान् को सूर्य के समान बतलाया गया है । सूर्य रात्रि के गहन अधकार को नष्ट करके विश्व मे आलोक को प्रसारित करता है । यही नही, वह प्राणियो को जीवनी शक्ति देने वाला भी है । सूर्य के प्रताप से ही नाना प्रकार की औषधियाँ, धान्य एवं वनस्पतियाँ उगती है, और उनके सहारे जगत् का जीवन टिका हुआ है । सूर्य के हमारे प्रति असंख्य उपकार हैं । सूर्य न हो तो प्रकृति की सारी व्यवस्था छिन्नभिन्न हो जाय । भगवान ऋषभ-देवजी ने भी जगत् का इसी प्रकार महान् कल्याण किया है । उन्होने प्राणियो के अन्तः करण मे व्याप्त भाव-अन्धकार का नाश किया और जब उस समय की जनता का जीवन, कल्प वृक्षो के अभाव मे खतरे में पड गया था, लोगो को चारो ओर मृत्यु का अन्धकार ही अन्धकार दृष्टि गोचर होता था-प्रकार कीएक किरण भी किसी तरफ नजर नही आती थी, तब जनता की जीविका के उपायो का प्रदर्शन किया था । उन्होने धान्य उपजाने की विधि

बतलाई, उसे पकाने और खाने के तरीके बतलाये और इस प्रकार वे जगत् के महान् उपकारक हुए। अतएव भगवान् को सूर्य की उपमा देना उचित ही है।

सैकड़ो क्या करोडो और असंख्य तारे एवं नक्षत्र आदि मिल कर भी रात्रि के अन्धकार को दूर करके दिन नही बना सकते। किन्तु अकेला सूर्य समस्त अन्धकार को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार संसार के सैंकडो, हजारों करोडो मनुष्य मिल कर भी जो काम नही कर सकते थे, वह भगवान् ऋषभदेवजी ने अकेले ही कर दिखलाया।

संसार मे पुत्र को बहुत महत्त्व दिया जाता है। जिसके घर मे पुत्र नहीं हैं उसका घर सूना समझा जाता है। पुत्रहीन पुरुष और स्त्रियाँ अपने भाग्य को कोसती हैं। मगर पुत्र सब समान नही होते। कोई-कोई पुत्र अपने कुल को उज्जवल बनाता है और कोई ऐसा भी जनमता है जो कुल की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करना तो दूर रहा पहले की प्रतिष्ठा मे भी कलक का टीका लगा देता है। ऐसे पुत्रो का जन्म होने की अपेक्षा जन्म न होना ही अच्छा है, ऐसा नीतिकारो का कथन है। सत्पुत्र की प्रशसा करते हुए कहा गया है:—

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो, निर्गुणैः किं शतैरपि।
एकश्चन्द्रो जगच्चक्षुर्नक्षत्रैः किं प्रयोजनम्॥

सैंकडो गुणहीन-पुत्रों की अपेक्षा एक ही सद्गुणी पुत्र का जन्म होना अच्छा है। एक चन्द्रमा जगत् के नेत्र का काम

देता है। नक्षत्रों से क्या प्रयोजन है? तात्पर्य यह है कि जैसे चन्द्रमा आह्लादकारी होता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार अपने परिवार को आह्लाद उत्पन्न करने वाला और कुल की कीर्ति को प्रकाशित करने वाला एक ही पुत्र का होना बेहतर है, मगर इन गुणो से हीन सैकडो पुत्रों का जन्म होना भी निरर्थक है।

माता मरुदेवी की कूख से अकेले भगवान् ऋषभदेवजी का जन्म हुआ था। मगर उन अकेले ने ही अपनी माता को और अपने पिता को विश्व मे विश्रुत कर दिया! इसके विपरीत कौरव सौ भाई थे, मगर वे सब मिल कर अपने कुल के नाश के ही कारण बने।

कोटरान्तः स्थितो वाह्निस्तरुमेकं दहेत् खलु।
कुपुत्रस्तु कुले जात. स्वकुलं नाशयत्यहो!

वृक्ष की कोटर मे रही हुई अग्नि एक मात्र उसी वृक्ष को जलाती है, मगर कुल से जन्मा हुआ कपूत सारे कुल का नाश कर डालता है! ऐसे कपूत से उसके माता-पिता को क्या सुख मिल सकता है?

यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि कोई पुत्र कुपुत्र और कोई सुपुत्र क्यो होता है? दोनो के बीच अन्धकार और प्रकाश के समान जो अन्तर दिखाई देना है. इसका कारण क्या है?

इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं, परन्तु संक्षेप मे दो कारण बतलाये जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि जन्म

लेने वाला बालक यद्यपि वर्तमान जन्म मे नया पैदा हुआ है, फिर भी वह एकदम नवीव नही है। जन्म-जन्मान्तर के सस्कारो को साथ लेकर वह जन्म लेता है। इस प्रकार उसका अपना मौलिक अस्तित्व है और व्यक्तित्व है। उसके पूर्व जन्मो के संस्कार उसके वर्तमान जीवन के निर्माण मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है। उन्ही संस्कारों के अनुरूप उसका जीवन बनता है।

दूसरी बात वातावरण की है। बालक के आसपास जिस प्रकार का वायु-मण्डल होगा, वैसा ही प्रभाव वह ग्रहण करेगा और वैसी ही उसकी रुचि बन जायगी अगर बालक के माता-पिता धर्मनिष्ठ हैं नीति के अनुकूल चलने वाले है सचाई और प्रामाणिकता के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं, शान्त, क्षमाशील, दयावान् और शीलवान् हैं तो बालक के चित्त पर भी इन्ही सब सद्गुणो का प्रतिबिम्ब पडेगा। बालक का जीवन भी ऐसा ही बन जायगा। इसके विपरीत जो माता-पिता अधर्मी हैं, अन्यायी है, निर्दय हैं, क्रोधी हैं, बात-बात मे बिगडते झुंझलाते, बक-झक करते और झगड़ते हैं जिन्हे अपने पडौसी के प्रति भी सहानुभूति नही है, जो खाने पीने, पहनने ओढने आदि मे विवेक नही रखते है, उनका बालक भी वैसा ही होता है।

इस कथन का आशय यह है कि अगर माता-पिता अपने बालक को सुमार्गगामी बनाना चाहते हैं, अगर वे उसे सदाचारी के रूप मे देखने की इच्छा रखते है, अगर आप अपने बालक को धर्म प्रिय और नीतिनिष्ठ बनाना चाहते हैं, तो पहले आपको ऐसा बनना चाहिए। इसके विपरीत यदि आप धर्म की बाते करके अधर्म का आचरण करेगे, बच्चे को न्याय-नीति पर चलने

का उपदेश देंगे और स्वयं अन्याय एवं अनीति की राह पर चलेंगे तो बालक धर्मात्मा और न्यायी शायद ही बन सकेगा। हाँ, वह यह ढोंग करना अवश्य सीख लेगा कि धर्म की बातें करना चाहिए और अधर्म का आचरण करना चाहिए।

बहुत-से माँ-बाप समझते हैं कि हमारे बालक के कान हैं मगर आँखें नहीं हैं। अर्थात् बालक हमारी कही हुई बातों को तो सुनता है मगर हमारे कामों को नहीं देखता है! उनकी यह समझ एकदम भ्रमपूर्ण है। आप खयाल करें या न करें, बालक आपके सभी व्यवहारों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करता है और उसमें से बहुत-सी बातें सीखता और ग्रहण करता रहता है। इसलिए अपने उच्चार और आचार में अन्तर मत आने दो। अपने बालक को भला बनाना चाहते हो तो स्वयं भले बनो। बुराई से बचाना चाहते हो तो स्वयं बुराई से बचो।

भगवान् ऋषभदेव के पिता का नाम नाभि था और माता का नाम मरुदेवी था। दोनों अपनी उच्च मर्यादा में स्थित थे। जगत का कल्याण करने की सदैव भावना रखते थे। महाराज नाभि कुलकर थे, अर्थात् तत्कालीन प्रजा में व्यवस्था एवं नीति-मर्यादा के संस्थापक थे। भला ऐसे सुसंस्कारी, परोपकारी, सतोगुणी, उदार हृदय और दयालु पिता के पुत्र असाधारण क्यों न होते?

भगवान् ऋषभदेव इस अवसर्पिणीकाल के प्रथम तीर्थङ्कर थे। प्रत्येक सर्पिणी में चौवीस-चौवीस तीर्थङ्कर होते हैं कोई-कोई लोग यह तर्क उठाते हैं कि तीर्थङ्कर चौवीस ही क्यों होते हैं? इस तर्क का उत्तर यह है कि न तो कोई तीर्थङ्कर बनाने वाला है और

न बनने वाले तीर्थङ्करो को रोकने वाला ही है। यह सब निसर्ग का विषय है। निसर्ग अर्थात् प्रकृति के नियमो मे परिवर्तन नही होता। जिस मौसिम मे जितने घन्टे का दिन जितने घन्टे की रात्रि आजकल होती है, उतनी ही पहले भी होती थी और भविष्य में भी होगी। कोई कहे कि एक ही मौसिम मे किसी वर्ष बडी और किसी वर्ष छोटी रात्रि या दिन न होने का क्या कारण है? तो सिवाय इसके और क्या उत्तर दिया जा सकता है कि निसर्ग का ऐसा नियम है! यही बात तीर्थङ्करो के विषय मे समझनी चाहिए।

तीर्थङ्करों की संख्या का परिज्ञान केवलज्ञानियो को ही पूरी तरह हो सकता है। उन्होने अपने अपने अनन्त ज्ञान में जैसा देखा वैसा प्ररूपण किया! केवलज्ञानियो के कथन को प्रमाण मान कर जो तीर्थङ्करो का होना स्वीकार करता है, उसे उनके ही कथन को प्रमाणभूत मान कर उनकी सख्या पर भी श्रद्धा रखनी चाहिए। बहुत से विषय तर्कगम्य होते हैं और बहुत सी बाते श्रद्धागम्य होती हैं। तर्कगम्य बातो का निर्णय तर्क से ही करना चाहिए। उनमे श्रद्धा को घुसेड़ना उचित नही है। इसी प्रकार श्रद्धागम्य विषयो मे तर्क को घुसेडना अनुचित है। बुद्धिमान् पुरुष इसी प्रकार विवेक से काम लेते हैं।

प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के छह-छह आरे होते है। आज कल अवसर्पिणी काल का पांचवाँ आरा चल रहा है। इसका प्रथम आरा सुखमासुखमा था।

सुखमासुखमा आरे मे सुख ही सुख होता है। उस समय उत्पन्न होने वाले मनुष्य पूर्ण सुख मे अपना जीवन व्यतीत करते

हैं। उन्हे किंचित् भी दुःख नहीं होता है। वे न कभी बीमार होते हैं, न उन्हे कभी रोने का प्रसग हो आता है। न मिहनत करनी पडती है, न अदालत या पचायत के चक्कर में पडना पड़ता है। उस समय मे न आग होनी है और न लोग भोजन ही पकाते हैं। भोजन पकाने की आवश्यकता ही नही थी क्योंकि वे कल्पवृक्षों के ताजा फल खाकर ही अपना जीवन मजे से निर्वाह कर लेते थे। कोई धर्म या मजहब भी प्रचलित नही था। उस समय की जनता इतनी शान्तः अल्प कषायी और सात्विक थी कि मजहब प्रचलित न होने पर भी उनमे दुराचार, अनीति या मर्यादा के विरुद्ध प्रवृत्ति करने की कोई भावना नही थी।

कहा जा सकता है कि आग नही थी तो क्या उस समय के लोग रात्रि में अंधकार मे ही रहते थे ? बिना आग के प्रकाश तो किया नही जा सकता। मगर ऐसी बात नही थी। उस समय एक खास किस्म के पेड़ होते थे। उन्हे ज्योति कहते हैं। वे प्रकाश करने वाले हुआ करते थे। उनका प्रकाश इतना तीव्र होता था कि उसके सामने विजली और गैस का प्रकाश भी कोई चीज नहीं है। आज के विजली आदि के प्रकाश के कारण आँखो की ज्योति को क्षति पहुँचती है, मगर उस प्रकाश से किंचित् भी हानि नही होती थी। उस समय के लोगों में से किसी को भी चश्मा लगाने की जरूरत नही होती थी। प्रकाश वाले वृक्षो का होना कोई आश्चर्य की बात नही है। कहते है, हनुमानजी जब संजीवनी बूटी लेने गये थे तब वह प्रकाश मान हो रही थी। भारत के सुप्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने भी रात्रि के समय प्रकाश करने वाले वृक्षों का वर्णन किया है।

उस समय पढने-लिखने, वांचने आदि की प्रणाली प्रचलित नही थी। न किसी प्रकार का व्यापार-धन्धा होता था और न खेती ही होती थी। वृक्षो मे ऐसे पौष्टिक और बल वर्धक फल फूल लगते थे कि एक फल खा लेने से तीन दिन तक भूख नही लगती थी। वे फल इतने स्वादिष्ट होते थे कि आजकल के बढिया से बढिया पकवान भी उनकी बराबरी नही कर सकते थे। उन वृक्षो के पत्ते बहुत मुलायम होते थे। ऐसे मुलायम कि रेशम और मखमल भी उनके सामने तुच्छ हैं!

उस काल की जनता प्रकृति से अत्यन्त सात्विक होती थी। शान्तिमय जीवन था। न किसी प्रकार की मानसिक चिन्ता थी, न शारीरिक व्याधि थी। औषध का उपचार करने की आवश्यकता नही पडती थी। न कोई वैद्य था, न हकीम था। जब बीमारी ही नहीं थी तो वैद्य-हकीम करते भी क्या? सात्विक जीवन होने के कारण सभी लोग सबल थे और गहने बनवाने का रिवाज न होने पर भी सब बडे ही सुन्दर और भव्य दिखाई देते थे। उस समय के फूल शरीर पर धारण कर लिये जाते थे। तो वे ऐसे खूबसूरत दिखाई देने लगते थे मानो वनदेवता हो! उनके शरीर का प्रत्येक अग परिपूर्ण और सुन्दर होता था। आँखें कान, नाक आदि की बनावट पूरी तरह सुन्दर होती थी।

उस समय की एक बडी विशेषता यह थी कि उन लोगों को बुढापा नही आता था। वे मरते समय तक नौजवान ही बने रहते थे। पुरुष और स्त्रियाँ दोनो ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। जब मृत्यु के छह महीने शेष रह जाते थे तब उनकी बुद्धि मे विकार उत्पन्न होता था और स्त्री-पुरुष आपस मे सयोग करते

थे। जब मृत्यु के ४६ दिन बाकी रहते तब स्त्री एक युगल को जन्म देता था। अन्त मे छींक और खाँसी आने से उनकी मृत्यु हो जाती थी। मृत्यु हो जाने पर उनका शव जलाया नहीं जाता था, बल्कि पानी मे बहा दिया जाता था। उनके शरीर से किसी प्रकार की बदबू नही आती थी।

उस समय की भूमि रेशम की तरह मुलायम थी। कभी कही काँटा लगने का भी काम नही था। मनुष्यो की सख्या कम थी। आयु खूब लम्बी—तीन पल्योपम की होती थी। शरीर की ऊँचाई तीन कोस की होती थी।

आजकल पाँचवाँ आरा चल रहा है। मनुष्यो की आयु और शरीर की ऊँचाई घटते-घटते इतनी कम हो गई है कि उस समय के लोगो की आयु और ऊँचाई पर कई लोगो को आज विश्वास भी नहीं आता! यह मानवजाति के शरीरिक ह्रास का और भी प्रबल प्रमाण है! कभी-कभी जमीन के भीतर से किसी जानवर या मनुष्यो के देह का ढांचा आजकल भी मिल जाता है. जिससे प्राचीन काल की लम्बाई का खयाल आ जाता हैं। चीनदेश में मछली की आँख का दरवाजा है! मगर चाहे हो या न हो इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि आज मानव जाति की जितनी उम्र है और शरीर की जो लम्बाई है, उसकी अपेक्षा पहले अधिक थी और ज्यो-ज्यो हम भूतकाल की ओर देखते हैं, वह बढी हुई ही प्रतीत होती है। इस ख्याल से अगर विचार किया जाय और हमारा गणितशास्त्र अगर ठीक तरह काम दे सकता हो तो उक्त कथन की सचाई में सन्देह करने का कोई कारण शेष नही रह

जाता ! यह पहला सुखमासुखमा आरा चार कोड़ाकोड़ी साग-रोपम का गुजर चुका है। अर्थात् इतने लम्बे समय तक ऐसी ही स्थिति रही।

दूसरे आरे का नाम सुखमा है। यह पहले आरे की अपेक्षा कुछ उतरता हुआ काल है, मगर इसमे भी सब बातें पहले आरे के समान ही होती हैं। शरीर का कद और आयु में कुछ कमी हो जाती है। वर्ण, सर, गध, और स्पर्श की उत्तमता मे कमी हो जाती है। आयु दो पल्योपम की रह जाती है। प्रथम आरे मे ४६ दिन तक ही सन्तान का पालन-पोषण करना पडता था, मगर दूसरे आरे मे ६४ दिन पालन करना पडता है। खान-पान आ-जीविका आदि की प्रणाली पहले आरे के समान ही होती है। यह आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का होता है।

दूसरा आरा पूरा होने पर तीसरा प्रारम्भ होता है। इस आरे में वर्ण, रस, गध, स्पर्श की उत्तमता मे और भी कमी हो जाती है। आयु एक पल्योपम की होती है। ७६ दिन पहले सतान की उत्पत्ति होती है। दूसरे आरे मे दो दिन बाद आहार करने की इच्छा होती थी तो इस तीसरे आरे मे, एक दिन बीच मे छोड कर आहार करने की इच्छा होता है। क्योंकि फल फूल आदि का सत्त्व हीन हो जाता है। इस आरे का नाम सुखमदु खम आरा है। इसमे जनता को कुछ २ दु ख होने लगता है। पहले कोई चीज माँगनी नही पडती थी, अब वृक्षो के पास जाना पडता है खोज करनी पडती है। ज्यो-ज्यो समय व्यतीत होता गया, हालत बदलती गई। आखिर ऐसा समय आ पहुँचा कि वृक्ष फल-फूल बहुत कम देने लगे। आवश्यकता की पूर्ति मे कमी

पड़ने लगी। जब आवश्यकता ज्यादा हुई और वस्तु कम मिलने लगी तो लोगों की नीयत में फर्क पडना शुरु हुआ। एक दूसरे मे छीना झपटी होने लगी। आपस मे रगडे-झगडे शुरु हो गये। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस कहावत के अनुसार आपस के झगडों को मिटाने के लिए पंच मुकर्रर करने की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। अगर कोई किसी की कोई चीज लेता था तो वह पंच के पास शिकायत करने जाता था। पच उसे दण्ड देते थे। मगर वह दण्ड सिर्फ एक शब्द मे होता था—हूं !

लोगों मे उस समय निर्लज्जता या धृष्टता नहीं थी। वे तब भी सीधे सादे, भोले और शान्त स्वभावी थे ! "हू !" इतना शब्द सुनते ही वे लज्जित हो जाते थे ! 'हूं' यह शब्द अपराधी के अपराध पर खेद प्रकट करवे के लिए था। यही दण्ड उस समय काफी समझा जाता था। मगर जमाना रुका नही। वह ह्रास की ओर बढता ही चला गया। प्राकृतिक साधनो की लगातार, धीरे धीरे कमी होती गई और इस कारण छीना झपटी और आपसी तकरार भी बढती ही चली गई। तब 'हूं' के साथ एक बड़ा दड 'मा' चालू हुआ। अपराधी को 'मा' कह दिया जाता तो वह लज्जित हो जाता था। 'मा' का अर्थ है नही। अर्थात् ऐसा काम अब मत करना। यह दण्ड उस जमाने मे भारी दण्ड समझा जाता था।

मगर जमाने के साथ लोगों का मनोभाव पलटता ही चला गया। जब निर्वाह के साधनो में और भी कमी हो गई तब आपसी खीचतान और भी ज्यादा बढ गई। 'हू' और 'मा' दण्ड से काम नही चला तब तीसरा दण्ड 'धिक्' का आविष्कार हुआ। पंच

अपराधी को 'धिक' कहकर दडित करने लगे। यह सख्त से सख्त सजा समझी जाती थी।

उस जमाने के पंचों या व्यवस्थापकों को 'कुलकर' कहते थे। पाच कुलकरो के जमाने तक 'हू' दण्ड प्रचलित रहा, उनके बाद पांच कुलकरो के जमाने मे 'मा' दण्ड चालू रहा और फिर पाँच कुलकरो के समय में धिक्' दण्ड का प्रचार रहा।

पन्द्रहवें कुलकर नाभि थे उनकी पत्नी का नाम मरुदेवी था। उनके जमाने मे कल्प वृक्षो से प्रायः फल आदि वस्तुएँ मिलना बन्द-सा हो गया। बहुत कम वस्तुएँ मिलती थी अतएव लोगों को कष्ट का सामना करना पडा। मारपीट और छीना-झपटी बहुत बढ गई। जब जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ प्राकृतिक साधनो से पूरी न हो सकी तो लोग करते भी क्या? यो कहना चाहिए उस समय के लोग बडी मुसीबत मे पड गये थे। खेती करना आदि आजीविका का कोई भी उपाय वे जानते नही थे। पूरी तरह प्राकृतिक पदार्थों पर ही वे निर्भर थे। अब करे तो क्या करें? ऐसे विकट समय मे किसी असाधारण एवं अलौकिक पुरुष की आवश्यकता थी, जो बदले हुए जमाने के अनुसार जीवन-निर्वाह के नये तरीके निकालता और लोगो को सिखला कर उनके जीवन की रक्षा करता! जनता के महान् सौभाग्य से उसी समय महारानी मरुदेवी की कूख से आदिनाथ प्रभु ने जन्म लिया?

चौंसठ इन्द्रो ने भगवान् का जन्म-महोत्सव मनाया। उस महोत्सव को देख कर जुगलिया आश्चर्य मे पड़ गये! सोचने

लगे कि ऐसा अनोखा ठाठ तो हमने कभी नही देखा ! धीरे-धीरे ऋषभदेवजी बडे होने लगे। उनके खिलाने आदि का समस्त कार्य देवियो ने किया।

इस समय तक काफी परिवर्त्तन हो चुका था। प्रकृति मे बहुत तेजी से परिवर्त्तन हो रहा था और लोगो की वृत्तियाँ भी बदल गई थी। अब तक एक युगल सिर्फ एक ही युगल को जन्म देता था और जन्म देने के कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती थी, मगर अब ज्यादा और जल्दी जोड़े उत्पन्न होने लगे। पहले सात्विक पदार्थ ही थे, अब राजस और तामस भी होने लगे। सतोगुण मे शान्ति रजोगुण मे कुछ शान्ति और कुछ गर्मी (क्रोध) और तमोगुण मे तीव्र गर्मी होती है।

बीस लाख पूर्व की उम्र तक भगवान् कुंवर की अवस्था मे ही रहे। जनता की बदली हुई वृत्तियो को देखते हुए नाभि राजा से जब काम नही चला तो उन्होने कहा कि तुम लोग ऋषभदेवजी को राजा बना लो। राज्याभिषेक का समय आया तो देवताओ ने सारी व्यवस्था की। भगवान् के अभिषेक के लिए वे पानी भी लाये। जब अभिषेक करने को तैयार हुए तो विचार मे पड गये कि पानी कहाँ ढोरें ? मस्तक पर तो मुकुट और आभूषण धारण किये हुए हैं ! आखिर उन्होने पैरो पर पानी डाला। देवताओ ने देखा कि ये बडे विनीत हैं, अत उनकी नगरी का नाम विनीता रख दिया। विनीता नगरी का दूसरा नाम अयोध्या हुआ। इस अवसर्पिणी काल में वही सब से पहली नगरी है।

भगवान् ऋषभदेवजी के समय तक न खेती होती थी, न वस्त्र या बरतन बनाने की कला ही प्रचलित हुई थी। जैसा कि

पहले कहा जा चुका है, उस समय की जनता पूर्ण रूप से प्रकृति-जीवी थी। वृक्षो से मिलने वाली सामग्री पर ही निर्भर थी। कृत्रिमता लेशमात्र भी नही थी। न किसी कला का जन्म हुआ था, न कोई विज्ञान था।

समय अपना प्रभाव डाल रहा था। लोगों की पाचनशक्ति धीरे धीरे कम होती जाती थी। फलो को पचाने मे जब कठिनाई होने लगी तो भगवान् ने सिखलाया कि पहले फलों को बगल मे दबा कर रक्खो और बाद मे खा लिया करो। मगर इस प्रकार करते-करते भी जगलों के वृक्ष धीरे धीरे सूखने लगे। अतएव उनसे जो सामग्री मिल रही थी, वह बन्द होने लगी। यही नहीं, अनेक नयी नयी बाते भी होने लगी, जो उस समय के लोगों के लिए एकदम नवीन थी और नवीन होने के कारण आश्चर्य जनक भी थी। सूखे हुए वृक्षो की आपस की रगड से कभी-कभी आग पैदा हो जाती थी। आग को उस समय के लोग जानते नही थे। उन्होने न आग कभी देखी थी और न आग की उन्हे कल्पना ही थी! आग उस समय एक बडी अद्भुत चीज समझी गई! जब कभी, जिस किसी ने, पेडो की रगड से पैदा हुई आग देखी तो उनके विस्मय का पार नही रहा। उन्होने सोचा यह अनूठी चीज कहाँ से आई है? यह क्या चाज है? जब उनकी समझ में कुछ भी न आया तो वे भगवान् के पास दौडे गये! जाकर कहा दीन बन्धु! एक लाल-लाल से रग की न मालूम क्या चीज दिखाई दे रही है, जो छूने मे उष्ण मालूम पडती है।

भगवान् अवधिज्ञानी थे। वे समझ गये कि यह लोग आग के विषय मे कह रहे हैं। अतएव उन्होने उत्तर दिया—

देखो, तुम फलो को उस लाल-लाल वस्तु में डाल कर खा लिया करो। उसका नाम अग्नि है और उसे देवता भी कहते हैं। लोग भगवान् की बात सुन कर लौट गये। जब उन्होने फलो को अग्नि मे डाला तो वे जल कर राख हो गये। अब उस राख को वे कैसे खाते ? आखिर फिर भगवान् के पास गये। 'बोले भगवन् अग्नि देवता तो बड़ा स्वार्थी है ! वह हमारे लिये कुछ भी नही बचने देता। जितनी भोजन सामग्री उसमे डाली जाती है, सब को वह खुद ही हजम कर जाता है।' भगवान् ऋषभ लोगो के इस भोलेपन को देखकर मुस्किराये और फिर फलो को आग मे पकाने की विधि उन्होने बतलाई।

इसी प्रकार भगवान् ने बरतन बनाने की कला सिखलाई और उसकी उपयोगिता बतलाई। भगवान् ने १८ प्रकार की शिल्प कला को उस समय सिखलाकर लोगो के जीवन को नये सांचे मे ढालना आरम्भ किया।

पहले कहा जा चुका है कि उस समय खेती नही होती थी। न उस समय खेती को आवश्यकता थी और न उस समय के लोग खेती करना जानते ही थे जब वृक्ष अदृश्य होने लगे और उनके फल मिलना भी बन्द होने लगा और जीवन-निर्वाह की समस्या ने उग्र रूप धारण किया तो भगवान् ने कृषिकला की भी शिक्षा दी। खेत को जोतना, बोना, अनाज तैयार करना और फिर उसे काम मे लाना आदि सभी कुछ सिखलाया।

भगवान् की दो लड़कियाँ थी। एक का नाम ब्राह्मी दूसरी का नाम सुन्दरी था। उन दोनो को अठारह प्रकार को लिपियों

का ज्ञान कराया और स्त्रियों की चौंसठ कलाएँ सिखलायी। भरत, बाहुबलि आदि सौ पुत्र थे। सब पुत्रो को पुरुषो की बहत्तर कलाओ का शिक्षण दिया इस प्रकार समस्त कलाओं का भगवान् ने प्रचार किया।

पहले बतलाया जा चुका है कि एक युगल अपने जीवन के अन्तिम समय मे एक युगल को जन्म देकर मर जाता था। वही युगल पति-पत्नी के रूप मे रहता था। उस समय यह कल्पना नही था कि एक ही माता-पिता से उत्पन्न हुई सतान मे-स्त्री और पुरुष मे-दाम्पत्य सम्बन्ध कैसे हो सकता है? मगर भगवान् ने अपने ज्ञान मे देखा कि यह व्यवस्था अब चल नही सकेगी। कारण यह था कि अब नियमित रूप से युगल का जन्म नही होता था। कभी अकेला लडका जनमता तो कभी अकेली लडकी का ही जन्म होता था। ऐसी स्थिति मे पहले वाली व्यवस्था चालू नहीं रह सकती थी। कदाचित् वह चालू रक्खी भी जाती तो उससे अनेक प्रकार की हानियाँ होने की सभावना थी। अतएव भगवान् के विवाह पद्धति को नये सिरे से नींव डाली।

इस विवाह प्रणाली से लोगों मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हुए और शान्ति कायम रही। आज मानव जाति पर भगवान् का कितना महान् उपकार है! उन्होने जिंदगी को कायम रखने की विधियाँ ही नहीं सिखलाई, वरन् जिंदगी किस प्रकार सुखपूर्वक, शान्तिपूर्वक, नीति के साथ और व्यवस्थित ढंग से व्यतीत हो, यह भी बतालाया!

भाइयो! भगवान् ऋषभदेव ही इस कर्मयुग के आदि विधाता हैं। उन्होने जीवन-निर्वाह और जीवनयापन की लो

प्रणालियाँ प्रचलित की थी, आज वे ही चल रही हैं। इसका अर्थ यह न समझा जाय कि वे ज्यो की त्यो चल रही हैं। समय समय पर उनमे बहुत-से हेरफेर हुए हैं, अनेक युगो मे अनेक भारी–भारी परिवर्त्तन हुए हैं। कुछ तो समय के प्रभाव से, कुछ लोगो की बुद्धि मे भेद होने से और कुछ दूसरे कारणों से भी परिवर्त्तन आये हैं। कुछ परिवर्तन वांछनीय भी कहे जा सकते हैं और कुछ अवांछनीय भी। इतना सब होने पर भी कहा जा सकता है कि आज भी मनुष्य समाज उन्ही प्रणालियो की रूप-रेखा पर चल रहा है! भगवान् की स्तुति करते हुए विनयचन्दजी कहते हैं —

श्री आदीश्वर स्वामी हो,

प्रणमूं सिर नामी तुम भणी, प्रभु अंतरयामी आप।

मो पर महेर करीजे हो,

मेटीजे चिन्ता मन तणी, मारा काटो पुराकृत पाप ।।श्री०।।

आदि धरम की कीधी हो, भर्त क्षेत्र सर्पिणी काल मे।

प्रभु जुगल्या धर्म निवार,

तीर्थंकर जिन हुआ केवली, पहला नरवर मुनिवर हो।

प्रभु तीरथ थाप्या चार ।। श्री० ।।

भगवान् ने जगत् के जीवो का कष्ट मिटाने के लिए, अपार अनुकम्पा से प्रेरित होकर, असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, व्यापार, औषधनिर्माण, उद्योगधन्धा आदि-आदि सभी कुछ सिखलाया। यदि भगवान् ने यह सब बातें न सिखलाई होती तो मनुष्य जाति

घोर सकट में पड गई होती । पापों का ऐसा दौरदौरा शुरू हो जाता कि जिसकी कल्पना करना भी कठिन है !

इस तरह जब सामाजिक जीवन व्य-वस्थित हो गया और जनता नये तरीको से अपना जीवन-निर्वाह करने लगी तो भगवान् ने लोगो को लोकोत्तर कल्याण करने का मार्ग प्रदर्शित करने का विचार किया । जब तक सामाजिक जीवन व्यवस्थित नही होता और जीवन मे न्याय-नीति की प्रतिष्ठा नही होती, तब तक धर्म की आराधना नही हो सकती ।

भगवान् ने जनता का ध्यान शरीर से आगे आत्मा की ओर खीचने का विचार किया । तब स्वर्ग से देवता आये । उन्होने भगवान् के वैराग्य की अनुमोदना की और प्रार्थना की–प्रभो ! संसार के हित के लिए आपने सब रीतियाँ बतला दी हैं, अब अनुग्रह करके धर्म की रीति भी बतलाइए । जगत् का अब लोकोत्तर कल्याण भी कीजिए ।

तब भगवान् ने एक करोड आठ लाख सोनैया प्रतिदिन के हिसाब से एक वर्ष तक दान दिया । इस प्रकार धर्म का प्रारम्भ दान से हुआ । भगवान् ने अपने कृत्य से यह जाहिर कर दिया कि दान पहला धर्म है ।

भाइयो ! दान का बडा महत्त्व है । दान की महिमा इसी से समझी जा सकती है कि तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा लेने से पहले दान धर्म का ही सेवन करते हैं । कृपण और लोभी के हाथ से दान नही दिया जाता । दान उदारता का लक्षण है । जिसमे यह लक्षण होगा, उसमे धर्म के अन्यान्य लक्षण भी स्वतः आ जाते हैं ।

उदारता के साथ क्षमा, निर्लोभता आदि गुण स्वयं खिचे चले आते हैं। मगर दान में ममत्व के त्याग की एवं परोपकार की भावना ही मुख्य रूप से होनी चाहिए। कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर,वाह-वाह लूटने के लिए,जो दान दिया जाता है,वह दान अशुद्ध हो जाता है। आज बहुत-से लोग अपनी आत्मा का मैल धोने के लिए, अपने ऊपर लदे हुए बोझ को कम करने के लिए, प्रायश्चित के लिए, आत्मशुद्धि के लिए या दूसरो के हित की उच्च भावना से दान नही देते । इसी कारण अपने दान का अधिक से अधिक विज्ञापन चाहते हैं । अखबारो मे, मोटे-मोटे टाइपो मे अपना नाम छपा देखकर फूले नही समाते ! इस प्रकार कीर्ति और प्रतिष्ठा के लिये दिया हुआ दान वैसा फल प्रदान नहीं करता जैसे कि करना चाहिए। अतएव आप मेरी बात मानो तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप अपनी शक्ति के अनुसार दान देने में कभी संकोच न करें। दान देने मे आप कभी दरिद्र नही होगे। दान से आपका सौभाग्य बढेगा ही, घटेगा नही। इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए आप उदारतापूर्वक दान दीजिए। किन्तु कीर्ति पाने की कामना मत कीजिए। यह कदापि न सोचिये कि कीर्ति की कामना का परित्याग कर देने से आपको कीर्ति नही मिलेगी। कामना करने से कीर्ति नही मिलती । ऐसा होता तो कीर्ति की कामना किसे नही होती ? सभी कीर्ति चाहते हैं और इस कारण सभी को कीर्ति मिलनी चाहिए थी। मगर मिलती नही है। कीर्ति आपके सदाचार से और सद्गुणो से प्राप्त होगी । अगर आपका आचरण ऊँचा है, अगर आपके जीवन मे सद्गुणों की सुगंध है, अगर आपके कार्यों मे नीति की परम उज्ज्वलता है, अगर आप धर्म के द्वारा प्रदर्शित पथ पर ही चलने को

उद्यत रहते हैं तो कीर्ति आपके पास भागी-भागी आयेगी । आप न चाहेगे तो भी आयेगी । आप ठुकरायेगे तो भी वह आपके चरणो मे लोटेगी । वह आपका पीछा करेगी, आपका पिंड नही छोडेगी । फिर आप क्यो कीर्ति के पीछे पीछे भटकते हैं ? दान-धर्म को क्यो धब्बा लगाते हैं ? क्यो धर्म के फल मे कमी करते है ?

तात्पर्य यह है कि अगर आप निष्काम भाव से, स्व पर कल्याण के ही भाव से दान देगे तो आपको दान का पूरा फल भी मिलेगा और आनुषगिक रूप से कीर्ति भी मिल ही जायगी ! और अगर कीर्ति की कामना से दान करेगे तो कीर्ति तो मिलेगी मगर दान का पूरा फल नही मिलेगा । इस प्रकार आप घाटे मे रह जाएँगे ! फिर नफा और घाटे मे सदा सावधान रहने वाले लोग क्यो भ्रम में पडकर घाटे का सौदा करते है ? भाइयो ! निष्काम भाव से दान देना सीखो । दान देने से आपका कल्याण होगा और दूसरो का भी हित होगा । दान, धर्म का पहला लक्षण है । तीर्थङ्करों ने दीक्षा लेने से पहले दान देकर यही तत्त्व जगत् को प्रदर्शित किया है और उसका अनुकरण करने मे ही आपका हित है ।

भगवान् को भलीभांति विदित था कि इस कर्मयुग में राज्य-व्यवस्था के विना काम नही चल सकता । जब तक वे स्वय गृहस्थावस्था मे रहे, जनता पर शासन करते रहे अर्थात् उसकी समुचित व्यवस्था करते रहे । जब उन्होने गृहस्थी त्याग कर साधु बनने का संकल्प किया और जगत् को उच्चतर मार्ग दिखलाने की तैयारी की तो शासन-व्यवस्था का भार अपने लडकों के सुपुर्द कर दिया । अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अयोध्या की

व्यवस्था सौंपी और शेष पुत्रो को विभिन्न प्रान्तो का व्यवस्थापक बनाया।

यद्यपि इससे पहले पन्द्रह कुलकर हुए थे और वे भी एक प्रकार से शासन करते थे मगर वे पचो के रूप में ही थे। नियमित राज्य-व्यवस्था उस समय चालू नही हुई थी। कर्मयुग स्थापित हुआ और नियमित राज्य व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकता आ पडी तो सर्वप्रथम आदिनाथ ने ही उसका सूत्रपात किया। यही आज की राज्य-व्यवस्था का प्रारंभिक इतिहास है। स्मरण रखना चाहिए कि इस व्यवस्था के मूल मे प्रजा की सेवा सुविधा और सुव्यवस्था की ही भावना मुख्य थी। धीरे धीरे परिवर्तन होता गया, मानवीय भावनाएँ बदलती गई और राजाओ मे सेवा के बदले अधिकार का लोभ जागृत हुआ।

भगवान् जब सारी व्यवस्था करके और दानधर्म का प्रचलन करके दीक्षा लेने के लिए रवाना होने लगे तो भोलीभाली माता मरुदेवी ने समझा कि मेरा बेटा कही दूसरे गाँव जा रहा है। भगवान् की देखा देखी औरो ने भी की। कुल चार हजार मनुष्य भगवान् के साथ दीक्षा लेने चले। दीक्षा लेने के अनन्तर भगवान् ने मौन धारण कर लिया। छह महीने तक वे मौन साधन कर निराहार रहे। उसके पश्चात् अन्तराय का उदय होने के कारण छह मास तक उन्हे साधु के योग्य भोजन पानी नही मिला।

भगवान् दीक्षा लेते ही चार ज्ञानो के स्वामी हो गये थे। उनका बल, साहस और पराक्रम अनूठा था। वे इतने लम्बे समय तक निराहार रह सकते थे, परन्तु उनके साथ दीक्षित हुए दूसरे लोगो मे इतनी क्षमता नही थी। उनके सामने भगवान् के

समान, कोई स्पष्ट और उच्च ध्येय भी नही था । अतएव वे लोग भूख से व्याकुल हो गये । वे सोचने लगे—भगवान् न बोलते हैं और न आहार-पानी ही लेते हैं, मगर हम लोग तो भूख-प्यास से मरे जा रहे हैं ! आखिर कब तक भूख प्यास का यह दुस्सह दु ख सहन करे !

भूख को सहन करना कितना कठिन है—

वास कीधो बेलो कीधो, और जो कीधो तेलो,
अब तेला को आयो पारणो पाड़े जोर से हेलो ।
म्हारा अन्न देवता हो ! थे यहाँ पधारो राज !
थां बिन नही सरेला हो !

हायरे पेट ! तेरे लिए लोग क्या-क्या नहीं करते है ? इसी पेट के लिए लोग गदे से गदे और गर्हित से गर्हित काम करने को तैयार होते हैं और करते हैं । इसी पेट के पीछे लोग धर्म-अधर्म का विचार त्याग करके अपनी आत्मा को नरक-निगोद का अतिथि बनाते हैं । यह पेट देश-विदेश मे घुमाता है और कितने ही लोग अपने प्राणो को संकट मे डालकर साहस के काम करते हैं । सदैव अतृप्त रहने वाले अथवा यो कहे कि क्षण भर के लिए तृप्त होकर फिर अतृप्त हो जाने वाले पेट की पूर्ति के लिए न जाने कितनो को घु घरू बाँध कर नाचना पडता है, कितनो को गाना पडता है और अपने शरीर को पैसो पर बेच देना पडता है ।

लम्बी चौडी वातें वनाने वाले और जमीन-आसमान को एक कर देने का दम भरने वाले लोग भी, खाने को न मिले तो

सारी शेखी भूल जाते है। भूखा आदमी तमाम कलाबाजियाँ और सारे खेल को भूलकर दीन हीन हो जाता है। निर्जल एकादशी करने का मौका आता है तो पहले दिन पारणा की चिंता में रहता है। कभी फलाहार करके व्रत रखता है, तब तो पूछना ही क्या है ?

गिरी औ छुहारे खात किसमिस बादाम खात,
साठे और सिंघाड़े खात मिश्री के सवादी हैं।
दूधपाक गोंदपाक फली बेर आम खात,
खरबूजे तरबूजे से जोडी प्रीति सादी है।
मूंगफली शकरकन्द अरबी और कलाकन्द,
कुंदे के पेड़े से बहुत दिल राजी है।
कहत नारायण दुगुनी करत हारण,
कहने की एकादशी पर द्वादशी की दादी है॥

इतनी-इतनी चीजे खाकर भी कहता है कि रात बड़ी मुश्किल से बीती है। भाइयों! इस चमडी की भट्टी मे भूख की आग सुलग रही है! वह कभी शान्त नही होती! गोपालजी के मन्दिर मे एक पडा आया। वह भजन करने बैठ गया, इस आशा को लेकर कि गोपालजी आप ही खाने को देंगे! परन्तु गोपालजी के पास क्या रक्खा था देने को ? एक दिन गया, दूसरा दिन भी चला गया। तीसरे दिन शाम तक वह आशा लगाये बैठा रहा।

जव संध्या हो गई और भोजन का कोई रङ्गढङ्ग दिखाई न दिया तो उसने ऊबकर, निराश होकर कहा—

भूखे भजन न होय गोपाला !
यह लो अपनी कंठी माला ।

भाइयो ! समय पर भोजन न मिले तो सारा मामला गड-बड मे पड जाता है ! कोई शूरवीर योद्धा तलवार और बंदूक लेकर अकडता हुआ चलता है मगर यदि उसे खाना न मिले तो उसकी सारी अकड खत्म हो जाती है। हथियार जमीन पर पड़े लोटते है ! हाकिम साहब को अगर लघन करने का मौका आ जाय तो कलम ही न चले !

इस प्रकार अन्न का बडा महत्त्व है। संस्कृत साहित्य में 'अन्न वै प्राण' यह उक्ति प्रसिद्ध है जिसका अर्थ यह है कि प्राण, प्राण नही हैं बल्कि अन्न प्राण हैं, क्योकि अन्न के आधार पर ही प्राण टिके हैं ! अन्न जीवन की अनिवार्य आवश्यक वस्तु है। आप सोने-चाँदी के बिना जीवित रह सकते हैं, जवाहरात के अभाव मे आपका कुछ भी नही बिगड सकता, वस्त्रो के बिना भी शरीर बना रह सकता है, मगर अन्न के अभाव मे कितने दिन जिंदा रह सकते हैं ? शरीर खुराक के बिना काम नही दे सकता । आखिर तो खुराक पर ही जीवन की प्रवृत्तियाँ निर्भर हैं।

हाँ, तो मूल प्रसंग था चार हजार चेलो का ! भगवान् ऋषभदेवजी ने जब मौन धारण कर लिया और अनशनपूर्वक तपस्या मे लीन हो गये तो उसके चेले भूख से घबराने लगे ।

हालांकि भगवान् ने उन्हे दीक्षा लेने का उपदेश नहीं दिया था और न प्रेरणा ही की थी, वे स्वेच्छा से ही गृहत्याग करके निकले थे फिर भी वे भगवान् से पथ प्रदर्शन चाहते थे। भगवान् ने मौन व्रत अंगीकार कर लिया था। मौन व्रत अंगीकार न किया होता तो भी उस समय के लोग साधुओ को दान देने की विधि नही जानते थे। इस कारण निर्दोष भोजन मिल ही नही सकता था।

परिणाम यह हुआ कि बहुत-से लोग तो भाग-भाग कर अपने घर चले गये। कुछ लोक लज्जा के कारण घर नही लौट सके और वे वन मे ही रहते हुए वन के फल-फूल खाने लगे।

वनमें बाल कटवाने का कोई साधन नही था और केशलोच करना उन्हे आता नही था। अतएव उनके बाल बढ़ते चले गये और उन्होने जटा का रूप धारण कर लिया।

वे जटाधारी और फल-फूल पर निर्वाह करने वाले, भगवान् का भजन करने लगे और अपनी २ समझ के अनुसार धर्म का उपदेश करने लगे और अपने को ऋषभदेवजी का चेला प्रकट करने लगे। तभी से यहाँ नाना प्रकार के सम्प्रदाय और मार्ग चल पड़े। कहते हैं, भगवान् ऋषभदेवजी के युग मे ही ३६३ मत स्थापित हो गये थे।

यह सब तीसरे आरे का जिक्र है। तीसरे आरे के अन्तिम भाग मे आदिनाथ भगवान् हुए। शेष तेईस तीर्थङ्कर चौथे आरे में हुए हैं। पाँचवे आरे मे तीर्थंकर नही होते और न पाँचवे आरे मे जनमे हुए व्यक्ति मोक्ष पाते हैं।

कहा जा सकता है कि चौथे आरे तक ही तीर्थङ्कर क्यो होते हैं ? उसके बाद में क्यो नही होते ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस अर्से तक तीर्थङ्कर होते हैं,वह चौथे आरे में ही परिगणित कर लिया गया है। दूसरी बात एक उदाहरण से समझिए। जैसे, शादी होनी है तो कुछ समय बाद ही बच्चा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अवसर्पिणी काल का कुछ समय अर्थात् पहला और दूसरा आरा जब व्यतीत हो जाता है तभी तीर्थङ्कर का होना आरंभ होता है। इसी तरह जैसे पचास-पचपन वष की उम्र के पश्चात् सन्तान की उत्पत्ति होना बद हो जाता है, उसी प्रकार चौथे आरे के बाद तीर्थङ्करो का होना बन्द हो जाता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूपी स्त्रियो का बुढ़ापा आ जाने से फिर कोई तीर्थङ्कर रूपी बच्चा नहीं होता है।

भाइयो ! शास्त्र में छह द्रव्य बतलाये गये हैं। उनमें काल द्रव्य भी एक है। कालद्रव्य अन्य द्रव्यो की भाति अपना प्रभाव रखता है। उसके प्रभाव से ही यह सब व्यवस्था होती है। अगर पाँचवें और छठे तथा पहले और दूसरे आरे मे भी तीर्थङ्कर होते तो उनका होना स्वीकार करने मे बाधा ही क्या थी ? अब लोग भले ही यह कहते रहे कि 'आओ आओ कृष्ण दुलारे' अर्थात् 'आओ भक्तवत्सल ! आओ' मगर अभी वे नहीं आ सकते। जब जमाना बदलेगा तभी उनका आगमन होगा अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् अवतरित होगे।

चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी के पश्चात् उनके अन्यतम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी उनके पाट पर विराजमान हुए थे। वही सुधर्मा स्वामी राजगृही के उद्यान में पधारे और उन्होंने जम्बूकुमार को उपदेश दिया।

जम्बूकुमार की कथा:—

श्री सुधर्मा स्वामी के उपदेश मे न जाने कैसा जादू था कि तत्काल ही उसने अपना प्रभाव दिखलाना आरम्भ किया। जम्बूकुमार एक ही बार उपदेश सुन कर वैराग्य के रंग मे रंग गये।

जम्बूकुमार ने अपनी आठो स्त्रियों को क्रमशः उत्तर दे दिया। उनकी युक्तियां एवं तर्क समाप्त हो गये। जम्बूकुमार ने उत्तर देते हुए जो कुछ कहा उसमे कूट-कूट कर वैराग्य भरा हुआ था। मगर मोह के संस्कार भी कम प्रबल नहीं होते। आत्मा के ऊपर अनादि काल से मोह का साम्राज्य है। मोह के कारण आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को भूला हुआ है। इस कारण उन स्त्रियों पर जम्बूजी के कथन का पूरी तरह प्रभाव नही हुआ। वे सब मिलकर नाना प्रकार की मोहजनक और मोहजनित बाते कहने लगी। उन्होने कहा—प्रियतम! हम आपकी बातो मे नहीं आएँगी। ससार मे स्त्री के लिए पति ही एक मात्र आधार है। पति के बिना स्त्री का कोई आधार नही है। वृद्धावस्था मे पुत्र आधार होता अवश्य है, मगर आप हमें पुत्र का दान करके भी नही जा रहे हैं। अत आपके बिना हम सब अनाथ, निराधार और निस्सहाय है। आप जैसे दयावान् से ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि आप हमें तडफती हुई छोडकर, जीते जी नरक की आग मे झौंक कर दीक्षा ले लेंगे यदि आपका हृदय ऐसा निष्ठुर होगा तो आप संयम का पालन किस प्रकार कर सकेंगे? सयम का पालन करने के लिए अन्त करण मे अपार करुणा होनी चाहिए सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु के दु ख को भी अपने ही दु:ख के

समान गिनना चाहिए। मगर आप अपनी आश्रिता और अर्धाङ्गिनियो के प्रति ही निष्ठुर व्यवहार कर रहे हैं। यह निष्ठुरता और सयम परस्पर विरोधी हैं। जैसे पत्थर की चट्टान पर अंकुर नहीं उग सकते, उसी प्रकार कठोर हृदय मे सयम का कल्प वृक्ष भी नही उग सकता।

मुनिधर्म का सब से पहला लक्षण दया है। दया के अनेक रूप है। स्वयं अपनी ओर से किसी प्राणी को पीडा न पहुँचाना, कष्ट से पीडित प्राणी को यथायोग्य प्रयत्न करके कष्ट से छुडाना और जो कष्ट दे रहा है उसे उपदेश देकर रोकना आदि। दया की इस आधार भूमिका पर ही साधुता ठहरी हुई है। दया भावना के अभाव में साधुता पल भर भी नही टिक सकती। नाथ! आप निर्दयता की उपासना करके किस प्रकार साधुता धारण करेंगे?

हृदयवल्लभ! तनिक हमारी ओर तो दृष्टिपात कीजिए! आप हमारी ओर देखेंगे तो हमारा नूर विकसित हो जायगा। हे नाथ! हम आठो इन्द्रानियों के समान है और आप इन्द्र के समान है। हमे हाथ पकडकर पलग पर बिठलाइए और हमारा सत्कार कीजिए। हम कहाँ तक अनुनय–विनय करे प्रियतम! हमारे ऊपर आकाश और नीचे धरती है! आपके सिवाय हमारा और कोई आधार या सहारा नही है। आप हमारी आँखो के प्रकाश हैं। आपके बिना हमारे सामने अधकार ही अधकार है आप हमे त्याग देगे तो हमारा समग्र जीवन घोर अधकार मे डूब जायगा। अतएव हमारा त्याग न कीजिए। प्राणनाथ! आप हमारे सर्वस्व हैं। एक ओर समस्त संसार का वैभव हो

और दूसरी ओर आप हो तो हमारे लिए आप ही सब कुछ होंगे। आपके विना कुटुम्ब, परिवार किस काम का है ? यह ९९ करोड़ अशर्फियाँ किस काम की है ? आपके विरह की कल्पना से ही यह अशर्फियाँ ऐसी जान पडती हैं जैसे अंगार हों जो हमारे सुख को भस्म करने के लिए दहक रहे हैं। इसका प्रकाश ऐसा लगता है, मानों यह हमें देख-देख कर हँस रही हों ! इनकी ओर आँख उठा कर भी देखना हमारे लिए असह्य है !

और यह रत्न जडित पलंग आपके विना क्या शोभा देगा ? यह सूना पड़ा रहेगा और आपकी स्मृति को ताजा करके हमें रुलाया करेगा !

प्राणाधार ! कुलीन और श्रेष्ठ पुरुष अपनी प्रतिज्ञा से कदापि च्युत नही होते। आपने हमारा पाणिग्रहण किया है। पाणि को ग्रहण करके आपने हमारे जीवन भर का उत्तरदायित्व लिया है। मगर कल उत्तरदायित्व लेकर आज ही आप बदलने लगे ! क्या यह कुलीनता है ? क्या यही प्रामाणिक और श्रेष्ठ पुरुषो की मर्यादा है ? यह तो नारी जाति के साथ भयंकर खिलवाड है ! आप हमारे प्राणो के साथ मजाक कर रहे हैं, हमारे जीवन को नष्ट करने पर उतारू हुए हैं ! यह आपके लिए ऐसा व्यवहार करेंगे तो जगत् से मर्यादा ही उठ जायगी। अतएव आप जो उत्तरदायित्व अपने माथे पर ले चुके हैं, उससे बचने की चेष्टा मत कीजिए।

प्रभु महावीर ने-क्या एक मात्र साधु हो जाना ही धर्म बतलाया है ? गृहस्थों का धर्म क्या धर्म नही है ? क्या गृहस्थ धर्म

का पालन करने से मुक्ति नही मिल सकती ? भरत चक्रवर्ती ने कब साधु दीक्षा ली थी ? और क्या वे मोक्ष गामी नही हुए ? माता मरुदेवी ने किस आर्याजी के पास जाकर साध्वी दीक्षा ली थी ? क्या वे अक्षय और अनन्त सुख का पात्र नही बनी ? भगवान् ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

> संति एगेहि बिक्खूहि, गारत्था संजमुत्तरा ।
> गारत्थेहि य सव्वेहि, साहवो सजमुत्तरा ।।
>
> उत्त अ ५ गा २०

अर्थात् अनेक भिक्षुओ की अपेक्षा गृहस्थ संयम में श्रेष्ठ होते हैं। अगर आपको भगवान् के वचनो पर पूर्ण श्रद्धा है तो फिर गृहस्थ धर्म का ही पालन करके मोक्ष की साधना क्यो नहीं करते ? फिर साधुपन के लिए क्यो उतावले हो रहे है ?

आपके इस व्यवहार से तो ऐसा जान पड़ता है, मानो आप हमारा अहित ही करना चाहते है, किसी पूर्व जन्म में किये अपराध का बदला लेना चाहते हैं ! मगर आप जैसे भद्र पुरुषो का यह कर्त्तव्य नही है । देखिए प्रियतम ! पीपली का पेड़ फलो के लिए झूरता है और नागर वेल फलो के लिए झूरती है, इसी प्रकार हम सब सतान के लिए झूरती हैं। आप स्त्रियो का शाप अपने मस्तक पर मत लो ! क्या धर्मात्मा पुरुष भी इतने निष्ठुर हो सकते हैं ? क्या धर्म स्वार्थ साधन ही सिखलाता है ? खेद है कि हमारी समस्त जीवनव्यापी आशाओ पर आप पानी फेर रहे ! हम क्या-क्या आशाएँ बाँध कर यहाँ आई थी, कैसे-कैसे मन्सूबे किये थे ! हाय, क्या होना था और क्या हो

रहा है ? नाथ ! अधिक क्या कहे ? अब हमारा जीवन पुष्प आपकी मुट्ठी मे है। आप चाहे तो इसे मसल सकते हैं और चाहें तो इससे अपनी शोभा बढा सकते हैं। हमने मर्यादा लांघ करके भी बहुत कुछ कह डाला है। आप इसके लिए बुरा न मानें। सहृदयता के साथ हमारे कथन पर विचार करें और हमारी जीवन-नौका को पार लगा दें, यही हमारी प्रार्थना है, अनुनय विनय है !

भाइयो ! जरा विचार कीजिए। जम्बूकुमार के सामने कितनी कठिन समस्या है ? आज उनकी परीक्षा हो रही है ! क्या कोई साधारण पुरुष ऐसे प्रसग पर अपने विचारो पर स्थिर रह सकता है ? बहुत कठिन है ! मगर लोकोत्तर पुरुष कठिन से कठिन प्रसग आने पर भी अपने पथ से विचलित नही होते। अथवा यो कहना चाहिए कि जो पुरुष लक्ष्य से भ्रष्ट करने की परिपूर्ण सामग्री विद्यमान होने पर भी, लुभावने अतिशय लुभावने वातावरण के मौजूद रहते भी, अपने ही पथ पर चलते रहते हैं, जो झूठी मोह ममता मे फँसकर न स्वयं गिरते हैं और न दूसरो को गिराते हैं, वही असाधारण पुरुष कहलाते हैं ! वास्तव मे वही व्यक्ति धन्य और मान्य है जिसने धर्म के पथ पर चलने का एक बार संकल्प करके फिर उसका परित्याग नही किया है। जम्बुकुमार ऐसे ही धन्य और महाभाग पुरुष हो गये हैं। उनकी जीवनकथा युग-युगान्तर तक धार्मिक दृढता के लिए मुमुक्षु जीवो को बल प्रदान करती रहेगी।

अधिकांश लोग अपने जीवन में असफल क्यो होते हैं ? इसीलिए कि उनके किसी संकल्प मे दृढ़ता नहीं होती। ढीले-ढाले

विचार लेकर वे किसी कार्य में लगते हैं और दूसरे क्षण ही कोई कारण पाकर अपने विचार बदल डालते हैं। इस प्रकार कभी इधर और कभी उधर होते-होते वे किसी भी मार्ग पर प्रगति नही कर सकते। महान् व्यक्ति कदापि ऐसी भूल नही करते। गम्भीर मनोमन्थन करने के अनन्तर वे अपने लिए एक रास्ता चुन लेते हैं और फिर अपने सामर्थ्य को नाप तोल कर उस पर चलने का निश्चय करते हैं। जब उस पर चल पडते हैं तो बस चले ही जाते हैं, चले ही जाते हैं, रुकने का नाम नही लेते, लौटने का विचार नहीं करते! यह बात दूसरी है कि कभी उनकी रफ्तार मे तेजी हो और कभी ऐसा जान पडे कि चाल धीमी है मगर, चाल कभी रुकती नही, पैर उनके उसी रास्ते पर आगे-आगे बढ़ते जाते हैं! सैंकडो रुकावटें, सहस्रो कठिनाइयां और लाखो बाधाएँ भी उनके मार्ग को पलट नही सकती! ऐसा करने वाले सत्वशाली व्यक्ति ही जीवन मे महान् सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं! उन्ही को महत्ता प्राप्त होती है! उनका जीवन अनुकरणीय बन जाता है!

इसके विपरीत जिन मनुष्यो में मनोबल की हीनता होती है, जिनका संकल्प ढिल-मिल होता रहता है, जो तनिक-सी बाधा आते ही अपने पथ से च्युत हो जाने को तैयार रहते हैं, जो दूसरों की बातो से बहक कर या प्रभावित होकर अपने निश्चित किये हुए कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं और जो अपने संकल्प पर चट्टान की तरह अटल नहीं रहते, संसार मे उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही हो सकता। ऐसे लोगो को न कभी महत्ता मिली है और न मिल सकेगी।

जम्बूकुमार उग्रतर मनोबलशाली पुरुष-रत्न थे । उनका संकल्प सुमेरु की तरह निश्चल था । संसार की मोह-माया अथवा कुटुम्ब-परिवार के लोगो की ममता-प्रेरित प्रार्थना उन्हे अपने पथ से डिगा नही सकती थी । वे अपना ध्रुव ध्येय निश्चित कर चुके थे । उनके मनमे पूर्ण श्रद्धा हो गई थी कि मेरा निश्चय प्रशस्त है और उसी निश्चय की पूर्ति में उन्हे अपने मानव-जीवन की सार्थकता दिखलाई पड़ती थी । यही नहीं, वल्कि उन्हे अपनी पत्नियों का कल्याण भी इसी में दिखाई देता था । अतः वे अपने मनोरथ पर मजबूत रहे ।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो, येनेष्टं तेन गम्यताम् ।।

नीतिकार कहते हैं—हे मनुष्य ! तू जिस जगह खडा है, वहाँ से दो रास्ते फटते हैं— एक इन्द्रियो के असंयम का मार्ग है और यह मार्ग विपत्तियो का मार्ग है । अगर तू इन्द्रियों पर काबू नही करता तो नाना प्रकार की विपत्तियाँ तुझे झेलनी पड़ेंगी । दूसरा मार्ग इन्द्रिय विजय का है। इन्द्रिय विजय का मार्ग सम्पत्ति का मार्ग हैं। अर्थात् यदि तू अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेता है तो तुझे इसी लोक मे शान्ति, सन्तोष और निराकुलता रूप परम सम्पत्ति प्राप्त होती है और परलोक मे दिव्य सुख की प्राप्ति होगी । इस तरह तेरे समक्ष एक विपत्ति का मार्ग है और दूसरा सम्पत्ति का मार्ग है । तू दोनों मे से किस मार्ग पर जाना चाहता है ? तू स्वतन्त्र है, जिस मार्ग पर जाना चाहे, जा सकता है ।

भाइयो ! तुम किस मार्ग पर जाना चाहते हो ? तुम्हें विपत्ति का मार्ग इष्ट है या सम्पत्ति का मार्ग प्रिय है ?

कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो विपत्ति के मार्ग पर जाना चाहे ? वास्तव मे विपत्ति के मार्ग पर कोई नहीं चलना चाहता, मगर आश्चर्य है कि अधिकाश लोग न चाहते हुए भी विपत्ति के मार्ग पर ही चल रहे हैं। इतना ही नही, समझाने पर भी और समझ लेने पर भी वे उस मार्ग का त्याग नही करते है !

और कौन है जो सम्पत्ति के मार्ग पर न चलना चाहे । सभी चाहते हैं कि हम सम्पत्ति के मार्ग पर चलें मगर खेद है कि लोग चाहते हुए भी उस मार्ग पर चलने मे हिचकते हैं डरते हैं, कायरता दिखलाते हैं ।

संसारी जीवों की यह उलटी प्रवृत्ति देख कर ज्ञानी जन सोच-विचार मे पड जाते है कि आखिर क्या कारण है कि लोग जिस मार्ग को कल्याणकारी समझते है उस मार्ग पर तो चलते नही है और जिस मार्ग को अमगलकारी समझते है उसी पर चलते है । ज्ञानी जनो ने इस मानसिक बीमारी का निन्दा बतलाया है मोह ! इसे माया भी कहते हैं, भ्रम भी कहते हैं, अज्ञान भी कहते हैं, अविद्या, मुढता, अविवेक और कुसस्कार भी कह सकते है । आत्मा के बल को पराजित कर देने वाली वह शक्ति समस्त संसारी जीवों मे घर किये बैठी है । आत्मा और उसी विरोधी इस शक्ति मे निरन्तर संघर्ष चलता रहता है । जो आत्मा इस संघर्ष मे विजयी होता है, वह विरोधी शक्ति को परास्त करके सम्पत्ति के मार्ग पर चल पडता है । ऐसे आत्मा विरले

ही होते हैं अधिकांश आत्मा अपनी विरोधी शक्ति के द्वारा ही पराजित हो जाते है और वे उस शक्ति के आकर्षण से खिंचे हुए विपत्ति के बीहड़ मार्ग पर चलते हैं।

जम्बूकुमार और उनकी पत्नियों की विचारधारा में जो भेद हमे दिखाई देता है उसका मूल कारण भी यही है। जम्बूकुमार ने मोह-ममता रूप आत्मविरोधिनी शक्ति को परास्त कर दिया था और उनकी पत्नियाँ उसे परास्त नही कर सकी थी। इसी भेद के कारण जम्बूकुमार सम्पत्ति के मार्ग पर स्वयं चलना चाहते हैं और अपनी पत्नियों को भी चलाना चाहते हैं मगर उनकी पत्नियां स्वयं विपत्ति के मार्ग पर चलना और चलाना चाहती हैं ! जम्बूकुमार जानबूझ कर विपत्ति के मार्ग पर किस प्रकार चलते ?

कल्पना कीजिए, दो व्यक्ति साथ-साथ पैदल यात्रा कर रहे हैं। उनमे एक अंधा और दूसरा सूझता है। दोनों मे मार्ग के सम्बन्ध मे मतभेद उत्पन्न हो जाता है। अंधा मनुष्य सूझते के साथ साथ नही चलना चाहता। वह गड्ढों और खदकों के बीहड मार्ग पर चलना चाहता है। सूझता आदमी उस मार्ग पर नही चल कर दूसरे सुगम मार्ग पर जाना चाहता है। पर अन्धा उससे आग्रह करता है, अनुनय-विनय करता है और जब सूझता आदमी उसका कहना नही मानना चाहता तब वह रोता है। वह सिर्फ अकेला ही गड्ढों मे गिरने को कटिबद्ध नही होता, पर सूझते को भी साथ-साथ ले जाना चाहता है। अब आप बतलाइए कि सूझते आदमी का कर्त्तव्य क्या है ? वह अन्धे के अज्ञान जन्य रोदन को सुन कर उसके साथ अपने भी जीवन

को नष्ट करे अथवा अपने विचार पर दृढ रहे ? सूझते आदमी की जगह पर आप हो तो क्या करेंगे ?

जम्बूकुमार को विवेक रूपी नेत्र प्राप्त है और सुधर्मा स्वामी ने उन्हे यात्रा का शुगम और सही रास्ता दिखला दिया है। उनकी पत्नियो को विवेक नेत्र प्राप्त नही है। इस कारण वे ऐसे मार्ग पर चलना चाहती हैं जो आपत्तियों का मार्ग है आत्महनन का मार्ग है। फिर वे स्वय ही चलना चाहती हो सो बात नही है, जम्बूकुमार को भी वे उसी रास्ते पर ले जाना चाहती हैं। अब आप विचार कीजिए कि जान-बूझ कर, देखते-भालते वे आत्मघात के पथ पर किस प्रकार चल सकते हैं ? यही कारण है कि वे अपने निश्चय पर अटल है और अपनी पत्नियो के रोदन को देख-सुन कर भी उनके सुझाये पथ पर चलने को तैयार नही होते।

कहा जा सकता है कि जम्बूकुमार का हृदय बडा कठोर था। उन्होने अपनी पत्नियो के प्रति दयामय व्यवहार नही किया। मगर तत्वज्ञानी इस कथन को स्वीकर नही करते।

किसी व्यक्ति का कोई अङ्ग सड जाता है तो डाक्टर उसका ऑपरेशन करने की सलाह देता है। बीमार चीखता है, चिल्लाता है और ऑपरेशन न करने के लिए आजाजी करता है। अब सोचना चाहिए कि दयालु डाक्टर का कर्त्तव्य क्या है ? ऐसे अवसर पर ऑपरेशन करने मे दया है अथवा न करने मे ?

आप इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं ? क्या आप और क्या दूसरे समझदार लोग, एक स्वर से स्वीकार करेंगे कि बीमार

की सच्ची दया उसका ऑपरेशन करने मे ही है। उसके चीखने और चिल्लाने पर ध्यान देकर, उसका रोग बढने देने और ऑपरेशन न करने मे दयालुता नही है। ऐसी स्थिति मे ऑपरेशन करने वाला डाक्टर दयालु ही कहलाएगा, निर्दय नही कहला सकता।

तब फिर जम्बूकुमार के विषय भी यही बात क्यो न स्वीकार की जाय? वे स्वयं सम्पत्ति-आत्मिक गुणो की प्राप्ति अर्थात् मुक्ति के मार्ग पर चलना चाहते हैं, वे अव्याबाध सुख की राह पर अग्रसर होने का निश्चय कर चुके हैं और अपनी पत्नियो को भी उसी राह पर चलाना चाहते हैं। इसमें निर्दयता कहाँ है? यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि जम्बूकुमार को पत्नियाँ तो जम्बूकुमार को अपनी पसंदगी के मार्ग पर चलने को बाधित करती है, मगर जम्बूकुमार उन्हें बाधित नही करते। इस स्थिति मे यह साफ है कि जम्बूकुमार अधिक उदारता से काम ले रहे हैं, जब कि दूसरे को अपने इष्ट मार्ग पर चलने के लिए बाधित करने वाली उनकी स्त्रियाँ अनुदारता प्रदर्शित कर रही हैं।

इन सब कारणों से जम्बूकुमार अपनी पत्नियों के अनेकानेक मोहजनक वाक्यों को सुन कर भी अपने पथ से विचलित नही हुए। उन्होने शान्ति और दृढता के साथ अपनी पत्नियो से कहा आप मेरी बात का ध्यान दीजिए। यह ससार स्वप्न के समान है। जैसे स्वप्न के दृश्य चिरस्थायी नही हैं। उसी प्रकार इस ससार के दृश्य भी स्थायी नही हैं वे पल पल मे पलटते हैं। जीवन और यौवन का भी क्या भरोसा है? यह बिजली की चमक के समान हैं। क्षण मे है और क्षण मे नही हैं। इनका भरोसा करके निश्चिंत हो जाना और आत्महित की ओर ध्यान न देना भयंकर भूल है।

अतएव मनुष्य मात्र का एक मात्र यही सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है कि जब तक उसके शरीर मे श्वास है, जब तक उसके हृदय मे धडकन हो रही है, तब तक वह सच्चे कल्याण की साधना कर ले। कौन जानता है कि इस जीवन का कब अन्त आ जायगा ?

मैं पहले ही कह चुका हू कि संसार मे जितने भी संयोग हैं वे सब दुःख उत्पन्न करने वाले हैं। थोड़े से समय का ससार का सुख बहुत लम्बे समय तक दुःख देता है और वह सुख भी दुःखो से मिश्रित है जैसे जहर मिला हुआ अमृत ! संसार के सुख को ज्ञानी जन इसी लिए सुख नही मानते । फिर तुम क्यो इस पर ललचा रही हो ?

तुम कहती हो कि मेरे दीक्षा लेने से तुम निराधार और अनाथ हो जाओगी, परन्तु तुम भ्रम मे हो। वस्तुतः न कोई किसी को सुखी बना सकता है और न दुखी बना सकता है। अपनी-अपनी मनोवृत्तिया और अपने-अपने कर्म ही जीव को सुख या दुःख देते है। इसी लिए भगवान् ने कहा है —

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ।

श्रीमदाचारांगसूत्र ।

हे आत्मन् ! तू अपना मित्र (कल्याण कारी) आप ही है, दूसरे मित्रो को क्यो खोजता फिरता है ?

भगवान् की यह वाणी कितनी प्रेरणा प्रदायिनी है ? इस वाणी मे दिव्य तेजस्विता की उज्ज्वल झलक है। इसमे असीम स्वावलम्बन है और आत्मगौरव की शुभ्र छटा है। आत्मा अनन्त

शक्ति का धनी है, परम पुरुषार्थ का प्रशस्त केन्द्र है। मगर अपने आपको न पहचानने के कारण यह परावलम्बन की दयनीय दीनता को स्वीकार करता है! स्वयं राजा होकर रंक बना फिरता है! अनन्त सुख का भंडार होते हुए भी दुःखों मे घिरा रहता है। तुम अपने स्वरूप को पहचानो, अपनी शक्ति की ओर देखो, अपने आन्तरिक ऐश्वर्य की ओर ध्यान दो! त्याग दो इस दुर्बल, दीनतापूर्ण और दुःख जनक भावना को कि तुम पराये दिये सुख मे सुखी हो सकती हो! आचार्य अमितगतिजी ने कितना सुन्दर कहा है।—

स्वयं कृतं कर्म दयात्मना पुरा,
फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वय कृतं कर्म निरर्थक तदा।

इस आत्मा ने पहले जैसे भी कर्म किये हैं, उनका ही वह शुभ या अशुभ फल भोगता है। अगर दूसरों के दिये सुख दुःख को आत्मा भोगने लगे तो अपने किये कर्म व्यर्थ ही हो जाएंगे।

आगे वही फिर कहते हैं—परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् अर्थात् तू इस बुद्धि का त्याग करदे कि कोई तुझे दूसरा सुख-दुःख देता है।

प्रियाओ! तुम एक पुत्र के लिए तरस रही हो, यह देख कर मुझे तुम्हारी स्थिति पर तरस आ रहा है! तुम अनादि काल से ससार मे परिभ्रमण कर रही हो। तुमने अनन्तानन्त जन्म

धारण किये हैं। संसार मे जितने भी जीव हैं, उन सब को तुम न जाने कितनी-कितनी बार अपना पुत्र बना चुकी हो! कोई जीव ऐसा नही बचा जो तुम्हारा पुत्र न बन चुका हो ! इतने पर भी जब तुम तृप्त नही हुई तो अब एक पुत्र पाकर कैसे तृप्त हो सकोगी ?

इसके अतिरिक्त आज तुम्हारे अन्तःकरण में जो ममता है, क्या पुत्र पाकर वह घट जाएगी ? नही, उलटी वह और बढ़ेगी। मैं कह चुका हूँ कि ज्यों-ज्यों पर-संबंध बढ़ता है, त्यो-त्यों ममता बढती जाती है और फिर दुःख भी बढता चला जाता है। इस प्रकार तुम्हे सुख पहुँचाने के लिए दुःख के मार्ग पर अग्रसर होना चाहती हो ! मैं जान-बूझ कर तुम्हे दुःख के गड्ढे मे कैसे गिरा दूं ? मैं चाहता हूं कि सम्पत्ति की इच्छा करके तुम विपत्ति के मार्ग पर मत चलो।

तुम मोह के कारण ही मुझे संयम को स्वीकार करने से रोक रही हो, मगर तुमने अपनी बातो में सिद्धान्त का एक प्रश्न खड़ा कर दिया है। तुम यह कहना चाहती हो कि गृहस्थ भी अपना परम-कल्याण कर सकते हैं तो फिर साधु बनने से क्या लाभ है ? मैं भी यही पूछना चाहता हूं कि अगर गृहस्थ अवस्था मे, भोगोपभोगो का सेवन करते हुए कुटुम्ब, परिवार, धनसम्पत्ति आदि मे रचे-पचे रहते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है तो तीर्थङ्कर भगवान् जैसे अतिशय ज्ञानी महापुरुषो ने गृह का त्याग क्यो किया ? दूसरे महापुरुष साधु बन कर क्यों जगल की राह पकड़ते हैं ? वीतरागता की सर्वोच्च दशा प्राप्त किये बिना मुक्ति नही मिल सकती और उस दशा की प्राप्ति मोह-ममता

को पूरी तरह त्यागे बिना प्राप्त नही हो सकती। गृहस्थ-अवस्था मे रहते हुए ऐसा करना कठिन है, इसी कारण साधु-अवस्था स्वीकार की जाती है । तुम मरुदेवी माता और भरत चक्रवर्ती का उदारहण देती हो, मगर वे अपवाद हैं मरुदेवी को हाथी के हौदे पर बैठे २ केवलज्ञान की प्राप्ति हुई तो क्या यह नियम बना लेना चाहिए कि हाथी के हौदे पर बैठे बिना केवलज्ञान नही होता ? क्या केवलज्ञान की अभिलाषा रखने वाले सभी को हाथी के हौदे पर ही बैठना चाहिए ? नहीं, यह बात नही है। गृहस्थवेष मे होते हुए भी अगर कोई भावना से पूर्ण वीतराग हो चुका हो तो वह केवलज्ञानी हो सकता है, मगर गृहस्थ दशा मे केवलज्ञान नही प्राप्त होता । गृहस्थवेष और गृहस्थ अवस्था दोनों को एक समझ लेने से तुमको यह भ्रम उत्पन्न हो गया है।

विचार करना चाहिए कि जो मुमुक्षु पूर्ण संयमी बन जायगा और फिर पूर्ण वीतराग अवस्था को प्राप्त कर लेगा, वह गृहस्थ के कृत्य किस प्रकार करता रह सकता है ?

भगवान् ने किन्ही-किन्ही गृहस्थो को, भिक्षुकों की अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया है, सो तो ठीक ही है। जो लोग त्यागी भिक्षुक का भेष धारण करके भी सयम का पालन नही करते फिर भी भिक्षा माँग माँग कर अपनी उदरपूर्ति करते हैं, उनकी अपेक्षा गृहस्थधर्म का पालन करने वाला गृहस्थ श्रेष्ठ ही है ! क्योंकि जो साधु का लिंग धारण करके साधु धर्म का पालन नही करता, वह भिक्षा माँगने के कारण भिक्षु तो है परन्तु साधु नही है - वह न इधर का है न उधर का है ! न गृहस्थ धर्म पालता है, न साधुधर्म को

ही पालता है अतएव वह गृहस्थ से भी गया – बीता है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ, गृहस्थावस्था में रहता हुआ साधु होने का दभ नही करता मगर वह भिक्षुक, साधु धर्म का पालन न करता हुआ भी अपने आपको साधु कहता है ! यह बडा भारी दम्भ है, धोखा है ! इस कारण भी वह गृहस्थ से गया–बीता है। इस अभिप्राय से जहाँ भगवान् ने भिक्षु की अपेक्षा गृहस्थ को उत्तम बतलाया है, वहाँ यह भी बतला दिया है कि साधु सभी गृहस्थों की अपेक्षा सयम मे श्रेष्ठ होता है !

बिना तप और त्याग किये आत्मा का कल्याण नही होता, बिना मोह- ममता को जीते आत्मा की शुद्धि नही होती और बिना साधुता स्वीकार किये अन्त.करण मे निराकुलता नही आती ! अतएव आत्मा की पूर्ण शुद्धि के लिए साधु धर्म को अङ्गीकार करना ही उचित है। ऐसा करने वाले ही के लिए सदा के लिए आनन्द ही आनन्द हो जाता है। वह पुरुष-प्रभाकर बन जाता है।

३०-६-४८ }



पंचम काल

स्तुति :



मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

जगत् में हरि-हर आदि अनेक देव है। दुनिया उन्हे देव मानती है। उनके अवलोकन को एक प्रकार से ठीक ही समझता

हूं क्योंकि एक बार उनका अवलोकन कर लेने से आप मे हृदय को विशेष सन्तोष प्राप्त होता है । प्रभो ! जिसने आप का एक बार दर्शन कर लिया, फिर जन्म-जन्मान्तर मे भी कोई दूसरा देव उसके चित्त को आकृष्ट नही कर सकता ।

संसार मे देवो की कमी नही है। लोगो ने अनगिनत देवों की कल्पना कर रक्खी है। अकेले वैदिक सम्प्रदाय में ही तेतीस करोड देवो की संख्या मानी जाती है । मगर यह संख्या भी पुरानी है । इसके बाद भी कितने ही नये-नये देवो की सृष्टि हुई है। दूसरे सम्प्रदाय के देवो की सख्या अलग ही है और वह भी मामूली नही है । सिर्फ भारतवर्ष मे देवों की संख्या लगभग उतनी ही है, जितनी वहाँ के निवासियो की । मतलब यह है कि अगर देवो का बँटवारा किया जाय तो लगभग प्रत्येक भारतवासी के हिस्से मे एक-एक देव आ सकता है !

ऐसी स्थिति मे भक्त के सामने स्वतः यह प्रश्न खडा हो जाता है कि मैं किस देवता की आराधना करूं ? किसके समक्ष अपना मस्तक झुकाऊं ? किसे अपनी भक्ति के निर्मल पुष्प चढाऊ ? कौन देव हमारा कल्याण कर सकेगा ?

वास्तव मे प्रश्न बडा जटिल है। इस जठिलता को भक्तों की आग्रह पूर्ण भावना और भी जटिल बना देती है। प्रत्येक देव के प्रति कुछ लोगो को विशेष श्रद्धा होती है और श्रद्धा के साथ ही साथ आग्रह भी होता है । जहां आग्रह है, वहा उन्मुक्त विचार के लिए अवकाश नहीं रहता ।

प्रथम तो महापुरुषों की तुलना करना ही बड़ा कठिन काम

है, और फिर यदि कोई इस काम को करना भी चाहे तो जन-समूह की आग्रह बुद्धि उसे ऐसा नही करने देती।

कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों फिर भक्तो को, मुमुक्षुओं को, देव-भगवान् के वास्तविक स्वरूप का विचार तो करना ही चाहिए जैसे सोने की जाँच करने का साधन कसोटी है उसी प्रकार भगवान् के स्वरूप का विचार करने के लिए लक्षण रूपी कसोटी है। देव का लक्षण बतलाते हुए आचार्य समन्तभद्रजी ने कहा है:—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते॥

अर्थात् जो समस्त दोषो से अतीत हो चुके हैं, जो सर्वज्ञ हैं और जो हितोपदेशक हैं वही सच्चे देव हो सकते हैं, इन गुणो के अभाव मे आप्तता नही रह सकती।

भूख प्यास, जरा, रोग, जन्म, मृत्यु भय, अहंकार, राग, द्वेष और मोह जिसकी आत्मा से दूर हो गये हो अर्थात् जिसने इन सब दोषो पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली हो वही सच्चा देव कहलाता है।

देव को परखने के लिए यह कसोटी है। इस कसोटी पर जो खरा साबित हो, उसी को सच्चा देव स्वीकार करना चाहिए।

तमाम देवों को इस कसौटी पर कसने के लिए बहुत विस्तार की आवश्यकता है । यह विषय बहुत लम्बा है। अतएव सामान्य रूप मे मैं यही कहूँगा कि अगर आप अपना सचमुच ही विस्तार चाहते हैं तो वीतराग और सर्वज्ञ प्रभु की शरण स्वीकार करो। समझ लो कि जो वीतराग हो चुका है, वह कभी जन्म नही ले सकता और न मृत्यु का ग्रास बन सकता है। जो अवतार धारण करते हैं, अपनी रक्षा के लिए गदा, त्रिशूल, चक्र आदि शस्त्र रखते हैं और जो स्त्रियो मे आसक्त हैं वे कभी वीतराग या निर्दोष नही कहला सकते और निर्दोष हुए बिना कोई देव नही हो सकता।

आचार्य महाराज ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि हरि-हर आदि देवो का परिचय हो जाने के बाद जब कोई जिनेन्द्र भगवान् के परिचय मे आता है, तब उसकी आस्था जिनेन्द्र देव के प्रति अधिक दृढ हो जाती है। उसमे इतनी दृढता होती है कि आगामी जन्म मे भी वह नही हटती । यह कहकर आचार्य महाराज ने तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता सूचित की है। किसी भी वस्तु का असली स्वरूप और महत्त्व तभी प्रकाश में जाता है जब दूसरी वस्तुओ के साथ उसकी तुलना करके देखा जाय।

कोई लोगो का खयाल है कि साहित्य में तुलनात्मक पद्धति का विकास आधुनिक युग में हुआ है और यह पद्धति प्राचीन काल मे नही थी। वास्तव मे जो इसी युग की देन हो, उसे इस युग की देन के रूप मे स्वीकार करने मे कोई सकोच नही करना चाहिए, परन्तु सत्य का विपर्यास होता हो तो उसका विरोध करने मे भी संकोच नही करना चाहिए।

जिन लोगो ने प्राचीन भारतीय दर्शनशास्त्रों का अध्ययन किया है, वे भलीभांति जानते है कि उनमे विभिन्न दर्शनशास्त्रो की मान्यताओ का बड़ी खूबी के साथ तुलनात्मक ढग से विवेचन किया गया है। सहस्रो वर्षों से भारत मे यह पद्धति चली आ रही है। स्तुति का यह पद्य भी इसी पद्धति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

पीतल के साथ तुलना करने पर सोने की खूबियां साफ-साफ मालूम होने लगती हैं, काच के साथ तुलना करने पर हीरे की विशेषता मालूम होती हैं, इसी प्रकार अन्य देवो के साथ तुलना करने पर वीतराग भगवान् की विशेषताओ का ज्ञान होता है।

सूर्य के प्रकाश का महत्त्व समझने के लिए रात्रि के अंधकार से परिचित होने की आवश्यकता है। भोजन का पूरा-पूरा मजा लेने के लिए भूख की पीड़ा का अनुभव होना जरूरी है। इसी प्रकार जिनेन्द्र देव की महिमा को समझने के लिए अन्य देवी-देवताओं के स्वरूप को पहचानना आवश्यक है। जो सत्य का जिज्ञासु और निष्पक्ष व्यक्ति होगा वह अन्य देवों के स्वरूप को समझकर जब वीतराग देव के स्वरूप को समझेगा तो निस्सन्देह उसकी श्रद्धा वीतराग देव पर इतनी प्रगाढ़ हो जायगी कि वह जन्म-जन्मान्तर मे भी नही हटेगी।

जिसने छाछ ही छाछ खाई है, उसे अगर मक्खन खाने को मिल जाय तो क्या वह छाछ को पसन्द करेगा? नही, इसी प्रकार जिसने सम्यग्ज्ञान के द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के स्वरूप को

समझ लिया है, वह उन्हे छोड़कर और किसी देव की शरण में नही जा सकता।

देवों की परीक्षा करने के दो आधार हैं। प्रथम तो विभिन्न देवों के बाह्य रूपों से ही उनकी परीक्षा हो जाती है और दूसरे उनके आन्तरिक गुणो से। अगर हम बाह्य रूपो पर विचार करें तो एक ओर नाना प्रकार के आयुध धारण करने वाले देवता हमारे सामने उपस्थित होते हैं। आयुधों को धारण करने से ही यह साबित होता है कि या तो वे किसी से डरते हैं और इस कारण अपनी रक्षा के लिए उन्होने हथियार बाँधे हैं, अथवा वे किसी को डराना चाहते हैं किसी का घात करना चाहते हैं! स्वयं डराना या दूसरो को डराना दोनो ही हिंसा के रूप है। अतः जो डरता है या डराता है, वह निर्दोष, निष्कलंक एवं राग-द्वेष से अतीत नही हो सकता।

हथियार रखने के साथ ही साथ स्त्रियों के साथ भी उनका सम्पर्क दिखलाई देता है। स्त्री-सम्पर्क की नाना कथाएँ उनके साथ जुडी हुई हैं। किसी-किसी ने तो अपने आधे अग मे ही स्त्री को धारण कर रक्खा है। यह सब बाह्य चिन्ह यह साबित करते हैं कि उनमें देवत्व नही है, और यदि देवत्व है तो उनका यह स्वरूप सत्य नही है।

अन्तरंग स्वरूप की परख के सम्बन्ध में हम पहले ही कह चुके हैं कि जो जन्म, जरा, मरण आदि दोषों से रहित हो और जो वीतराग एवं सर्वज्ञ हो, वही सच्चा देव हो सकता है।

भाइयों! अपनी बुद्धि को पक्षपातहीन बना कर वास्तविकता का विचार करो। जिनेन्द्र देव के बाह्य और आन्तरिक

स्वरूप को भी देखो ! ध्यानमय वीतराग मुद्रा में वे समवसरण मे विराजमान होते हैं। न किसी आयुध को धारण करते हैं, न स्त्री को साथ लिये फिरते हैं ! इसीलिए कहा है—

माया नास्ति जटा कपालमुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली,
खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शुलं न चोग्रं मुखं।
कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः,
सोऽस्मान् पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः ।।

तात्पर्य यह है कि जो माया के लेप से सर्वथा मुक्त हो चुका है, जिसके मस्तक पर जटाएँ नही हैं, जो कपाल नहीं धारण करता है, चन्द्रमा को जिसने मुकुट नही बनाया है तथा जो गदा चक्र आदि अपने पास नही रखता, वासुकि भी जिसके पास नही है, धनुष-बाण या त्रिशूल नही लिये फिरता, जिसकी काम-वासना नष्ट हो चुकी है और इस कारण जो कामिनी से भी दूर रहता है, जो बैल पर सवारी नही करता, जो गाता और नाचता नही है, वही जिनेन्द्र देव हमारा निर्दोष शिव है ! ऐसे शुद्ध स्वरूप वाले, निष्काम निरजन, वीतराग शिव हमारी रक्षा करें।

जैनाचार्य श्री अकलंक देव की यह उक्ति है इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि जैनों का विरोध किसी व्यक्ति के साथ नही है। वे किसी व्यक्ति को वंदनीय अथवा अवदनीय नही मानते, वरन् गुणो को वदनीय समझते हैं। देव होने के लिए जो कसोटी निर्धा-रित की गई है उस पर जो खरा साबित हो, वही उनके लिए वन्दनीय और अनुकरणीय है। अर्थात् जिसमे सर्वज्ञता है, वीत-

रागता है, वही व्यक्ति, फिर उसका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो, देव मनाने योग्य है।

भगवान् ऋषभदेव को जब इस कसौटी पर कस कर परखते हैं, तो वे खरे उतरते हैं अतएव वे हमारी श्रद्धा के भाजन हैं, हमारे लिए वन्दनीय और पूजनीय हैं। उन्ही भगवान् ऋषभदेव को हमारा वार-वार नमस्कार हो!

जब तक यथार्थ बात समझ में नहीं आती तब तक दुनिया तरह-तरह के भ्रमो का शिकार बनी रहती है। जब पहले पहल रेलगाड़ी चली तो लोग कहने लगे-इसमे घोड़े या बैल नही जुते हैं और अपने आप चलती है, अतः इसके अन्दर कोई देवता विराजमान हैं। ऐसा सोचकर वे रेल को हाथ जोड़ कर नमस्कार करते थे। ऐसे भोले जीव दुनिया मे थे और आज भी मौजूद हैं। एक जगह एक आदमी ने बिना बैलो या घोड़ो के जुते रेलगाडी चलती देखने का जिक्र किया तो वहाँ के ठाकुर साहब ने उसे हिरासत मे बैठा दिया कि तू ऊटपटाग गप्पे हांकता है। भाई! जब तक समझ नही आती तब तक ऐसा ही होता है।

समझ सार संसार में, समझ बिना सब फोक ।
समझ–समझ कर जीवड़ा, गया अनन्ता मोक्ष ।

दुनिया में समझ सबसे बड़ी चीज है। जिनमें समझ नही है, वे असलियत को तो पाते नही है और कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। परन्तु सर्वज्ञ भगवान् सभी वातो का ठीक-ठीक निर्णय सुना देते हैं। सर्वज्ञ प्रभु के ज्ञान से कोई वस्तु वाहर

नही है । सर्वज्ञ के कथनानुसार कल मैंने कालचक्र का वर्णन सुनाया था । पहले आरे का वर्णन किया जा चुका है, दूसरे आरे की विशेषताएँ भी कल बतला चुके है । तीसरे आरे के सम्बन्ध मे भी कहा जा चुका है तीसरे आरे के अन्तिम भाग में आदिनाथ तीर्थङ्कर हुए । उन्होने तीव्र तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर जगत् का उपकार करने के लिए धर्म का प्रकाश फैलाया । इसके बाद उनका निर्वाण हुआ । भगवान् के निर्वाण के तीन वर्ष बाद चौथा आरा लगा ।

चौथे आरे का नाम दुखमासुखमा है । इस आरे में बहुत फर्क पड़ गया । जीवों का शरीर पहले से छोटा हो गया और उम्र भी कम हो गई । सिर्फ एक करोड़ पूर्व की आयु रह गई । संहनन भी शिथिल हो गया और संस्थान में भी फर्क आ गया । वस्तु का वर्ण, गंध, रस और स्पर्श बदल गये । लोगों के उत्थान बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम में भी अन्तर आ गया ।

इतना अन्तर पड़ जाने पर भी चौथा आरा बडा सुन्दर था । बारह महीने में केवल एक वार, आधी रात्रि के समय पानी बरसता था और फिर कभी नही बरसता था । उसी एक वार की वर्षा से बखूबी सब काम चलता रहता था ।

उस समय के लोग एक वक्त भोजन करते थे । दोपहर भोजन का समय था । जैन धर्म मे 'एगभत्तं च भोयणं' कहा है अर्थात् एक ही वार भोजन करने का विधान किया है ! वैष्णव धर्म में भी कहा है कि एक सूरज मे एक वार ही भोजन करना चाहिए । इस प्रकार एक टक जीमने की ही बात कही है, मगर सही बात न समझकर यह समझ गये कि रात्रि मे खा लेना चाहिए ।

चौथे आरे में राजा और प्रजा मे पूरी तरह अमन-चैन था। हजारों वर्षों मे कभी कोई असामयिक मृत्यु होती थी। गर्भपात होता नही था और अनमते ही शिशु का मरण भी नही होता था। सौ वर्ष के बाद कभी कोई नवयुवक मर जाता तो सारे गाव में त्राहि-त्राहि मच जाती थी। जैसे आजकल फाल्गुन महीने मे एक मुहूर्त्त दिन चढ़ने पर न ज्यादा गर्मी होती है और न ज्यादा सर्दी होती है, समशीतोष्ण मौसम रहता है, उसी प्रकार चौथे आरे में मौसम रहता था। न कभी ठिठुराने वाली सर्दी पड़ती, न खून को पानी बना देने वाली गर्मी ही पड़ती थी। समस्त प्रजा आनन्द में रहती थी।

पचास लाख करोड सागर तक भगवान् ऋषभदेवजी का शासन चला। उनके शासन का साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका रूप संघ चलता रहा, धर्म की प्रवृत्ति भी चालू रही। इसके बाद जब धर्म मे शिथिलता आने लगी तो दूसरे तीर्थङ्कर भगवान् अजितनाथजी हुए। अजितनाथजी चौथे आरे की अपेक्षा तो पहले तीर्थङ्कर थे, मगर इनसे पहले ऋषभदेवजी हो चुके थे, इस कारण अवसर्पिणी काल की अपेक्षा दूसरे थे।

भगवान् अजितनाथ के बाद तीस लाख करोड सागर व्यतीत हो जाने पर तीसरे तीर्थङ्कर संभवनाथजी हुए। तदनन्तर दस लाख करोड सागर बाद विनीता नगरी में चौथे तीर्थङ्कर अभिनन्दनाथजी का जन्म हुआ। फिर नौ लाख करोड सागर के पश्चात् सुमतिनाथजी हुए। सुमतिनाथजी के अनन्तर ९० हजार करोड़ सागर बीत जाने पर कौशाम्बी नगरी मे छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु स्वामी का जन्म हुआ। फिर नौ हजार करोड़

सागर बीतने पर बनारस नगरी में सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथजी हुए। इनके अनन्तर ९०० करोड़ सागर के पश्चात् बनारस के निकट चन्द्रपुरी में चन्द्रप्रभ स्वामी प्रकटे। फिर ९० करोड सागर बीतने पर काकन्दी नगरी मे नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथजी का जन्म हुआ। इनके अनन्तर नौ करोड़ सागरोपम के पश्चात् भद्दलपुर में दसवे तीर्थंकर शीतलनाथजी उत्पन्न हुए।

इन तीर्थङ्करों के समय में इस भरत क्षेत्र में, मत-मतान्तरों के झगड़े विशेष बढ़ गये। अनेक प्रकार के मतों की स्थापना हो गई।

दसवे तीर्थंकर के बाद कुछ कम एक करोड़ सागर के पश्चात् ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान् श्रेयासनाथ का सिंहपुरी नगरी मे जन्म हुआ।

फिर ६४ सागर बाद चम्पापुरी मे वासुपूज्यजी ३० सागर बाद कम्पिलपुर में तेरहवें तीर्थङ्कर विमलनाथजी, विमलनाथजी से नौ सागर पश्चात् अयोध्या नगरी मे अनन्तनाथजी, चार सागर बाद रत्नपुरी में धर्मनाथजी, तीन सागर बाद हस्तिनापुर में सोलहवें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथजी का जन्म हुआ।

तदनन्तर आधा पल्योपम व्यतीत होने पर गजपुर मे श्री कुन्थुनाथजी का जन्म हुआ। इनके बाद पाव पल्य पम बीतने पर हस्तिनापुर मे अठारहवे तीथङ्कर अरहनाथजी उत्पन्न हुए।

शान्तिनाथजी, कुन्थुनाथजी और अरहनाथजी अपने समय के चक्रवर्ती राजा थे। सम्पूर्ण भरतक्षेत्र पर आपका शासन था।

अन्त में उस विशालतम साम्राज्य को ठुकरा कर संयम धारण किया। फिर राज्य शासन के बदले धर्म शासन को प्रचलित किया।

फिर एक करोड़ और एक हजार वर्ष व्यतीत होने पर मिथिला नगरी मे मल्लिनाथजी का जन्म हुआ, इनके बाद चौपन लाख वर्ष के बाद राजगृही नगरी मे बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथजी अवतरित हुए। छह लाख वर्ष के बाद मथुरा नगरी में नेमिनाथ प्रभु का जन्म हुआ।

बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ या अरिष्टनेमि के जमाने में ही श्री कृष्णजी और बलदाऊजी का जन्म हुआ था। यह सब एक ही कुल के थे, भाई भाई थे। यादव वश बहुत विशाल बतलाया गया है-५६ करोड़ यादव कहलाते हैं। यादव वंशी सब देशो में फैले हुए थे। जैसे अंगरेजो की असली जन्म भूमि इंगलेण्ड है, मगर भारत मे उनका राज्य था तो लाखो अगरेज यहां भी रहते थे। यहाँ रहने पर भी अगरेज, अगरेज ही कहलाते थे, उन्हें कोई रंगरेज नहीं कहता था, इसी प्रकार विभिन्न प्रदेशो मे फैले हुए यादव लोग भी यादव ही कहलाते थे।

बाइसवें तीर्थंकर के चौरासी हजार वर्ष बाद, बनारस नगरी में पार्श्वनाथ भगवान् का जन्म हुआ। भगवान् पार्श्वनाथ के बाद २५० वर्ष बीतने पर चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का क्षत्रियकुण्ड नगर मे जन्म हुआ।

भगवान् महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की थी। वे तीस वर्ष की उम्र तक गृहस्थावस्था मे रहे, कुल ४२ वर्ष तक

उन्होंने संयम का पालन किया और जब चौथे आरे की समाप्ति में सिर्फ तीन वर्ष साढ़े आठ महीने ही शेष रह गये थे, तब उनका निर्वाण हुआ।

इस प्रकार चौथे आरे में तेईस तीर्थङ्कर हुए हैं। भाइयों! वह काल कितना धन्य है और कितना मंगलमय है! उस समय की प्रजा कितनी पुण्यशालिनी है! भला जिस काल में तेईस तीर्थ-ङ्करों का जन्म हुआ, उससे अधिक अच्छा और कौन-सा काल हो सकता है!

भगवान् महावीर का निर्वाण होने पर करीब साढ़े तीन वर्ष बाद ही यह पाँचवां आरा आरम्भ हो गया। इस आरे मे चौथे आरे के समान पवित्र एवं उज्जवल भावना नहीं रही। बड़ी शीघ्रता और तीव्रता के साथ परिवर्तन होने लगा। इसके लिए एक उदाहरण लीजिए:—

किसी साहूकार ने एक पुराना मकान खरीदा। वह जीर्ण सा हो गया था, अतएव उसने उसे नये सिरे से बनवाना आरम्भ किया। मजदूर काम कर रहे थे। किसी जगह खुदाई करते समय मजदूरों को एक चरु नजर आया। उसमें सोना भरा था। आज कल के मजदूर होते तो उसे उस समय वहीं दबा रहने देते और रात्रि में किसी समय जाकर उसे खोद लाते। मगर उस समय के लोगों की भावना एवं नीयत ऐसी नही थी। चरु देख कर उन्होंने साहूकार को बुलाया और कहा—यह सोने का चरु निकला है, इसे आप ले जाइये। मगर साहूकार भी उस समय ऊँची भावना वाले थे। उस साहूकार ने चरु को देख कर कहा—निकला है तो

अच्छा है, परन्तु इस पर मेरा हक नही है । मैंने जिससे मकान खरीदा है, उसी पर इसका हक है। यह कहकर साहूकार ने पहले वाले मकान मालिक को बुलवाया और कहा आपने मुझे मकान बेचा है चरु नही बेचा है। अब यह चरु निकला है तो आपका ही है। इस पर मेरा अधिकार नही हैं। आप इसे ले जाइये।

मगर उस समय के सभी लोगो की नियत साफ थी। अत-एव उसने कहा—मैं आपको जब सारा मकान बेच चुका हू, तो यह चरु बाकी कैसे रह गया? जैसे ईंटों और पत्थरो पर आपका अधिकार है, उसी प्रकार इस चरु पर भी आपका ही अधिकार है। अब यह मेरा नही हो सकता। इसे आप ही अपने पास रखिये।

दोनो में काफी तर्क-वितर्क हुआ, परन्तु उसे लेने को कोई तैयार नही हुआ। वर्तमान मकान-मालिक का कहना था कि मैंने सिर्फ मकान खरीदा है और चरु मकान का अंग नही है, अत इसे मैं स्वीकार नही कर सकता। भूतपूर्व मकान-मालिक इस बात पर दृढ था कि मैंने बेचते समय कुछ भी शेष नही रक्खा है, अत. इसमे जो कुछ भी है वह सब आपका है।

इस प्रकार जब दोनों का मतभेद मिट नही सका और सोने से भरे चरु को कोई भी लेने को तैयार नही हुआ तो वहाँ के राजा को यह समाचार दिया गया। कहा गया कि इस चरु पर आपका अधिकार है। आप इसे अपने खजाने में रख लीजिए। मगर राजा ने भी उसे लेना अस्वीकार कर दिया।

राजाने कहा–जो कर मैं प्रजा से लेता हूँ, उसमे इसका समावेश नही होता। ऐसी स्थिति में मैं इसे कैसे ले सकता हूँ? दोनों मकान–मालिको मे से ही किसी का यह हो सकता है। मेरा अधिकार तो इस पर किसी भी प्रकार नही पहुँचता!

भाइयों! अगर आप को वह चरु मिल जाय तो आप क्या करेंगे? जिसकी जगह मे मिला है उसे वापिस लौटाएँगे, या राज्य के खजाने मे भेज देंगे अथवा चुपके–चुपके अपनी हवेली मे छिपा लेंगे? आज कहां है वैसी उदारता! कहां है वह सरलता! कहां है वह निर्लोभवृत्ति! आज तो लोग अपने सगे भाई को भी बराबर हिस्सा नही देना चाहते! चोरी-चोरी माल पार कर लेते है! चोरी करके और डाका डाल कर दूसरो की सम्पत्ति लूट लेना जब कोई बड़ी बात न समझी जाती हो, तब इस प्रकार की प्रामाणिकता के लिए गुंजाइश ही क्या है?

आखिर राजा ने भी उस चरु को स्वीकार नही किया। वह रास्ते में ही पडा रहा किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

रात हुई। आधी रात के बाद पांचवां आरा शुरु हो गया। कई लोग समझते हैं कि काल मे कोई प्रभाव नही। मगर जैसे अन्य द्रव्यो मे अपना - अपना प्रभाव डालने की शक्ति है, उसी प्रकार कालद्रव्य मे भी अपना प्रभाव डालने की जबर्दस्त शक्ति है। जैन शास्त्रों में द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार परिवर्त्तन होना माना गया है दूसरे लोगों ने भी काल के प्रभाव को स्वीकार किया है। कहा भी है—

कालः पचति भूतानि, कालः संहरति प्रजाः ।
कालः सुप्तेसु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥

अर्थात् काल ही समस्त भूतों के परिपाक का कारण है, काल ही जीवो की मृत्यु का कारण है, लोग भले सोते रहे किन्तु काल सदा जागरूक रहता है, उसके बिना पत्ता भी नही हिल सकता। वास्तव मे काल के सामर्थ्य को कोई लांघ नही सकता। काल को चुनौती नही दी जा सकती।

कालवादी तो यहां तक कहते हैं—

न कालव्यतिरेकेण, गर्भबालशुभादिकम् ।
यत्किञ्चिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥
किञ्च कालाहृते नैव, मुद्गपक्तिरपीक्ष्यते ।
स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मता ॥

गर्भ का स्थिर होना काल की अपेक्षा रखता है। दो-तीन वर्ष की छोटी बालिका अथवा अस्सी वर्ष की बुढिया गर्भवती नही हो सकती। युवती स्त्री गर्भवती होती है। इसका कारण काल है। काल ही गर्भ धारण की योग्यता उत्पन्न करता है और वही उस योग्यता को छीन भी लेता है। गर्भस्थिति होने के बाद समय पर ही बालक का जन्म होता है कोई जल्दी या देर से बालक को उत्पन्न करना चाहे तो नही कर सकता। इसी प्रकार शुभ आदि भी काल के निमित्त से ही होते हैं। इससे यही साबित होता है कि काल के बिना कोई भी कार्य नही हो सकता। अतएव काल ही सब कार्यों का कारण है।

औरो की बात तो जाने दीजिए, मूंग की दाल को पकाने की सब सामग्री मौजूद रहने पर भी, काल के अभाव में मूंग या उसकी दाल नही पक सकती। जिस क्षण चूल्हे पर दाल की बट-लोई आदि चढ़ाई जाती है, उस समय आग पानी वगैरह सब साधन विद्यमान रहते हैं। अगर उन्ही से दाल पकती होती तो चूल्हे पर बटलोई चढाते ही वह पक जाती। पर नही, वह समय आने पर ही पकती है, अतएव मानना चाहिए कि काल के प्रभाव से ही वह पकती है।

कालवादी एकान्त काल को ही कारण मानता है, यह उसका भ्रम है, फिर भी यह माने बिना काम नही चल सकता कि अन्यान्य कारणों की भांति काल भी एक कारण अवश्य है। काल मे मनुष्यो की भावना को बदल देने की शक्ति है। काल के प्रभाव से बड़े-बड़े परिवर्त्तन होते हैं। काल अरूपी द्रव्य है, अत-एव वह और उसका असर दिखाई नही देता, फिर भी बुद्धि के द्वारा उसे समझ लेना कठिन नही है।

हां, तो पांचवां आरा आरंभ हुआ और तत्काल ही मनु-ष्यो की भावनाओ पर उसका प्रभाव पड़ गया। राजा की, मकान बेचने वाले की, खरीदने वाले की और मजदूरों की नीयत बदल गई। सब के सब उस चरु को लेने दौड़े और धूम-धाम मच गई।

यह हाल देख कर लोग सोचने लगे—कल तो कोई उस सोने को पूछते नही थे और आज क्या हो गया है ? सब क्यों आज यह दौड़-धूप कर रहे है ! तब किसी ज्ञानी पुरुष ने यह

निर्णय दिया कि मे काल परिवर्त्तन हो गया है। पाँचवें आरे के बैठते ही सब की नीयत मे फितूर पैदा हो गया है।

भाइयो ! समय बदलने से भी भावना मे अन्तर पड़ जाता है और जगह बदलने से भी अन्तर पड जाता है। समय के प्रभाव को समझने के लिए पूर्वोक्त उदाहरण ही पर्याप्त है। जगह के प्रभाव के विषय मे श्रवण का उदाहरण प्रसिद्ध है। आपको मालूम होगा कि वैदिक पुराणो के अनुसार श्रवण अपने अधे माता-पिता को कावड मे बिठलाकर तीर्थयात्रा करवा रहा था। घूमते-घूमते वह कुरुक्षेत्र की तरफ आया। वहाँ एक जगह उसने कावड उतारी। कावड़ उतारने के बाद उसने माता-पिता से कहा–आप दोनों को लम्बे अर्से से मैं लादे-लादे फिर रहा हूँ। अब इसका मेहनताना दीजिए।

श्रवण अतीव मातृ पितृ भक्त पुत्र था। उसने अपने माता-पिता की जैसी उत्कट सेवा की है, उसकी प्रशंसा नही हो सकती पितृ-मातृ भक्ति का ऐसा ज्वलत उदाहरण दूसरा नही मिलता। लेकिन जब उसने अपने मेहनताने की माँग की तो वे दोनों आश्चर्य में पड गये। वे सोचने लगे—स्वेच्छा से हमारी सेवा करने वाला यह पुण्यवान् श्रवण आज ऐसा क्यो कह रहा है ? विचार करने पर श्रवण के पिता समझ गये कि हो न हो, यह इस भूमि का ही प्रताप है। फिर उसने कावड से नीचे उतर कर वहाँ की थोडी-सी मिट्टी ली, अपनी गाँठ मे बांध ली और साथ ले ली। इसके बाद उसने श्रवण से कहा—अच्छी बात है बेटा। जरा आगे चल कर तुम्हारा मेहनताना चुका देंगे। इतनी बहुत मेहनत की है तो थोड़ी और करो।

श्रवण अपने पिता की बात मानकर आगे बढ़ा। आगे बढ़ने पर जमीन बदल गई। तब श्रवण के पिता ने कहा—बेटा। अब मिहनताना ले लो !

नवीन स्थान में आते ही उसकी भावना मे समूल परिवर्त्तन हो गया था। वह अपने पिछले व्यवहार को स्मरण करके लज्जित हो रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि इस प्रकार की दुर्मति उसके चित्त मे किस प्रकार उत्पन्न हुई ? जिस पर जब पिता ने मेहनताना लेने की बात कही तब तो उसकी लज्जा का पार ही न रह गया। वह शर्म का मारा जमीन मे गडा जा रहा था। आखिर उसने कहा–माँ बाप ! आपकी सेवा भक्ति करना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है। मैंने इसे ही योग माना है, इसी में मैं ईश्वर की आराधना देख रहा हूँ। आपसे मेहनताना लूँगा तो मुझ जैसा नीच और कौन होगा ? मुझ पर आपका असीम ऋण है। अपने शरीर के चमडे के जूते बनवाकर आपको पहनाऊँ तो भी आपके ऋण से छुटकारा नही पा सकता। आखिर मैंने इस शरीर से ही तो आपकी सेवा की है ! और यह शरीर आपका ही दिया हुआ है ! उसमे मेरा क्या है ? मेरी दुमति के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए और उस बात को भूल जाइए।

पिता इस बुद्धिभेद के रहस्य को समझ गया था। फिर भी श्रवण का समझाने के लिए उसने वह साथ ली हुई मिट्टी जमीन पर फैला दी। उस पर श्रवण को खड़ा किया। फिर कहा—अपना मेहनताना ले लो।

श्रवण – हां लाओ, मेहनताना लूँगा, अवश्य लूँगा मगर मेहनताना नहीं दोगे तो अब मे हर्गिज नही लाऊँगा।

बाप मन ही मन मुस्कराया। थोडी दूरी पर बैठे बाप ने श्रवण को मेहनताना देने के लिए अपने पास बुलाया। ज्यों ही वह उस मिट्टी से अलग हुआ, उसको शुद्ध-बुद्धि फिर जाग उठी। तब वह बोला – पिताजी ! क्या आपसे मेहनताना लेकर मैं पाप का भागी बनूं ?

तब श्रवण के पिता ने उसे जमीन का प्रभाव समझाया। श्रवण समझ गया और उसकी आत्मग्लानि कम हुई।

भाईयों ! कहने का मतलब यह है कि जमीन-जमीन में, पानी-पानी मे और हवा-हवा मे फर्क होता है। इन सब मे मनुष्य के विचारो को प्रभावित करने की शक्ति होती है। एक हवा, हिमवान् पर्वत से जिस पर नाना प्रकार की जडिया और बूटिया हैं, आती है। वह हवा अगर रोगी का स्पर्श करे तो अनेक बार दवा से भी अधिक लाभकारक होती है उसके स्पर्श से रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कहते ही हैं-सौ दवा और एक हवा ! मगर आपका दिल गवाह दे तब काम चलता है। पक्का विश्वास होना चाहिए।

इसी प्रकार पानी–पानी में भी भेद है। खाने की चीजों मे भी असर डालने की शक्ति है। कहावत है-जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। गीता मे भी कहा है कि किसी वस्तु के खाने से बुद्धि की शुद्धि हो जाती है और किसी के खाने से वह अशुद्ध हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि जैसे एक वस्तु दूसरी वस्तु को प्रभावित करती है उसी प्रकार काल का भी जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है।

इस प्रभाव से सर्वसाधारण जनता की बुद्धि और भावना पलटती है पाँचवाँ आरा आरंभ होते ही लोगों को नीयत बदल गई और ज्यो ज्यों वह आगे बढ रहा है, नीयत में परिवर्त्तन भी होता जाता है। पाँचवाँ आरा इक्कीस हजार वर्ष का है। इसमें से करीब अढ़ाई हजार वर्ष अभी बीते हैं। पाँचवें आरे मे क्या-क्या परिवर्त्तन होगे कैसी रचना होगी, मनुष्यों की प्रकृति किस प्रकार होगी, आदि सब बातें शास्त्रों में मौजूद हैं।

कहूँ मै पंचम आरे का बयान,
पहले ही फरमा गये भगवान् ॥

शिष्य अपने गुरु महाराज से पूछता है—भगवन् ! पांचवें आरे मे दुनियाँ की क्या रचना होगी ?

गुरु महाराज फर्माते हैं—पाँचवां आरा चलते-चलते जब अपना पूरा प्रभाव दिखलाएगा तो बड़े २ नगर मिट कर गाँव बन जाएंगे और गाँव मिट कर श्मशान बन जाएंगे ! औरतें कुल की लज्जा को त्याग कर स्वेच्छाचारिणी बन जाएँगी। राजा लोग यमदूतो के समान हो जाएंगे। प्रजा को चूसना और भोग-विलास ही उनका कर्त्तव्य रह जायगा। फिर भी वे अल्प सुखी होगे और उनके कर्मचारी एवं दीवान भी लालची हो कर प्रजा को परेशान करेंगे।

लडके माँ-बाप का कहना नहीं मानेगे । लडकियों की भी यही हालत हो जायगी। शिष्य भी गुरु की आज्ञा मे नही चलेगे पापी लोग धन-धान्य से परिपूर्ण होगे और सज्जन अल्प सुखी होंगे। निर्धनता का सर्वत्र दौरदौरा होगा । धनवान् कम होंगे

विदेशी राजाओ के आक्रमण का सदा भय बना रहेगा, अर्थात् परचक्र का भय रहेगा। बस्ती कम होगी और जंगल ज्यादा होंगे। ब्राह्मण लोग धन के लालची हो जाएगे

भाइयों! ब्राह्मण पहले कैसे थे और अब कैसे हो गये और होते जाते हैं, यह बात जाननी हो तो मनुस्मृति को देख लो। ब्राह्मण लोग पहले के जमाने मे एक प्रकार के त्यागी थे। वे केवल उदर निर्वाह के लिए भिक्षा लाते थे और पठन-पाठन आदि मे अपना सारा समय लगाते थे। सन्तोष की वृत्ति उनमें थी और संग्रह करने की इच्छा नही करते थे। उनके संतोष, त्याग और ज्ञान का ऐसा प्रभाव था कि राजा लोग उनकी कुटिया में आया करते थे और उनके चरणों मे मस्तक झुकाया करते थे। ब्राह्मण किसी प्रकार के लोभ के वश होकर राजा के पास नहीं जाते थे। ईश्वर के भजन मे मस्त रहते थे। उनके तेज के आगे राजा का तेज भी फीका था। उनकी टूटी-फूटी झोंपडी की महिमा राजमहल से भी अधिक थी। उस समय बात ही और थी।

ब्राह्मण की कुटिया में जाकर, राजा शीष झुकाते।
अब तो देखो वही ब्राह्मण, घर-घर धक्के खाते ॥
याद हम करते है उन पहले के पुरुषों को ॥ ध्रुव ॥

एक समय वह था जब ब्राह्मण अपनी एकान्त शान्त कुटीर में बैठे-बैठे जगत् को ज्ञान का दिव्य दान दिया करते थे और राजाओ को भी उनकी कुटीर मे जाकर सिर झुकाना पडता था! मगर आज सारा नक्शा ही बदल गया है! अब ब्राह्मणो मे वह तेज नही रह गया। कारण यही है कि उनमे वह तप और

त्याग नहीं रहा। तप और त्याग में जो तेज है, वह धन में नही है। धन संग्रह की लालसा उत्पन्न होते ही चित्त में एक प्रकार की दीनता उत्पन्न होती है और जहां दीनता है वहां तेजस्विता नही रह सकती।

गुरू कहते हैं—पाँचवे आरे में जीवों की भावना ही नहीं बदलेगी, बल्कि जड़ प्रकृति मे भी परिवर्त्तन हो जायगा। वार बार दुर्भिक्ष होगा। कही अतिवृष्टि होगी, कही अनावृष्टि होगी। अधिकांश साधु-महात्मा भी अपना धर्म त्याग देगे। कोई साधु का वेष धारण करके ख्याति, लाभ, यश-कीर्ति आदि प्राप्त करने की चेष्टा करेगे, कोई किसी की औरत को ही उड़ा कर भाग जाएँगे।

भाइयों! कोई भी बडा समूह पूर्ण रूप से निर्दोष नही होता। समूह में से कोई दो-चार नालायक निकल जाते हैं तो उनके साथ दूसरे लोग भी बदनाम होते हैं! यही तो कारण है कि लोग ऐसे साधुओं को अपने घर मे पैर नही रखने देते?

पहले सब साधु पैदल ही चलते थे। आज भी जैन साधुओं ने वह मर्यादा कायम रख छोड़ी है। जैन साधु किसी भी अवस्था में रेल, मोटर या बैलगाडी आदि पर सवार होकर यात्रा नहीं करते। इससे बहुत लाभ होते है। पैदल घूमने से गांव-गांव की जनता को साधुओ की संगति करने का और उनके धार्मिक एवं नैतिक उपदेशो को सुनने का अवसर मिलता है। ग्रामीण जनता में जागृति लाने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इससे पवित्र वायु-मण्डल तैयार हो जाता है। गांधीजी नमक के लिए सत्याग्रह करने को चले तो पैदल ही चले थे। क्या उन्हें मोटर आदि सवारी नहीं

मिल सकती थी ? उनकी इच्छा मात्र पर सभी कुछ प्रस्तुत हो सकता था, मगर दीर्घ दृष्टि वाले गांधीजी ने पैदल कूच करने का ही निश्चय किया। वे समझते थे कि ग्रामीण जनता मे खास तरह का वायुमण्डल तैयार करने के लिए पैदल प्रवास से बढ कर और कोई उपाय नही है।

आजकल के राजनीतिक नेताओं की तरह हम साधु भी अगर रेल मे सफर करने लगें तो गांवो की जनता का पथप्रदर्शन कौन करेगा ? भारतवर्ष मे सात लाख गांव हैं। इन गांवो में करोडो आदमी रहते हैं, उन्हे धर्म और नीति की शिक्षा प्रायः साधुओ से ही मिलती है। राजनीतिक नेता लोग हवाई जहाजों रेलो और मोटरो से सफर करते हैं। इसका परिणाम यह आया है कि नगरो में तो कुछ जागृति भले आई हो, पर ग्रामो में वैसी जागृति नही आई। इसी कारण आज राजनीति नगरों की ही चीज बन गई है, ग्रामो से मानो उसका कोई सरोकार ही नही है ! अगर साधु भी ग्रामो की उपेक्षा कर दें तो धर्म और नैतकता भी नगरो की ही वस्तु बन जायगी। ग्रामो मे धर्म नही रह जायगा। करोड़ो लोग पथ-प्रदर्शन के अभाव में गिर जाएँगे। जब ग्रामों में अधर्म और अनीति फैल जायगी तो नगर कब सुरक्षित रह सकेंगे ?

हम जोधपुर आने से पहले पाली में थे पाली से रेल में बैठकर जोधपुर आ पहुँचते तो आराम तो अवश्य मिलता, पैदल चलने की परेशानी से भी बच जाते, मगर बीच के ग्रामों की जनता को प्रभु का पावन धर्मसंदेश कौन सुनाता ? शालावास आदि गांवों मे जो तड़बदी हो रही थी और आपसी फूट के कारण लोग एक

दूसरे के विरोधी हो रहे थे उन्हें कौन समझाता ? कौन उनमें एकता कराता ?

वैष्णव-ग्रंथ में उल्लेख आता है कि साधु को रुपये पैसे देने वाला नरक-कुंड मे गिरता है । साधु अपने पास रुपया पैसा रक्खे तो उसमे और गृहस्थ में अन्तर ही क्या रहे ? अर्थ अनर्थ का मूल है। अर्थ के बदले जीवन बिगाड़ना पड़ता है । अतएव साधु रुपये पैसे को सर्प के समान समझकर उससे दूर ही रहते हैं। ऐसा करने में ही साधु का कल्याण है।

साधु को मकान बनवाने की भी आवश्यकता नही है । साधु को 'अनगार' कहा गया है। इसका मतलब ही यह है कि वह कोई निश्चित् घर बनवा कर सर्वदा स्थायी होकर उसमे न रहे। उसकी मालिकी का कोई घर नही होना चाहिए । साधु के गृह होगा तो वह गृहस्थ ही कहा जायगा। उसे अनगार अर्थात् अगार (घर) से रहित कैसे कहा जा सकता है ? वास्तव में साधु का कोई नियत निवासस्थान नही होता। वह तो रमता राम ही भला है ! घूमते-फिरते, प्रभु के नाम का अलख जगाते, जहाँ कहीं पहुँच जाय वहां पहुँच जाय ! जहां पहुँचे, निर्दोष मकान न मिले तो श्मशान में जाकर छतरियो में रह जाय वह भी सुलभ न हो तो किसी वृक्ष के नीचे आसन जमा ले। कुछ समय ठहर कर फिर आगे की राह पकड़े । वह भ्रमण करता ही रहे। इसी आशय से 'परिव्राजक' शब्द बना है। 'परिव्राजक' का अर्थ है- घूमता फिरता रहने वाला ।

असलिये सन्यासी आग का भी स्पर्श नहीं करता। जब भिक्षा ही उसकी आजीविका है तो भोजन आदि पकाने के झंझट मे उसे नहीं पडना चाहिए। उसे सर्दी से बचने के लिए आग का उपयोग नहीं करना चहिए। सन्यासी सहनशील होता है। सुकुमारता उसे शोभा नहीं देती।

इन्दौर की बात है। शिवाजीराव बैठे थे कि एक महात्मा उधर होकर निकला। उसके पैरो में चमकीले जूते थे। उसे देख कर उन्होंने बुलवाया और कहा—आप महात्मा होकर ऐसे चमक-दमक वाले जूते पहनते हैं ? और फिर उन्होने अपने कर्मचारी से कहा—इनके जूते खोलो और इन्ही को लगाओ ! यह सुनते ही महात्मा की अकल ठिकाने आ गई।

मतलब यह है कि साधु को शौकीन नहीं होना चाहिए। अगर वह सुन्दर वेषभूषा की ओर ध्यान देगा तो परमात्मा में उसका ध्यान नही रहेगा। वह भोगो की ओर खिचता चला जायगा और अन्त में पतन हुए बिना नही रहेगा। क्यों कि जो पहले-पहले ही विवेक नही रखता, उसका पतन अवश्यंभावी है। भर्तृहरि कहते हैं:—

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

कोई भी आदमी जब गिरता है और सँभलने की कोशिश नही करता तो लगातार उसका पतन होता ही जाता है। अतएव पतन से बचने के लिए पतन का प्रारम्भ ही नहीं होने देना चाहिए, साधु बनाव सिंगार में पड़ जाय तो उसका पतन हुए बिना रह ही नहीं सकता। इसीलिये साधु को उघाड़े पैर और नंगे सिर रहने का विधान है।

कोई बैठे हाथी घोड़ा पालकी मंगाय के ।
साधु चले नंगे पैयां चींटी को बचाय के ।।
तुलसी मगन भया हरि गुण गाय के ।। ध्रुव ।।

आज अनेक साधु कहलाने वाले भी हाथी, घोड़े और पालकी पर सवार होकर राजा-रईसों की भांति ठाठ के साथ चलते हैं, मगर सच्चा साधु वही है जो नंगे पैरों चलता है और चिउंटी आदि जीव-जन्तुओं को बचाता हुआ चलता है। उसके चलने से किसी जीव को कष्ट नहीं होता।

कई लोग अपने पास तो धन नहीं रखते मगर दूसरे के पास जमा कर देते हैं और उसका ब्याज आता रहता है! मगर जिसके पास धन होगा, क्या उसके पास लुके-छिपे औरतें नहीं आने लगेंगी?

हम आपको त्याग का उपदेश देते हैं और उपदेश के बदले कल्दार मांगने लगें तो क्या उस उपदेश का प्रभाव पड़ेगा? यहीं तक कि सुनने वाले भी कम हो जाएँगे! वक्ता के वचनों की अपेक्षा उसके जीवन व्यवहार का असर अधिक पड़ता है। जो वक्ता स्वयं त्यागमय जीवनयापन नहीं करेगा वह अपने उपदेश से दूसरों को त्यागशील नहीं बना सकेगा।

साधु होकर साधे काया, कौड़ी एक न रक्खे माया।
लेना एक न देना दोय, ऐसा पंथ साधु का होय ।।
साधु रेवे सावधान, राखे नहीं पाव धान ।
जो लावे सो देय चुकाय, वासी बचे न कुत्ता खाय ।।

साधु अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को अपने वश मे रखता है। वश धन-सम्पदा के नाम पर एक कौड़ी भी अपने पास नही रखता । साधु का किसी भी गृहस्थ से कोई लेन-देन-सरोकार नही होता। वह गृहस्थो के घर से निर्दोष भिक्षा लाता है और आवश्यकता से अधिक नही लाता जितनी लाता है उतनी खाता है। कल खाने के लिए आज कुछ भी लाकर नही रखता। साधु का जीवन ऐसा निरपेक्ष होता है कि आगे की उसे चिन्ता नही होती।

भिक्षा के अतिरिक्त किसी और वस्तु की आवश्यकता हो तो गृहस्थ से मांग लेता है और काम निकाल कर वापिस दे देता है। रात को एक सुई भी अपने पास नही रखता। साधु लेने के नाम पर ईश्वर का नाम लेता है और देने के नाम पर धर्म का उपदेश देता है।

साधु आज साधुत्व की इस मर्यादा को पालन करते हुए गाव-गाव और नगर-नगर में भ्रमण करें तो आज हिन्दुस्तान फिर एक बार गुलजार हो सकता है। मगर कितने साधु हैं आज इसे पालने वाले ? भारत मे साधु कहलाने वालो की संख्या लाखो पर है, मगर खेद है कि पंचम आरे के प्रभाव से उन्होने अपनी मर्यादा छोड़ दी है। इस पचम आरे के प्रभाव से साधु लोग अपने उच्च आचार-विचार से डिग रहे हैं और भक्तों की भावना भी बदलती जा रही है।

पापों से दूर रहने वाले, नीतिपूर्वक चलने वाले और भद्र स्वभाव वाले लोगो को देव की उपमा दी जाती है और मिथ्यादृष्टि,

अनीतिपरायण और कुटिल हृदय वालों को राक्षस की उपमा दी जाती है। हिन्दुओ मे तेतीस कोटि देवता माने जाते हैं इसका आशय यह क्यो न समझा जाय कि भारत वर्ष की तेतीस करोड़ जनता प्राचीन काल में देवोपम थी। जिस काल में भारत वासी नर-नारी उच्च आचार-विचार पर आरूढ़ रहते थे, नीति का पालन करते थे और सरल हृदय थे, उस काल मे वे व्यवहार में देव कहलाने के अधिकारी थे।

प्राचीन काल में नामा लेखा भी नही था। जिसने जो बात कह दी वह पत्थर की लकीर हो गई ! कुछ भी हो, उसमे परिवर्तन नही होता था। आज भी उसके कुछ-कुछ अश शेष रह गये हैं। सगाई या वाग्दान की प्रथा उसी का एक नमूना है। वरपक्ष और कन्यापक्ष मौखिक रूप से अपनी सन्तान का सम्बन्ध तय कर लेते हैं उसकी कोई लिखा पढ़ी नही होती। फिर भी वरपक्ष की ओर से हजारो-लाखो का जेवर कन्या को चढा दिया जाता है। परन्तु खेद है कि अभी-अभी, कुछ वर्षों से इस विषय मे भी कहीं-कहीं बेईमानी शुरू हो गई है। कई लालची प्रकृति के लोग सगाई पक्की करके मुकर जाते हैं और जेवर भी दबा लेते हैं। ऐसे लोग समाज के कलक हैं और कहना चाहिए कि घोर कलिकाल के अग्रदूत हैं।

आज कल लेन देन के बारे में इतनी अप्रमाणिकता दिखलाई जाती है कि लोगों को आपस में एक दूसरे पर विश्वास ही नहीं रह गया है। पहले पहल अविश्वास के कारण गवाह बनाये जाने लगे। जब गवाह भी लालच में पड़ कर झूठ बोलने लगे तो लिखापढ़ी की प्रथा शुरु हुई और लेनदार हस्ताक्षर कराये जाने लगे। हस्ताक्षर करके भी लोग मुकरने लगें तो रजिस्ट्री

कराने की तरकीब निकाली गई। इस प्रकार ज्यो-ज्यों बेईमानी बढती जाती है, त्यों-त्यों नये-नये बंधन तैयार किये जाते हैं। मगर कोई भी बन्धन पूरी तरह कारगर नही हो पाता। यह सब इस पंचम आरे की देन है। इसके प्रभाव से जनता की नीयत में लगातार अन्तर पड़ता ही जाता है।

पहले के मनुष्य ईमानदार थे तो सरकार को पुलिस की व्यवस्था भी नही करनी पड़ती थी। चोरी करने का कोई नाम नहीं लेता था। डाकू थे नही, गीरहकट भी थे नही, कोई किसी के प्रति अत्याचार करता नही था, फिर पुलिस की आवश्यकता ही क्या थी ? उस समय के मनुष्य देव और भाग्यवती स्त्रियाँ देवियो के समान थी। पर पचम आरे ने सारा परिवर्त्तन कर दिया !

इसके सिवाय पंचम आरे में विद्याओं का, मंत्रो का, और यन्त्रो का भी प्रभाव कम हो गया है और अधिकाधिक कम होता जायगा। कहा जा सकता है कि पहले बहुत चलते थे, मगर अब क्या हो गया है ? मगर यह भूल नही जाना चाहिए। कि पहले के लोग जबान के और लंगोट के पक्के थे ! आज कोरा लिफाफा है।

एक आदमी किसी बात पर एक बाबा से लड पडा। बाबा गुस्से मे आकर आंखे लाल-लाल करके बोला—फू ! दूसरे समझदार को बाबा को यह हरकत देख कर हँसी आ गई। उसने कहा—इसको तो फू नहीं होगी, तेरी फू हो जायगी। ब्रह्मचर्य का ठिकाना नही है और चला है देवताओ को वश मे करने ! बिना ब्रह्मचर्य के देवता तो क्या, तेरा बाप भी वश में

नहीं होगा। देवताओं को वशीभूत करने के लिए कितनी सचाई तपस्या और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है !

इस पांचवें काल में इन सब गुणों की कमी हो जाने के कारण ही विद्या, मंत्र आदि का प्रभाव कम हो जायगा। मनुष्यों को देवो के दर्शन भी दुर्लभ हो जाएँगे।

कोई कह सकता है कि हमें देवता दिखाई नही देते तो हम उनका अस्तित्व ही कैसे स्वीकार करे ? उसके लिए यही उत्तर पर्याप्त है कि तुम देवो का अस्तित्व स्वीकार करो या न करो, इससे देवो के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नही पड़ने वाला है ! देवों का होना तुम न मानोगे तो क्या उनकी नास्ति हो जायगी ? जो वस्तु है वह तो है ही, चाहे उसे कोई स्वीकार करे अथवा न करे। हाँ, अस्तित्व वाली वस्तु का अस्तित्व स्वीकार न करने से प्रमाणिकता का अभाव अवश्य हो जायगा।

बहुत से लोगों का खयाल है कि जिसे हम आंखों से नहीं देख सकते उसका अस्तित्व है ही नही। मगर यह उनका भ्रम है। उन्हे अपनी शक्ति का मिथ्या अभिमान है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति की मर्यादा समझनी चाहिए। मनुष्य अपनी चमड़े की आँखों से बहुत थोडी चीजे देख सकता है। आँख सिर्फ रूपवान् वस्तुओं को ही देखती है। मगर रूपवान् पदार्थों की अपेक्षा अरूपी पदार्थ अधिक हैं। छह द्रव्यो मे से सिर्फ एक पुद्गल द्रव्य रूपी है और पाच अरूपी है। ऐसी स्थिति में वह पांच को नहीं देख सकता और सिर्फ एक हा को देख सकता है।

अब उस एक को लीजिए । रूपी पुद्गलद्रव्य के भी दो भेद हैं—(१) अणु और (२) स्कन्ध । आंख में अणु को देखने की भी शक्ति नही है, क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म होता है। अतएव एक द्रव्य मे से भी आधा द्रव्य ही देखने योग्य रह गया। स्कन्ध भी कई प्रकार के होते हैं। उनमे से कई दिख सकते हैं और कई नही दिख सकते हैं। जो दिख सकते हैं वे भी अगर अधिक दूरी पर हों तो दिखाई नही देते, आंख से एकदम निकट हों तो भी दिखाई नही देते, सिर्फ वही दिखाई देते हैं जो न ज्यादा दूर हो और न ज्यादा नजदीक हो। ऐसे दिखाई दे सकने योग्य स्कन्ध भी अगर कोई चीज आड में आ जाय तो दिखाई नही देते। अगर कोई भी चीज आड़ मे न हो, किन्तु आख की रोशनी ही कम हो या बाद मे कम हो गई हो तब भी वे दिखाई नही दे सकते।

इस प्रकार सही तौर से विचार किया जाय तो समझ में आ जायगा कि इस अत्यन्त विशाल जगत् में से बहुत ही कम वस्तुएँ मनुष्य के द्वारा देखी जा सकती हैं। मनुष्य की इन्द्रिय-शक्ति अत्यन्त क्षुद्र है ऐसी दशा मे यह अभिमान करना कि हम जो देखते हैं वह तो है और जिसे नही देखते वह नही है अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। इस अभिमान के कारण बहुत-से लोग सत्य वस्तु का भी अपलाप कर देते हैं।

जो लोग गंभीर बातों को नही समझ सकते, उनसे तो यही कहना होगा कि-भाई ! तू अपने बाप-दादाओ को अगर नही देख सकता तो क्या उनका भी अस्तित्व नही मानेगा ? अगर विना देखे भी उनका अस्तित्व मानता है तो फिर देवों का भी अस्तित्व क्यो नही मान लेता ? अगर तेरा यह कहना हो कि इस

समय यहां बाप दादा दिखाई नही देते, अतः इस समय यहां उनका अस्तित्व नही है, तो फिर ठीक है यही बात देवों के विषय में भी मान लो। जब जहां देव दिखाई नही देते तब वहां वे नहीं हैं, ऐसा अगर मान भी लिया जाय तब भी इसका अर्थ यही निकला कि और कही उनका अस्तित्व है!

हां, तो तात्पर्य यह है कि देवों के अस्तित्व से इंकार नही किया जा सकता, परन्तु पंचम काल में उनके दर्शन विरले ही भाग्यवानों को होगे। जहां ब्रह्मचर्य और तपस्या नही है वहां देव-दर्शन दुर्लभ है। जब निर्जरा के हेतु तपस्या की जाती है तो देवता नजर आते हैं। देवताओ को अवधि ज्ञान होता है: उससे वे जान लेते हैं कि यह असली धर्मात्मा है या नकली है?

पांचवें आरे में गोरस की अर्थात् दूध, दही, घी, मक्खन आदि की शक्ति भी कम हो जायगी। भाइयों! गोरस की शक्ति मे तेजी के साथ कमी हो रही है। अनुभवी वृद्ध लोगों का अनुभव बतलाता है कि पहले दूध, घी आदि में जितनी शक्ति थी, उतनी आज नहीं रही है। जितनी शक्ति आज है उतनी आगे नही रहेगी। जब गोरस की शक्ति क्षीण हो रही हो तो मनुष्यों की शक्ति का क्षीण हो जाना भी स्वाभाविक है।

प्रथम तो काल के प्रभाव से गोरस की शक्ति कम हो गई है तिस पर आज कल, खास तौर से शहरो में उसमें मिलावट भी होने लगी है। आज असली घी मिलना कठिन है। बनावटी घी, जिसे बुद्धिमानो ने स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक बतलाया है, आज कल चल पड़ा है। शुद्ध घी के नाम पर भी वही मिला-जुला

मिलता है। दूध में पानी मिलाया जाता है। पानी मिलाने से दूध पतला मालूम न हो, इसके लिए जो आदि का आटा उसमें घोल दिया जाता है। मक्खन निकाले हुए दूध का दही जमाया जाता है! यह हाल है आज कल गोरस का!

अनाज भी अच्छा कहां मिलता है? अमेरिका और आस्ट्रेलिया का बचा खुचा फेंकने योग्य गेहूं आपको नसीब होता है। उसे भी लोग मशान की चक्की मे पिसवाते हैं जिससे वह नि:सत्व हो जाता है। मशीन की चक्की मे पिसवाने की प्रथा चल पडने से आटा ताजा नहीं मिलता और बड़े घरों की महिलाएँ आलस्य मे पड़ी रहती हैं। इन सब कारणो से भी लोगो का स्वास्थ्य चौपट होता हैं।

नगर निवासियों की अपेक्षा ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य फिर भी अच्छा रहता है। वे प्रायः स्वय पशुओ का पालन करते हैं, अतएव उन्हें निशानिश दूध-घी मिल जाता है। वहां की स्त्रियाँ, अपेक्षाकृत मेहनती भी होती हैं। वे आलस्य में अपना समय नही व्यतीत करती! अतएव उनकी सन्तान भी हट्टी-कट्टी और तंदुरुस्त होती है। शहरों मे तो कइयो के सन्तान भी नहीं होती! पौष्टिक चीजें नही मिलती तो ताकत नही आती और ऐसी स्थिति में अगर सन्तान न हो अथवा कमजोर और रुग्ण हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? शहर की स्त्रियों की हालत आज बडी दयनीय है! किसी को हिस्टीरिया का दौरा होता है तो किसी को दूसरी बीमारी घेरे हुए है। इसका प्रधान कारण यह है कि इन्होने व्यायाम करना छोड दिया। डंड पेलना और बैठक लगाना ही व्यायाम नहीं है। पहले की स्त्रियां हाथों से पानी भर कर लाती

थीं हाथों से चक्की पीसती थीं और बिलोने आदि का काम भी अपने ही हाथो से करती थीं। इन सब कामों को करने से भोजन हजम हो जाता था और ताकत आती थी।

इन्दौर के सेठ कन्हैयालालजी भंडारी के घर का जिक्र है। वे एक बार बैठे थे और उसी समय एक नौकर दवाइयो का थैला भर कर लाया। उन्होने उसे अपने पास बुलाया और पूछा—थैले मे क्या है? नौकर ने थैला जमीन पर रख कर शीशियां निकालना शुरु किया और बतलाया—यह बड़ी बहूजी की दवा है, यह छोटी बहूजी की है, यह भैया साहब को है और यह बच्चों की है!

नौकर की बात सुनकर भंडारीजी विचार में पड गये। सोचने लगे—मेरे घर का यह हाल है! औरतें और बच्चे—सभी बीमार हैं?

उनके घर में यह रिवाज है कि प्रतिदिन प्रातःकाल सब स्त्रियां और बच्चे आकर नमस्कार किया करते हैं। दूसरे दिन, सवेरे जब सब आये तो भंडारीजी ने बहुओं से कहा—मेरे दिल मे एक बात आई है। उसे कबूल करो तो कहूं। सबने कहा—फर्माइये। हम आपकी आज्ञा से बाहर कब है? तब भंडारीजी बोले—तुम प्रत्येक सेर-आधा सेर आटा रोज पीसा करो। मैं तुम्हारे हाथ से पिसे आटे की रोटियां खाना चाहता हूं। मशीन की चक्की का आटा अब मैं नही खाना चाहता।

बस, उसी दिन सब बहुओं के पास एक-एक चक्की भेज दी गई और वे सब पीसने लगी। परिणाम यह हुआ कि थोड़े

ही दिनों के बाद सब नीरोग हो गई—सब की बीमारी मिट गई। दवाइयो का खर्च घट गया। हालांकि पैसे बचाने का दृष्टिकोण मुख्य नही था, फिर भी पिसाई के पैसे भी बच गये!

मशीन-चक्की में गेहूं पिसवाने से आपके आटे में कोई करण कसाई का और कोई बकरों को मारने वाले का शामिल हो जायगा और तुम्हारी बुद्धि पर उसका प्रभाव भी पडेगा। अतएव—

आटा गिरनी का मत खाओ, इसमें दोष है भारी।
ताकत हीन बनावे तुझको, धर्म न रहे लगारी॥
शिक्षा मानियो रे हमारे देश के प्यारे बन्धु!॥ध्रुव॥

भाइयो! कम से कम इतना तो निश्चय कर ही लो कि जब तक तुम घर पर रहोगे तब तक मशीन का पिसा आटा नहीं खाओगे। भाइयों और बहिनो! कोई भी मत खाओ मशीन का पिसा आटा! कितने आलसी हो गये हो! रोगों से ग्रसित हो गये हो! यह सब तन्दरुस्ती बिगाडने का रास्ता है। ससार के सात सुखो मे सब से बडा सुख निरोगी काया गिना गया है। जब शरीर स्वस्थ नही होगा तो चित्त मे शान्ति कैसे रहेगी और सामायिक पौषध आदि धर्म क्रिया भी किस प्रकार कर सकोगे? अरे बाल-बच्चो की रक्षा भी कैसे कर सकोगे? मैं जो भी कह रहा हूं तुम्हारे ही फायदे के लिए कह रहा हू। मानोगे तो तुम्हारा इहलोक और परलोक सुधर सकेगा इसमे मेरा क्या स्वार्थ है?

कुछ तो जमानें का असर और कुछ लोगों का आलस्य बीमारियो को बुलावा और निमत्रण दे रहा है। आप सत्त्वहीन

हो गये हैं और फिर कहते हैं कि हमारे सन्तान नही होती ! और देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान में सन्तति अधिक उत्पन्न होती है, फिर भी अगर निस्संतान हैं तो यह आपका ही दोष है। जिनके घर में गाय होती है, वे हट्टे-कट्टे और तन्दरुस्त होते है। उनके घर सन्तान की कमी नही रहती। गाँव के लोगो को देखो वे कैसे स्वस्थ होते हैं। बहुत-सी बीमारियों को तो तुम स्वयं बुलाते हो। आचार, मुरब्बा, चटनी, चाय, बिस्कुट, तेज मसाले आदि-आदि तामसिक चीजें खा-खाकर तुमने अपनी आयु को क्षीण कर लिया है। यह सब घर का खोज मिटाने की तरकीबें हैं। हम कहते हैं फिर भी तुम नही मानते ? रोज सिनेमा देखने को पैसे हैं और सिनेमा देखकर सीखी हुई बुरी आदतो मे खर्च करने के लिए भी पैसों की कमी नही है, मगर धर्म का कोई काम आ पड़े तो कह देते हो—व्यापार नही चलता ! गाये भूखो मर रही हैं, आदमी दुखी हैं लुगाई अंधी है, पड़ोसी के बच्चे नगे फिर रहे हैं, पर आप उस ओर आँख उठा कर भी नही देखते।

मतलब यह है कि पाँचवें आरे मे जिंदगी भी कम हो जायगी, बुद्धि भी कम होगी, शारीरिक शक्ति भी कम हो जायगी। धीरे-धीरे ऐसी बस्तियाँ भी कम हो जाएँगी, जहाँ मुनि चौमासा कर सकें।

इसके अतिरिक्त पांचवें आरे में श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं और साधु की बारह प्रतिमाएं विच्छिन्न हो जाएंगी। लोगो मे जब शारीरिक शक्ति ही नही रहेगी तब प्रतिमाओ को वे कैसे वहन कर सकेंगे।

गुरु, शिष्य को ज्ञान कम सिखलाएंगे और शिष्य, गुरु की बुराई की ओर ही विशेष ध्यान रक्खेंगे। सच्चे साधु महात्मा

कम होगे भेषधारी साधु बहुत होगे जो दया दान का निषेध करने वाले होगे यही नही, साधुओ मे फूट हो जायगी और नाना गच्छ गण आदि उत्पन्न हो जाएंगे । सम्प्रदाय अलग-अलग हो जाएँगे और सम्प्रदायवाद का भूत उन पर सवार रहेगा। हां, अगर श्रावको मे एकता का भाव होगा तो साधुओ को क्रिया प्रकट रूप मे ठीक रहेगी और उनमे एकता भी हो जायगी। अन्यथा फूट होने से काम बिगडता ही जायगा।

कई लोग कहते हैं—सम्प्रदायो का नाश हो! मगर वास्तव में सम्प्रदायो मे बुराई नही है, सम्प्रदायवाद मे बुराई है। सम्प्रदायवाद के वश होकर लोग अपने दिल और दिमाग को संकीर्ण बना लेते हैं। एक सम्प्रदाय का अनुयायी दूसरे सम्प्रदाय वालों की निन्दा करता है, उनके सद्गुणो को भी दुर्गुणो के रूप में देखता है! अपने अवगुणो की ओर ध्यान नही देता। लोग आपस मे टकरा-टकरा कर अपनी शक्ति को नष्ट करते हैं। सभी सम्प्रदाय भले बने रहे, अगर उनमे पारस्परिक सद्भावना है। एक दूसरे के प्रति सहायक और पोषक होने की उदारता हो और शासन को दिपाने की सच्ची लगन हो तो सम्प्रदायो की अनेकता भी हानिकारक नही होती। मगर काल के प्रभाव से ऐसा होता नही है इसी प्रकार आज छोटे-छोटे सम्प्रदायो की जगह एक विशाल और सम्मिलित संघ बनाने की आवश्यकता है।

जैन संघ ने सम्प्रदायवाद से होने वाली हानियो को भली भांति अनुभव कर लिया है। सम्प्रदायवाद का ही यह फल है कि आज एक सम्प्रदाय का साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधु से मिलने मे वार्तालाप करने मे एवं मिलजुल कर धर्मध्यान करने

में पाप समझता है ! एक साधु दूसरे साधु के पास से निकल जायगा, मगर बातें नहीं करेगा। रंडियों और भड़वो से बात करने में तो पाप नहीं लगता है, परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधुओं से बातचीत करने मे पाप लगता है ! कैसी विचित्र कल्पना है ! कितनी मूर्खता है !

हमारे पवित्र णमोकारमंत्र में कहाँ वाड़ेबंदी की गंध भी है ? उसमे कहा है—'णमो लोए सव्व साहूणं'। अर्थात् इस लोक मे जितने भी साधु हैं उन सब को नमस्कार हो ! मंत्र मे यह कहीं नही बतलाया कि अपने सम्प्रदाय के साधुओ को नमस्कार करो और इतर सम्प्रदायों के संयमशील, तपोधन साधुओ को नमस्कार मत करो ! फिर यह संकीर्णता कहाँ से आई ? यह लोगों के अपने दिमाग की उपज है !

भाइयो ! अगर कोई साधु आपसे कहे कि उनके पास मत जाओ तो कहना कि हम आपके पास नही आएगे ! महाराज, मुश्किल से पन्द्रह मिनिट निकालकर हम आत्म कल्याण करने आते हैं और आप हमें अकल्याण का मार्ग बतलाते हैं ! आप तैरने का नही, डुबाने का रास्ता क्यो दिखलाते हैं ?

भाइयों ! इस आरे मे म्लेच्छ और पापी राजा बढ़ेगे और उत्तम राजा कम होगे। उत्तम के घर मे नीच का निशान होगा। जब आवश्यकता होगी तब वर्षा नही होगी और जब आवश्यकता नही होगी तब वर्षा होगी। भाई भाई का दुश्मन हो जायगा !

फिर भी पांचवां आरा एकान्त धर्महीन नही होगा। धर्म का प्रकाश मौजूद रहेगा और वह कभी मन्द और कभी तीव्र हो जायगा। इस आरे मे भी आत्म कल्याण की इच्छा रखने वाले अपना कल्याण कर सकेगे। बड़े बड़े मुनिराज और श्रावक भी होगे।

जम्बूकुमार की कथा :—

जम्बूकुमार ने अपनी पत्नियों से कहा—भद्र महिलाओं ! आप सब असली तत्त्व पर पहुँचने का प्रयत्न करो। बहिरात्मदशा बनी रहेगी तो अन्तरात्मदशा प्राप्त नही होगा और अन्तरात्मदशा प्राप्त हुए बिना परमात्मदशा की भी प्राप्ति नही हो सकती। शरीर को ही आत्मा समझना और सांसारिक सुखों को ही सुख समझ उसमें रचे-पचे रहना बहिरात्मदशा कहलाती है। यह दशा अविवेक से परिपूर्ण है। इसमे लेशमात्र विवेक का प्रकाश नही है। अतएव इसे त्याग कर ऊँचा उठने की कोशिश करो। अभी अवसर है। महाप्रभु महावीर स्वामी अभी मोक्ष पधारे हैं। अब भी केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर है, मगर यह अवसर अधिक समय तक रहने वाला नही है। अतएव क्षण भर भी प्रमाद करना उचित नही है।

तुम कहती हो कि हम आठों इन्द्राणी के समान हैं, मैं कहता हूँ कि तुम आठो इन्द्राणी से भी बढ़ कर हो। तुम्हारी शक्ति के साथ बेचारी इन्द्राणी की क्या तुलना हो सकती है ! तुममे संयम को स्वीकार करने की शक्ति है, तपस्या करने का सामर्थ्य है और मुक्ति को भी प्राप्त कर लेना तुम्हारे लिए कठिन नही है ! बेचारी इन्द्राणी तुम्हारे समक्ष क्या चीज है ? वह तो सिर्फ भोगो की पुतली है। उसमे श्राविका के योग्य धर्माचरण करने की भी ताकत नही है। लेकिन तुम अपने सच्चे स्वरूप को समझती नहीं हो इसी कारण अपने आपको इन्द्राणी के समान समझती हो। यही बहिरात्म दशा है, इसका परित्याग करके अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचानोगी और अपनी असाधारण शक्तियों को

देखोगी तब तुम समझ पाओगी कि तुम क्या चीज हो ! भेड़ों के साथ रहने वाला सिंह का बच्चा अपने स्वरूप को न समझ कर अपने को भी भेड समझने लगता है। तुम्हारा भी यही हाल है ! आत्मा का स्वरूप समझ लेने पर संसार के समस्त जीवों पर तुम्हारा समता-भाव जागृत हो जायगा। फिर तुम सिर्फ मुझ पर ही स्नेह नही रक्खोगी, बल्कि जीव-मात्र पर स्नेह रक्खोगी। अन्तर यह होगा कि उस स्नेह मे किसी प्रकार का वैषयिक स्वार्थ न होगा, वासना की गंदगी नही होगी ! निस्वार्थ, वासनाहीन और उज्ज्वल स्नेह दान करके तुम कृतार्थ हो जाओगी।

मैंने आत्मा का स्वरूप थोड़ा-बहुत समझ पाया है। अतएव मैं तुम आठों के बदले आठ प्रवचन-माताओ को चाहता हूँ, सिद्ध भगवान् के आठ गुण प्राप्त करना चाहता हूँ। जैसे आठ मद मुझे अपने चक्कर मे नही फँसा सकते, उसी प्रकार तुम आठों के मोह मे भी मैं नहीं पड सकता। तुम भी मेरा मोह त्याग दो। मोह आत्मा को कलुषित करने वाला मैल है।

देखो, भगवान् अरिष्टनेमि ने जब संयम धारण किया था तो क्या राजीमतीजी पीछे रही थी ? तुम भी उनका अनुसरण करो। हमारे साथ चलो। परमात्मा की गोद में हम सब को समान स्थान प्राप्त होगा। अगर तुम सब मेरी बात समझ कर स्वीकार करोगी तो निश्चित समझो कि आनन्द ही आनन्द होगा।

१-१०-४८ }



इन्सानियत की इज्जत

स्तुति :

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है – हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ।

आचार्य महाराज फरमाते हैं—भगवान् ! जैसा विस्तृत ज्ञान आपकी आत्मा मे शोभायमान है, वैसा हरि-हर आदि मे

नही प्रतीत होता। ज्ञान के विषय में आपकी जो विभूति है और ज्ञान का जो प्रकाश आपने पाया है, वह अन्य देवताओ में नहीं पाया जाता। मणियो पर चमकता तेज एक अनोखी ही आभा उत्पन्न कर देता है। कांच के टुकड़े पर पड़ने वाले तेज मे वह आभा कहाँ ?

तात्पर्य यह है कि वीतराग और रागी देवो में उतना ही अन्तर है जितना मणि और काच मे होता है। वीतराग देव मणि के समान हैं और रागी देव काच के समान हैं। इस स्तुति से यह भी आशय निकलता है कि जिसकी आत्मा मणि के समान स्वच्छ होगी, उसका ज्ञान भी निर्मल और अधिक प्रकाशवान् होगा। इसके विपरीत जिस आत्मा पर मैल जमा होगा अर्थात् कषायो की कालिमा होगी, उसका ज्ञान भी मलीन होगा।

जैन सिद्धान्त के अनुसार आत्मा को पहले वीतराग दशा प्राप्त होती है। उनके पश्चात् सर्वज्ञ-अवस्था की प्राप्ति होती है। दसवें गुणस्थान के अंत मे क्षपकश्रेणी वाला जीव मोहनी कर्म का पूर्ण रूप से क्षय करता है, तब सीधा बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर, अन्तिम क्षण मे तीन घातिया कर्मों का नाश करके सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होकर तेरहवे गुणस्थान को प्राप्त करता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म अन्तर्मुहूर्त्त पहले नष्ट होता है और शेष घातिया कर्म अन्तर्मुहूर्त के बाद। यह क्रम बड़ा ही सुन्दर और स्वाभाविक है। वस्तुतः आत्मा जब तक पूर्ण रूप से निर्मल न बन जाय तब तक उसके ज्ञान-दर्शन गुण अपने शुद्ध स्वरूप मे प्रकट नहीं हो सकते।

कल्पना कीजिए, किसी में सर्वज्ञता प्रकट हो जाय अर्थात् वह सभी कुछ जानने-देखने लगे, मगर उसकी आत्मा निर्मल न हो अर्थात् उसमे कषाय भाव मौजूद हो तो कितना अनर्थ हो जाय ? मगर गनीमत यही है कि ऐसा कभी होता नहीं है। इसी नियम के कारण वीतराग और सराग देवो मे अन्तर पड जाता है। वीतराग देव सर्वज्ञता के धनो हैं और सराग देव सर्वज्ञ नही है।

पक्षपात तो सभी जगह बुरा है और उससे मनुष्य को सदैव बचते हुए दिल और दिमाग को निष्पक्ष बनाये रखना चाहिए। क्योकि पक्षपातपूर्ण मानस उचित-अनुचित का विवेक नही कर सकता। वह गुण-अवगुण की सही परीक्षा नही कर सकता। फिर भी यदि और-और बातो मे पक्षपात न छूट सके तो भी देव, गुरु और धर्म के सम्बन्ध मे तो त्यागना ही चाहिए। देव, गुरु और धर्म सम्बन्धी पक्षपात मनुष्य को जन्म-जन्मान्तर मे क्लेशकारी सिद्ध होता है। जिसकी आत्मा मे न्याय बुद्धि जागृत होगी और सरलता आएगी, वह अवश्य ही निष्पक्ष भाव से देव, गुरु और धर्म की परीक्षा करेगा।

देव की परीक्षा की कसौटी पहले बतलाई जा चुकी है। गुरु की परीक्षा कंचन और कामिनी के त्याग से हो जाती है। धर्म की कसौटो अहिंसा है। इस विषय को भलीभाति समझाने के लिए विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है, मगर मुझे तो अपनी मर्यादा मे ही, सक्षेप मे कहना होगा। जो भाई विस्तार के साथ इस विषय को समझना चाहें वे शास्त्रो को अध्ययन करें या किसी दूसरे समय मे आकर चर्चा-वार्ता कर सकते हैं। मतलब यह है

कि देव, गुरु और धर्म की भलीभाति परीक्षा करके ही किसी को स्वीकार करना चाहिए। हमारे पूर्वज अमुक धर्म को मानते आये हैं, अतएव हमें भी वही धर्म मानना चाहिए, ऐसा सोचने वाले लोग विवेकशील नही कहला सकते।

भगवान् ऋषभदेव को हम अपना आराध्य देव क्यों मानते हैं? इसी कारण कि वे पूर्ण ज्ञानी थे। पूर्ण ज्ञानी होने के नाते ही हम उन्हें परमात्मा मानते हैं। उनको ही हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! चाहे ऋषभदेवजी हों, चाहे महावीर स्वामी हों, वे अपने बाप-दादा नही हैं। उनसे हमारा कोई संसार सम्बन्ध नही है। फिर हम उन्ही का नाम क्यो लेते है? और दूसरो का नाम क्यों नही लेते? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि हम किसी भी अमुक नाम वाले को परमात्मा नही मानते। हमारा कथन यह है कि जिसने परमात्मा के गुण प्राप्त कर लिए हैं, वही वन्दनीय और पूजनीय हैं, फिर चाहे उसका नाम कुछ भी हो। सर्वज्ञता और वीतरागता जिसमे पूर्ण रूप से प्रकट हो गई हो, उसका नाम चाहे ऋषभदेव हो, महावीर हो या राम या और कुछ हो, उसके चरणारविन्द मे हमारा मस्तक झुक जायगा। आचार्य हरिभद्र ने कहा है—

> पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
> युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

आचार्य अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए जनता को संदेश दे रहे हैं। कहते हैं— महावीर के प्रति मुझे पक्षपात नही है और

कपिल आदि के प्रति द्वेषभाव नहीं है। मैं तो सब के उपदेश का अध्ययन-मनन करता हूँ। जिसका उपदेश युक्ति युक्त हो, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

सच्चे मुमुक्षु का यही कर्त्तव्य है। उसे पूरी तरह निष्पक्ष होना ही चाहिए। केवल सत्य के प्रति उसके हृदय मे पक्षपात होना चाहिए। जिसकी मानसिक भूमिका इतनी ऊँची हो जायगी वह अवश्य सत्य को प्राप्त कर सकेगा।

भगवान् ऋषभदेव के वचनों की हमने परीक्षा की है और उन्होने जो बतलाया है वहीं बाद के तीर्थङ्करों ने बतलाया है। अतएव एक की परीक्षा में सभी की परीक्षा हो जाती है। आप भी चाहें तो जिनेन्द्र भगवान् के वचनो की परीक्षा कर सकते हैं। यो देखा जाय उनके वचनो की सत्यता के प्रमाण पग-पग पर प्रतीति में आ रहे हैं। भगवान् का कहा हुआ सब से बडा सिद्धान्त अनेकान्तवाद है। यह जिनेश्वर देव की असाधारण देन है। इसकी–सत्यता क्षण-क्षण मे प्रमाणित हो रही है। सभी वस्तुओ मे अनेक-अनन्त धर्म पाये जाते हैं। एक धर्मात्मक वस्तु संसार मे एक भी नही है। यह मान्यता जिसको सचाई से कोई इंकार नही कर सकता जैन धर्म की व्यापकता, संपूर्णता और सत्यता को प्रकाशित कर देती है।

कोई-कोई एकान्तवादी मानते हैं कि यह सारा जगत् एक ही तत्त्व का परिणमन है। अर्थात् यद्यपि संसार मे असंख्य–अनन्त वस्तुए दिखाई देती हैं, फिर भी उन सब के मूल मे एक ही तत्त्व है। उसी एक तत्त्व से सब पदार्थ बने हैं। उसी ने नाना

प्रकार के रूप धारण करके जगत् में विभिन्नता, विचित्रता अथवा अनेकरूपता उत्पन्न कर दी है।

जब यह सवाल खड़ा होता है कि वह एक तत्व कौनसा है। तब मतभेद पैदा हो जाता है। कोई कहता है कि वह एक मात्र तत्व जड है और कोई-कोई कहते हैं कि वह चेतन है। मगर विचार करने पर जान पडता है कि दोनो कथन एकान्तमय हैं, मिथ्या हैं। अगर संसार मे जड़ ही जड तत्व है तो उससे चेतन की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है? अगर एक मात्र जड़ की ही सत्ता होती तो चेतन पदार्थ होना ही नही चाहिए था। दोनों परस्पर विरोधी गुणो वाले हैं। ऐसी स्थिति में जड़ से चेतन की उत्पत्ति हो नहीं सकती।

कुछ लोगों का कथन है कि मूल तत्व जड नहीं, चेतन है। उसी चेतन तत्त्व से जड़ पदार्थ उत्पन्न हुए हैं मगर यह कथन भी सत्य प्रतीत नहीं होता। जैसे जड़ पदार्थ से चेतन की उत्पत्ति होना संभव नही है, उसी प्रकार चेतन से जड़ की उत्पत्ति भी सम्भव नहीं है। अतएव अगर एक मात्र चेतन की ही सत्ता होती तो जड़ पदार्थ अनुभव मे नही आना चाहिए था।

इस प्रकार विचार करने से जब दोनों ही एकान्तवाद सही नही मालूम होते तब हम जैनधर्म की मान्यता की ओर झुकते हैं। जैनधर्म का कथन है कि संसार में दोनों तत्त्व मौलिक हैं-जीव और अजीव। न जीव से अजीव बना है और न अजीव से जीव बना है। दोनों का स्वरूप एक दूसरे से इतना विलक्षण है कि उनमें से कोई किसी से उत्पन्न ही नही हो सकता। अतः दोनों ही मौलिक हैं, असली है। ठाणांग सूत्र में कहा है:—

जीवे चेव, अजीवे चेव।

अर्थात्–संसार में जीव और अजीव, यह दोनो ही तत्त्व असली हैं। इनके अतिरिक्त तीसरी भी कोई वस्तु मौलिक नहीं है। इन दो के मेल से और सब वस्तुएँ बनी हैं। इन दो तत्त्वो में यह सम्पूर्ण विशाल विश्व समा जाता है।

कहा जा सकता है कि जीव और अजीव के अतिरिक्त तीसरी वस्तु ईश्वर है। पर याद रखना चाहिए कि ईश्वर चेतनमय जीव से अलग नही है। उसे चेतन से अलग मानेंगे तो वह अचेतन हो जायगा। वास्तविक बात यह है कि जीव दो प्रकार के हैं—(१) सिद्ध और संसारी। सिद्धो का नाम णमोकार मंत्र में आता है—णमो सिद्धाणं अर्थात् सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो। सिद्ध, बुद्ध, पारंगत, परम्परागत, ज्ञानमय, दर्शनमय, अखण्ड, अविनाशी संसारिक प्रपचो से जुदा हैं। वे रागद्वेष से रहित हैं, क्रोध मान माया लोभ से अतीत हैं, सब प्रकार की मलिनता से दूर है और सब को देखने वाले तथा सभी कुछ जानने वाले हैं। वे आत्मा के समस्त विकारो को पूरी तरह से जीत चुके हैं परमज्योति स्वरूप हैं परमात्मा हैं, परमेष्ठी हैं। उनमे अनन्त गुण है, अतएव उनके अनन्त नाम हैं। जहां गुण में भेद होता है वहा नाम मे भी भेद हो जाता है। अतएव एक-एक गुण को लेकर अगर एक-एक नाम की कल्पना की जाय तो अनन्त नाम होते हैं। कल्पना करने वाले एक–एक नाम का विचार या उच्चार करगे, किन्तु भगवान् के नामो का पार नही पाएँगे। वास्तव मे भगवान् का कोई नाम नही है उनके गुण ही नामरूप बन जाते हैं। नाम जिसका होता है उसका अन्त आ जाता है। भगवान् समस्त नामों से अतीत हैं।

कहा जा सकता है कि अगर परमात्मा का कोई नाम नही है तो ऋषभदेव, अजितनाथ आदि नाम ले-लेकर क्यो उनका स्मरण किया जाता है ? इसका समाधान यह है कि सिद्ध दशा प्राप्त कर लेने पर ऋषभदेव या अजितनाथ आदि का नाम और रूप एक सरीखा ही हो जाता है, उनमें कोई अन्तर नहीं रहता। मगर सिद्ध-दशा प्राप्त करने से पहले, उनके जो नाम थे, उन्हीं नामो से, हम अपनी पहचान के लिए, सुभीते के लिए, उन्हें पुकारा करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि परमात्मा के नाम हमारे लिए हैं, परमात्मा का किसी नाम के साथ कुछ भी सरोकार नही है। इसके अतिरिक्त ऋषभदेव आदि भगवान् इसी अवसर्पिणी काल मे हुए हैं इस कारण हम उनके नामों से परिचित हैं। किन्तु सिद्ध तो अनादि काल से होते आ रहे हैं। अनन्तानन्त सिद्ध अब तक हो चुके हैं। उन सब के नाम किसे याद है ?

हाँ, तो कहने का आशय यह था कि ईश्वर, जीव से सर्वथा भिन्न कोई तत्त्व नहीं है। आत्मा जब प्रबल पुरुषार्थ करके, समस्त दोषों को जीत कर निर्विकार, निष्कलंक, निरंजन दशा प्राप्त कर लेता है, तब वही परमात्मा कहलाने लगता है। उसी को ईश्वर कहते हैं। इस प्रकार जीव की शुद्ध सिद्ध बुद्ध अवस्था ही ईश्वर है। अतएव ईश्वर को तीसरा तत्त्व मानना युक्ति-संगत नही है।

अगर ईश्वर को जीव से निराला तत्त्व मान लिया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि कोई जीव ईश्वर बन ही नहीं सकता। कोई कितनी ही भावना करे, घोर से घोर तपस्या करे,

योग का अनुष्ठान करे, इन्द्रियों का दमन करे और आत्मपरायण हो जाय, फिर भी उसे ईश्वरत्व की प्राप्ति कभी हो ही नही सकती !, जैनधर्म इस मान्यता को अस्वीकार करता है। वह मनुष्य को ईश्वर होने का मार्ग प्रदर्शित करता है और ईश्वर बन जाने का महान् आदर्श उसके सामने रख देता है। जैनधर्म ने मानवीय विकास की पराकाष्ठा दिखला दी है। इतना ऊँचा आदर्श और किसने प्रस्तुत किया है? वास्तव मे जैनधर्म की यह महान् विशेषता है!

जीव का दूसरा भेद संसारी है। संसारी जीव वे कहलाते हैं, जो कर्मसहित हैं और कर्मों के कारण चार गतियो मे जन्म मरण कर रहे हैं। ससारी जीवों के कई प्रकार से भेद किये जा सकते हैं। त्रस और स्थावर के भेद से वे दो प्रकार के हैं। सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और स्थावर के भेद से वे तीन प्रकार के हैं। मनुष्य, तिर्यञ्च, नरक एव देव गतियो के भेद से चार प्रकार के हैं। इन्द्रियो के आधार पर पाँच प्रकार के हैं। पृथ्वीकाय, अप-काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय के भेद से छह प्रकार के हैं। पाँच स्थावर तथा सकलेन्द्रिय और विकले-न्द्रिय की अपेक्षा सात प्रकार के हैं। इस तरह अनेक अपेक्षाओ से जीवो के अनेक भेद किये जा सकते हैं। अधिक विस्तार में घुसे तो जीव के ५६३ भेद होते हैं। इनमें चौदह नारक जीवो के ४८ तिर्यञ्चों के, ३०३ मनुष्यो के और १९८ देवताओ के भेद हैं।

नारक जीवों के चौदह भेद — मूलत नरक सात हैं। इन सातो नरको में पर्याप्त नारक भी होते हैं और अपर्याप्त नारक भी होते है। अतएव सातो के दो-दो भेद होने से कुल चौदह भेद हुए।

जिस जीव को जितनी पर्याप्तियाँ प्राप्त होती हैं, वे यदि

पूर्ण हो जाएं तो वह पर्याप्त कहलाता है। जो अपनी पर्याप्तियां पूर्ण न कर चुका हो वह अपर्याप्त कहलाता है।

नया जन्म धारण करते समय की बात है। कोई मनुष्य जीव मर कर नरकगति मे गया। मनुष्य का शरीर जब उसने त्याग दिया तब उसके तैजस और कार्मण शरीर साथ रहते हैं। कार्मण शरीर के कारण वह अपनी बांधी हुई गति में जाता है। जिसने नरक गति और नरकायु का पहले ही बन्ध कर लिया है, वह नरक गति में जायगा। नरक गति मे पहुँच जाने पर नये सिरे से उसके शरीर का, उसकी इन्द्रियों आदि का निर्माण होता है। इनके निर्माण मे जीव को कुछ समय लगता है। वह समय बहुत लम्बा नहीं होता। सिर्फ अन्तर्मुहूर्त का समय लगता है। इस अन्तर्मुहूर्त में, जब तक कि उसका शरीर, इन्द्रिय आदि नहीं बन पाये हैं, वह अपर्याप्त कहलाता है। उनके बन जाने पर पर्याप्त हो जाता है।

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मन पर्याप्ति, यह छह पर्याप्तियां हैं। जब कोई भी जीव नवीन गति में जाकर जन्म लेता है तो वहां वह आहार लेता है, अर्थात् औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीर बनाने योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है उन पुद्गलों से उसका शरीर बनता है। इसके बाद नाक, कान आदि बनते हैं। फिर श्वासोच्छ्वास बनता है फिर भाषा और मन बनता है।

इसी प्रकार शेष तीन गतियों के जीवों के भेद भी थोकड़ा आदि से समझ लेने चाहिए। विस्तारभय से सब का उल्लेख नहीं किया जा सकता है। यहां सिर्फ इतना बतला देना आव-

श्यक है कि नरक-गति में असंख्य जीव हैं। तिर्यंच-गति में अनन्तानन्त जीव हैं तथा मनुष्य-गति में संख्यात और देव गति में असंख्यात जीव मौजूद हैं। इतने जीव इन गतियों में सदैव बने रहते हैं। यद्यपि चारों गतियों में आवागमन होता रहता है, फिर भी यह संख्या तो कायम ही रहती है।

गतियों के आधार पर अल्पबहुत्व का विचार किया जाय तो कहना होगा कि सब से कम मनुष्य हैं मनुष्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणा अधिक नारकी हैं, नारकों से असंख्यातगुणा ज्यादा देवता हैं और सब से अधिक तिर्यंच हैं।

दिशाओं के हिसाब से भी जैन-शास्त्रों में जीवों का वर्णन किया गया है। नरक में, दक्षिण दिशा में ज्यादा जीव हैं और जो दक्षिण दिशा में जनमेगा वह महादुखी होगा। बहुत गाढ़े पाप-कर्म बांधने वाला जीव दक्षिण दिशा में, नरक में उत्पन्न होता है।

सारा संसार ही दुःखों से भरा हुआ है। आप नारक जीवों के दुःख नहीं देख सकते, फिर भी तिर्यंचों और मनुष्यों के दुःख तो प्रत्यक्ष ही देखते हैं। बेचारे पशुओं को पराधीन रहना पड़ता है, भयभीत रहना पड़ता है। वध-बन्धन, भूख-प्यास आदि के अनगिनते दुःख सहन करने पड़ते हैं। बोझा लादना पड़ता है। चाहे कितना ही तीव्र दुःख हो, वे जीभ से उसको प्रकट नहीं कर सकते। दाना-पानी किसी ने दे दिया तो खा-पी लिया, नहीं तो भूखे-प्यासे चुपचाप तड़फते रहते हैं। बुढ़ापे में जब शक्ति कम हो जाती है और अधिक बोझा ढोने की हिम्मत नहीं रहती, तब

ऊपर से डंडों की मार खानी पड़ती है । जब बिलकुल बेकार हो जाता है तो कई निर्दय लोग कसाई के हवाले कर देते हैं। कसाई उसके गले पर छुरी फेर देता है।

मनुष्यगति में भी अनेक प्रकार के दुःख हैं । प्रथम तो माता के उदर मे नौ मास तक कैद रहना पडता है। उस कैदखाने में ही कई मर जाते हैं और कई कैदखाने से निकलते ही मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। जिसने गाढ़ी आयु बांधी है वह जीवित रह जाता है तो शैशव अवस्था मे अनेक कष्ट पाता है। मल-मूत्र से शरीर लिपट जाता है । कई प्रकार की बीमारियाँ होती है । परन्तु उसे वह प्रकट नही कर सकता। फिर बड़ा होता है तो इष्टवियोग अनिष्टसंयोग, आजीविका आदि आदि की अनेक चिन्ताएं लग जाती हैं। सुख के समग्र साधन प्राप्त होने पर भी कभी-कभी ऐसा कोई भयानक आघात लग जाता है कि जिससे समग्र सुख सामग्री बेकार हो जाती है। कोई कुटुम्ब-परिवार से दुखी रहता है, कोई धन के लिए मारा-मारा फिरता है। इस प्रकार अधिकाश मनुष्य दुःख मे ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि इन दुःखों का कारण क्या है ?

ज्ञानी जनों का कथन है कि दुःखों का प्रधान और मूलभूत कारण पापकर्म है। पापकर्म का उदय होने पर दूसरे निमित्त भी मिल जाते हैं, मगर प्रधानता तो पापकर्म की है। अधिकांश मनुष्य दुःखी इसी कारण हैं, क्योंकि अधिकांश पाप का आचरण करने वाले हैं। मनुष्यों की तरफ ख्याल कीजिए तो मालूम होगा कि संसार में मासभक्षी अधिक हैं और मांस न खाने वाले कम

हैं। सात्विक वृत्ति के लोग कम हैं और तामसी वृत्ति के लोग अधिक हैं।

कई जीव ऐसे होते हैं कि वे पुण्य तो कमाते हैं किन्तु उसमे पाप का छांटा आ जाता है। इस कारण ऐसा जीव मनुष्य होकर भी भील आदि जातियों में जन्म लेता है। यह सोने की थाली मे तांबे की मेख लगने के समान है। इसी तरह मनुष्य-जन्म की प्राप्ति हो जाना सोने की थाली है और नीच--कुल में जन्म मिलना तावे की मेख है।

एक श्रावक मुनि को घी का दान देने लगा। मुनि अवधि-ज्ञानी थे। उन्होने पात्र सामने किया और श्रावक ने घी बहराना शुरु किया। उस समय मुनिराज ने देखा कि इस समय इस श्रावक के भाव ऊँचे हैं। यदि इस समय आयुबंध करे तो इसे बारहवें देवलोक की आयु का बंध हो। जब बहराते बहराते श्रावक का हाथ रुकने लगा तो फिर मुनिराज ने ज्ञान से जाना कि अब ग्यारहवें देवलोक की आयु बाधे। इस प्रकार दसवें, नौवें और फिर आठवें देवलोक के योग्य उसके भाव रह गए। वहाँ भी वह रुके नहीं। गिरते गिरते दूसरे देवलोक के योग्य उसकी परिणाम धारा रह गयी। तब मुनिराज सहसा बोल उठे—पड़ मत।

मुनिराज का यह कथन सुनकर श्रावक आश्चर्यचकित रह गया। उसने सोचा-मैं भला—चंगा खडा हूँ। मुझे चक्कर नहीं आ रहे हैं। फिर भी मुनिराज ऐसा क्यो कहते हैं?

श्रावक को चकित देखकर मुनिराज ने स्पष्टीकरण किया—जब तेरे भाव ऊँचे थे तब तू बारहवें देवलोक के योग्य आयु बांध

सकना था। अब तेरे परिणाम गिरते-गिरते दूसरे देवलोक की आयु बाँधने योग्य रह गये हैं। इसी कारण मैंने चेतावनी दी है कि सँभल, गिर मत। ऐसा न हो कि पहले देवलोक से भी नीचे जा पहुँचे !

भाइयो ! पाप और पुण्य के सब अड़ंगे भावना के पीछे ही हैं। कहा है—

याहशी भावना यस्यः सिद्धिर्भवति ताहशी।

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है। अगर मनुष्य भव मे पुण्य का आचरण किया हो और किसी पाप के उदय से मर कर कुत्ता भी हो जाय तब भी उसका पुण्य बेकाम नहीं जायगा। वह कुत्ता होकर भी मोटरों मे बैठा फिरेगा, गलीचो पर लेटेगा और किसी प्रकार की तकलीफ नही पाएगा।

आपको मालूम होगा कि हलवाई की दूकान पर पताशे की चासनी अलग, कलाकंद की अलग और जलेबी आदि की अलग प्रकार की होती है। जलेबी की चासनी कलाकंद मे डाल दी जाय तो कलाकंद बनने के बदले राबडी बन जायगी। इसी प्रकार पाप और पुण्य की भी अलग-अलग चासनी आती है। कर्मों का न्यारा-न्यारा रस है। यहाँ करोडो का दान दिया किन्तु चासनी मे जरा-सा फर्क रह गया, अर्थात् दान देकर पश्चात्ताप किया तो अगले जन्म मे करोडपति तो बन गया मगर पेट में दर्द रहने लगा ! किसी भी चीज को खाने से मोहताज हो गया ! हमेशा दवाइयाँ चालू रहने लगी। इसके विपरीत जिसने चासनी मे अन्तर नही पड़ने दिया, वह सदा स्वस्थ, हट्टाकट्टा रहता है।

सेर भर बादाम खा जाय, आधा सेर मक्खन खा जाय या पचास लड्डू खा जाय तो भी सब भस्म हो जाता है। मतलब यह है कि पुण्य या पाप की जैसी चासनी लेकर आये हो वैसा ही योग मिलता है और इस जीवन मे जैसी चासनी बनाओगे वैसा ही रस पाओगे।

क्या देवगति और क्या मनुष्यगति, क्या तिर्यंचगति और क्या नरकगति, सभी मे उच्चता और नीचता का भेद है। अच्छी अच्छी करनी करोगे तो ऊचा दर्जा पाओगे और बुरी करनी करोगे तो नीचा दर्जा नसीब होगा।

कई लोग ऐसे होते हैं कि वे सभा में बोल पड़े तो लोग कह देते हैं—इसे सभा में से निकाल दो। इसी प्रकार देवताओ की सभा मे कोई नीचा देव बोलता है तो दूसरे देवता 'मा भाष' अर्थात् मत बोल कहकर उसका तिरस्कार कर देते हैं ! इसीलिए हम चेतावनी देते हैं कि दया करो, उपवास करो, दान करो, धर्म करो। आप इस समय मुंह मरोड़ते हो लेकिन जब वहाँ से हाथ पकडकर निकाले जाओगे-अपमानित किये जाओगे तब हाथ मलमल कर पछताओगे ! भला चाहते हो तो जैसा मैं कहता हूं, वैसा किये जाओ। मैं तुम्हारे फायदे को ही बात कहूंगा। मुझे तुमसे कोई स्वार्थ नही है। किसी प्रकार का द्वेष भी नही है। फिर क्यों तुम्हें गलत रास्ता दिखलाऊगा।

एक सेठ था बड़ा मालदार। वह जिस गुमाश्ते को अपने यहां रखता, उससे प्रतिज्ञा करा लेता था कि मैं जब रसोई जीम कर दुकान पर पहुंच जाऊँगा तभी तुम जाओगे। मगर यह आवे

में लापरवाही करता था। गुमाश्ता दो दिन ठहर कर और फिर घबराकर भाग जाता था। यों करते-करते कई गुमाश्ते आये और चले गये।

एक दिन एक आदमी आया और उसने काम करने का वायदा किया। जिस दिन वह रहा, उस दिन उसके निर्जला एकादशी का व्रत था। दूसरे दिन भोजन जल्दी करना था, मगर सेठ आया नही। वह उनके आने की राह देखता रहा। तब कहीं एक बजे सेठजी दुकान पर आये। गुमाश्ता भूख से घबरा गया था। सेठ के आते ही उसने कहा—मैं जाता हूं।

सेठ बोला—ठीक है, जाओ। मगर जाने से पहले घर से एक लोटा ठंडा पानी ले आओ। मुनीम मन ही मन कुढता हुआ पानी ले आया। बेचारे को नौकरी करनी थी तब क्या करता ? पानी लाकर फिर गुमाश्ते ने कहा-अब जाऊं ?

सेठ—अच्छा, मगर जरा हलवाई की दुकान से पाव भर कलाकद तो ले आओ। बेचारा मुनीम कलाकद भी ले आया।

कलाकंद सामने रखकर मुनीम ने फिर जाने के लिए पूछा। तब सेठ ने कहा—अरे, मालपुवे तो रह ही गये। डेढ़ पाव मालपुवे और ला दो !

मुनीम गुस्से से जलने लगा, पर करता क्या ? उसने माल-पुवे भी लाकर सेठ के सामने रख दिये। फिर जाने के लिए पूछा। तब सेठ बोला ठीक है। सब कुछ भी ले आये, मगर मुंह फरफरा करने के लिए नमकीन तो कुछ भी नहीं है ! दो आने के दहीबड़े ले आओगे न ?

गुमाश्ता का धैर्य जाता रहा। उसके अंग-अंग में आग लग गई। उसने तमककर कहा- सेठजी क्षमा करो। अपनी नौकरी अपने पास रक्खो। अब मुझे कुछ भी नही लाना है। मैं भूखों मर कर नौकरी नही करना चाहता।

सेठ—खैर, तुम्हारी इच्छा। किन्तु ये मालपुवे खटाई के बिना नही उठेगे!

गुमाश्ता—कुछ भी हो, मैं कह चुका हूं कि अब कुछ भी नही लाऊँगा।

सेठ—अच्छा भाई, इन चीजों को अन्दर तो रख दे।

गुमाश्ते ने कलाकंद आदि अन्दर रख दिया। तब सेठ ने एक कौर खाकर कहा- मुझे तो यह सब रुचता नही है। तुम जा रहे हो तो इसे खाकर ही जाओ।

गुमाश्ते ने पहले तो नाही की, मगर कडाके की भूख में माल सामने देखकर उसके मुँह से लार टपक पड़ी। सेठ ने उसे हाथ पकड़ कर बिठला दिया और खाने का आग्रह किया। गुमाश्ता कलाकंद और मालपुवा खाने लगा। किन्तु चरपरे के बिना मिठाई का मजा फीका जान पडा। उसने सोचा—सेठजी ने यह सब माल मेरे लिये मंगवाया था! अब गुमाश्ता एक-एक कौर खाता जाता था और नमकीन की याद करता जाता था। दही के बिना भोजन रुचिकर नहीं लग रहा था। उसने सोचा—मैंने कितनी बड़ी भूल की जो दहीबड़े नही लेता आया। वह पछताने लगा।

यह तो एक दृष्टान्त है। जैसे गुमाश्ते को सेठजी पर क्रोध आया था कि यह मुझे परेशान कर रहा है और कष्ट दे रहा है, परन्तु वह परेशानी और कष्ट गुमाश्ते की भलाई के लिये ही था। उसने कष्ट झेल लिया तो उसी को माल खाने को मिला। उसने सेठ की पूरी बात नही मानी तो अन्त में पछताना पडा। पर पछताने से भी क्या हाथ आता है? इसी प्रकार हम जो कह रहे हैं सो आपके हित के लिये ही कह रहे हैं। अगर आप हमारा कहना मानेंगे तो हमारा नही, आपका ही भला होगा, आप सुखी होंगे। अधूरी बात मानेंगे तो भी दही का खटका रह जायगा। देव बनोगे तब भी दही याद आएगा अर्थात् कुछ न कुछ कमी रह जायगी। कोई भाई और कोई बहिन मेरे कहने मे उज्र न करो। क्षमाभाव धारण करो और सहनशीलता रक्खो।

कोई सोच सकता है कि महाराज को न मालूम क्या हो गया है कि हमारे पीछे ही पड गये हैं! महाराज को तो त्याग, त्याग बस त्याग ही सूझ रहा है! मगर याद रक्खो, सब कलाकंद और मालपुवे तुम्हारे वास्ते ही हैं। तुम जो भी करनी करोगे, उसका फल तुम्हे ही मिलने वाला है अपनी करनी पार उतरनी! आपकी करनी से हमें कोई लाभ होने वाला नही है। सेठजी तो जीम कर आये थे। उन्हे थोड़े ही कुछ खाना था!

वह गुमाश्ता भला अब नौकरी छोड़ता? इसी प्रकार तुम जितनी क्षमा रक्खोगे, जितनी सहनशीलता धारण करोगे और हमारी बात मानते चलोगे, उतना ही तुम्हारे हक मे फायदा होगा। मैं जोधपुर मे किस लिए आया हूँ?

आना जो हुआ मेरा फक्त उपदेश देने को।
मोह की नीद को छोड़ो, तिरो तिरो यह कहने को ।।

भाइयो ! यहा हम गुलाबजामुन खाने को नही आये हैं। हम आपको जगाने आये हैं। आपकी मोह निद्रा को भग करने आये हैं हम यही कहना चाहते हैं कि पुण्य के योग से तुम्हे मनुष्य का भव, श्रावक का कुल, परिपूर्ण इन्द्रियो वाला स्वस्थ शरीर और दुरुस्त दिमाग मिला है। तुम्हे केवल ज्ञानी वीतराग प्रभु की पवित्र वाणी को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ऐसा अवसर बडी कठिनाई से मिलता है। इसे पाकर मोह के खुर्राटे मत लो। जागो चेतो सोचो, समझो और अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठा लो। अगर मेरी बात पर ध्यान न दोगे तो घोर पश्चात्ताप करना होगा। इसलिए किसी के बहकावे मे मत आओ। इस जिन्दगी से जो कुछ कमाई हो सकती है, अवश्य कर लो और जल्दी कर लो। समय निरन्तर वीत रहा है। आयु के दिन कम होते जा रहे है। भरोसा नही, कब श्वास बन्द हो जायगा ?

मुसाफिर ! क्यो पडा सोता, भरोसा है न इक पल का।
दमादम बज रहा डका, तमासा है चलाचल का ।।ध्रुव ।।
सुवह जो तख्त, शाही पर, बड़े सजधज से वैठे थे।
दुपहरे वक्त मे उनका, हुआ है वास जगल का ।।

यह हाल है इस दुनिया का ! क्या आप जानते हैं कि आज आपकी जो स्थिति है कल भी वही रहेगी ? नही, यह कोई नही कह सकता। पल भर में राजा रक बन जाता है। चलता-

फिरता आदमी सदा के लिए सो जाता है। फिर तुम किस पर भरोसा रख कर बैठे हो ?

इसलिए, भाइयो ! मैं जो करता हूँ, उस पर ध्यान दो। मैं अपनी बात नहीं कह रहा हूँ बल्कि अनन्त जिन भगवान् जो कह गये हैं, वही तुम्हे बतला रहा हूँ। मैं तो उनका सन्देश वाहक ही हूँ। असली सन्देश-दाता तो प्रभु ही हैं। प्रभु केवल ज्ञानवान् थे। उन्हें छोड़कर और किसकी बात मानोगे ? दूसरे तो तुम्हें बहका सकते हैं, कुपथ मे प्रेरित कर सकते है। दीवालिया के पास जाओगे और उससे सलाह लोगे तो वह जल्दी से जल्दी दीवाला निकालने की ही सलाह देगा। इज्जतदार के पास जाओगे तो वह यही कहेगा कि मर जाना मंजूर कर लो, मगर दीवाला मत निकालो। वह दीवालिया है जो मनुष्य जन्म पाकर उत्तम करनी नही करता और नरक या तिर्यंच की आयु बांधता है। मनुष्य मनुष्य की आयु बाधे तो वह बराबर है। अगर स्वर्ग की आयु बाधे तो समझना चाहिये कि उसने पुण्य के लिहाज से कुछ तरक्की की है। आप इज्जतदार रहना चाहते हैं या नही, यह सोचना आपका काम है। कहा है:—

इज्जत थारी रे, तू रखजे चतुर संभाल। ध्रुव।
तन धन से इज्जत बड़ी, आदर देवे भूपाल ॥१॥

भाइयो ! मैं यही कहने आया हूँ कि अपनी इज्जत सम्भाल कर रक्खो। इज्जत का दर्जा बहुत ऊँचा है। इज्जत के लिए तन और धन को अर्पित कर देना भी कोई बडी बात नही है। जिसकी इज्जत नही, उसके बारे मे लोग कहा करते है:—

वाजे नौबत नागा के नहीं मर्यादा को खयाल ॥ २ ॥

याद रक्खो, जो मर्यादाहीन होते हैं वे नागे कहलाते हैं ! उनका कोई आदर नहीं करता, सत्कार नही करता । और क्या होता है ?

उंगली बतावे लोग उन्हें, और बुरी बतावे चाल ॥ ३ ॥

उस निर्लज्ज नागे की तरफ उंगली उठाकर लोग कहते हैं यही है वह कपूत जो ऊँचे कुल मे उत्पन्न होकर अपने कुल को कालिख लगाता है ! अगर इज्जतदार की ओर कोई उंगली उठा दे तो उसका मरण हो जाता है । देखो, काशीफल की बेल में जब फल लगना ही होता है, तब उसकी ओर कोई उंगली उठा दे तो वह सूख जाता है और लज्जावती को उगली से छू दिया जाय तो उसके पत्ते सिकुड जाते हैं ! जब यह वनस्पति भी उगली का उठाना सहन नही करते तो तुम मनुष्य होकर, बड़े आदमी कहला कर भी क्या अपनी इज्जत को नही समझोगे ?

मोतियों का पानी मनरे, नही चढे दुबारा बाल ॥ ४ ॥

मोतियो का पानी एक वार उतर जाने पर फिर दुबारा नही चढ़ता है । याद रक्खो, एक बार कलंक लगा कि सदा के लिए लग गया । जरा सी बदनामी ले ली तो लोग कहेगे कि अपने मुहल्ले मे यह नालायक है ! कोई भी स्त्री तनिक भी बुरे रास्ते पर गई कि लोग उसे घृणा भरी निगाह से देखेंगे। बदनामी स्त्रियों और पुरुषो–दोनो के लिए समान है ।

बहादुर स्त्रियाँ अपना अपमान सहन नही कर सकती। उन्हे कोई नालायक पुरुष छेड़ दे तो उसी वक्त जूती लेकर सामने खड़ी हो जाती हैं. यहाँ तक कि पेट में छुरा तक भोंक देती हैं। मीना बाजार बादशाह अकबर के जमाने मे भरता था। बादशाह ने एक बड़े घराने की औरत को जरा-सा छेड़ दिया तो वह छुरा निकालकर बादशाह की छाती पर सवार हो गई थी। वह कैसी वीरांगना थी ! कहते हैं, वह महाराणा प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह की कन्या थी जो बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह को व्याही थी। उसका नाम किरणवती था।

बहिनो ! तुम्हें भी इसी प्रकार होशियार रहना चाहिए। लोग तुम्हें अबला कहते हैं, मगर तुम सबला हो, प्रबला हो शक्ति का अवतार हो। तुम्हारी भ्रकुटि टेढी होते ही पापी की आत्मा थरथर काप उठेगी। याद रक्खो, पापी की आत्मा में बल नहीं होता, साहस नही होता, शक्ति नही होती।

तात्पर्य यह है कि क्या पुरुष और क्या स्त्री, क्या साधु और क्या श्रावक, सब को अपनी-अपनी इज्जत का खयाल रखना चाहिए। सभी को अपने-अपने पद के गौरव की रक्षा करनी चाहिए। इज्जत वह काच है जो एक बार भग हो जाने पर फिर कठिनाई से ही जुड़ सकता है। जो एक बार गिर जाता है, वह सदा के लिए गिर जाता है। समझना गलत है कि किसी का कोई पाप छिपा रह जायगा। पाप विना जीभ ही बोलता है। कहा है:—

पाप छिपाया ना छिपै, छिपै तो मोटा भाग।
दाबो दूबी नहिं रहे, रुई लपेटी आग॥

और भी कहा है:—

इश्क मुश्क खांसी खुशी, वैर प्रीति मधुपान ।
रहिमन दाबे ना दबें, जानत सकल जहान ।।

कितनी चेष्टा करो इन्हे दबाने को, मगर यह सब बाते दबती नही हैं।

राम लड़े सीता कारणे, रावण भी कर गयो काल ।।

जब रावण सीता को ले गया तो रामचन्द्र बडी फौज ले कर लंका पर चढाई करने को गये। रामचन्द्रजी ने किस लिए चढाई की थी ? क्या वे रावण का राज्य हथियाना चाहते थे ? नही। राज्य की उन्हे इच्छा नही थी। राज्य भोगना होता तो अयोध्या का ही राज्य उन्हे मिल रहा था। फिर रावण को परास्त करके भी उन्होने लंका का राज्य नही लिया। वह रावण के नीतिनिष्ठ भाई विभीषण को ही सौंप दिया। इससे मालूम होता है कि राम के हृदय मे राज्य की आकांक्षा नही थी। मगर उन्हे सीता के धर्म की रक्षा करनी थी और अपनी इज्जत कायम रखनी थी। इसी कारण उन्होने रावण पर चढाई की थी। मगर रावण समय पर सावधान नही हुआ। वह अभिमान मे आकर सोचने लगा कि जिन हाथों से मैं सीता को हरण करके लाया हूँ, उन्ही हाथों से वापिस कैसे सौप सकता हूँ ? अगर मैं सीता को लौटा दूं तो मेरी इज्जत चली जायगी। यद्यपि रावण ने गलत रास्ता अख्तियार किया फिर भी अड़ा रहा वह अपनी इज्जत पर ही। इस प्रकार दोनों ही अपनी-अपनी इज्जत के लिए अड़ गये। आखिर लक्ष्मण के हाथ से रावण मारा गया। रावण की मृत्यु

हो जाने पर उसके शव को आभूषणों से सजाया गया और वैकुंठी मे बिठला कर समुद्र के किनारे लाया गया। वहाँ चन्दन की चिता बनाकर शव रक्खा गया। चिता मे आग लगाई जाने वाली ही थी कि रावण का भाई विभीषण कटार लेकर अपनी छाती मे भोंकने लगा। वह शोक से विह्वल होता हुआ कहने लगा— हाय ! मैं ऐसा भाई अब कहाँ पाऊँगा ?

विभीषण की यह स्थिति देखकर रामचन्द्र ने उसे सँभाला। उसका हाथ पकड लिया। फिर समझाते हुए कहा—भाई विभीषण तुम क्यो रोते हो ? तुम्हारे भाई की तो बात रह गई और मेरी बात नही रही। वह सच्चे मर्द थे, अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने वाले असली पुरुष थे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्राण देना स्वीकार किया और अपने प्राण दे भी दिये मगर प्रण को भंग करके सीता नही लौटाई। मैं उनसे सीता को नही छीन सका। उनके मरने के बाद ही मैं उसे पा सका हूँ ! अगर लंका-पति अपने जीते जी सीता को लौटा देते तो उनकी बात न रहती ! मगर उन्होने तो प्राण देकर प्रण का पालन किया है। ऐसे वीर और प्रतिज्ञापरायण महापुरुष के लिए क्यों शोक करते हो ?

रामचन्द्रजी के मुख से अपने भाई की इस प्रकार प्रशंसा सुनकर विभीषण को सान्त्वना मिली। भाई, इज्जत का काम वडा जबर्दस्त है। हरेक मनुष्य को अपनी अपनी इज्जत का खयाल रखना चाहिए। कहा है—

धन दे तन को राखिए, तन दे रखिए लाज ।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म के काज ।।

और भी कहा है—

गढ चित्तौड़ पं पदमिनी, वे जली अग्नि के झाल ।
चोथमल कहे समझू नर, इज्जत माने धन माल ॥

भाइयो ! गया हुआ धन फिर मिल सकता है, मगर गयी हुई इज्जत फिर नहीं मिल सकती । अतएव समझदार मनुष्य वही है जो अपनी इज्जत को तन और धन से भी बढ कर समझता है ।

हाँ, तो आपको भी इज्जत रखनी है मनुष्यता की ! आपको इज्जत रखनी है अपने उत्तम कुल की ! आपको इज्जत रखनी है अपने धर्म की, अपने शासन की और अपने धर्मगुरुओ की । अगर आप मेरा कहना मानेगे और सब प्रकार की बुराइयों से दूर रहते हुए सन्मार्ग पर चलेगे नीति की राह पर चलेंगे, प्रतिष्ठा की रक्षा और वृद्धि करते हुए चलेगे तो आप परम कल्याण के भागी होगे । ऐसा करके आप अपने पूर्वजो की विमल कीर्ति मे चार चाँद लगा देंगे ।

साथ ही याद रखना कि अगर आपने मेरा कहना न माना और इज्जत की राह छोडकर बेइज्जती की राह पर कदम बढाया तो आप ही नही डूबेंगे आपके पुरखाओ की कीर्ति भी डूब जायगी, कलंकित हो जायगी । और दही का खटका रह जायगा ।

मनुष्य कितना ही समझदार और बुद्धिमान् क्यो न हो, कभी ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है कि वह चक्कर मे पड जाता है । उस समय उसका विवेक काम नही आता । वह

किंकर्त्तव्यमूढ हो जाता है। किस ओर जाना चाहिए और किस ओर नही, यह बात उसकी समझ मे नही आती। ऐसे नाजुक और विकट प्रसंग पर सन्मार्ग बतलाने के लिए और कुमार्ग से बचने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है। सद्गुरु मनुष्य को सुपथ का निर्देश करते हैं और कुपथ से बचाते हैं।

भारतवर्ष में, प्राचीन काल मे प्रत्येक सभ्य पुरुष अपना गुरु बना लेता था। बिना गुरु के रहना उस समय बहुत बुरा समझा जाता था। आज भी 'निगोड़ा' गाली समझी जाती है, जिसका अर्थ है—निर्गुरु। अर्थात् तू गुरु-हीन है, यह कहना उसे गाली देना समझा जाता है! इसी से मालूम हो जाता है कि पहले के लोग गुरु की कितनी आवश्यकता समझते थे! वस्तुतः संसार मे गुरु का स्थान बहुत उच्च है। अज्ञान के बीहड़ अंधकार मे भटकने वाले अल्पज्ञ प्राणियो के लिए गुरु प्रकाश के महान् और उज्जवल स्तम्भ हैं। गुरु असंयत मनुष्य की इन्द्रियो रूपी घोड़े के लिए लगाम के समान हैं, मन रूपी मदोन्मत्त मतंगज के लिए अंकुश के समान है, शिष्य के जीवन जहाज के लिए कर्णधार के समान है!

गुरु की महिमा अपार है। ज्ञान का प्रकाश उन्ही से प्राप्त होता है। कहा है.—

अज्ञानतिमिरान्धानाम्, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अज्ञान रूपी अन्धकार से अंधे लोगो की, ज्ञान रूपी अंजन से आंख खोल देने वाले श्री गुरु महाराज को नमस्कार हो!

गुरु की महत्ता का जब विचार करते हैं, तभी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वास्तव मे गुरु-पद का अधिकारी कौन है ? आज तो गुरु कहलाने वाले लोग गली-गली में भटकते फिरते हैं क्या वे सभी गुरु हैं ? गाँजे की दम लगाने वाले, सुलफा पीने वाले और शरीर पर केवल राख पोत लेने वाले क्या वास्तव मे गुरुपद के अधिकारी हैं ? क्या उनमे सन्मार्ग प्रदर्शित करने की योग्यता है ? क्या उनकी इच्छा पर अपने जीवन को समर्पित किया जा सकता है ?

इन प्रश्नों का उत्तर यद्यपि प्रासंगिक रूप में पहले कभी आ चुका है, फिर भी यहां संक्षेप में प्रकाश डालने की आवश्यकता है। सच्चा गुरु कौन है, इस सम्बन्ध मे कहा है.—

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्त:, तपस्वी स प्रकीर्त्यते ।।

आशय यह है कि जिसके अन्तःकरण मे से विषयो की अभिलाषा सर्वथा नष्ट हो चुकी हो, अर्थात् विषयो से विरक्त होकर आत्म साधना के लिए जो जीवित हो, मगर जीवन-निर्वाह के लिए किसी भी प्रकार का आरभ-समारंभ न करता हो, अर्थात् किसी भी जीव को परिताप पहुँचाने वाला कोई काम न करता हो। आरम्भ के सब कामो का जिसने त्याग कर दिया हो और जो परिग्रह का पूर्ण रूप से त्यागी हो, वही सच्चा गुरु है। जो ज्ञान, ध्यान और तप मे सदैव लीन रहता है, वही अकिंचन एव तपस्वी अनगार गुरुपद का अधिकारी होता है।

इस लक्षण से आप गुरु की परीक्षा कर सकते हैं। जिसकी आत्मा विषय- वासनाओं से ऊपर उठ चुकी हो, जिसने परमात्मा की भक्ति के लिए ही सम्पूर्ण शेष जीवन समझ लिया हो, जो लोभी नहीं, लालची नहीं, नशेबाज नही, सवारियों का उपयोग करता नही वही सच्चा गुरु है ऐसे महात्माओं के द्वारा दिखलाया हुआ मार्ग ही कल्याणकारी हो सकता है।

लक्षण की इस कसौटी पर कसकर फिर किसी को गुरु बनाओ और जब किसी को गुरु बना लो तो उस पर पूर्ण श्रद्धा रक्खो। अविश्वास मत लाओ। गुरु के कथन के अनुसार चलो और ऐसी दृढ़ता के साथ चलो, जैसे जम्बूकुमार चले थे।

मोह-ममता और मुनि की राशि एक है, फिर भी दोनो में कोई लगाव नही है। एक राशि वालो का यह अलगाव इतिहास मे भी आश्चर्यजनक रूप से दिखाई देता है। एक तरफ राम और दूसरी तरफ रावण, एक ओर कृष्ण और दूसरी ओर कंस था। एक ओर गांधी और दूसरी ओर गौरांग गवर्नमेण्ट थी, और एक ओर जवाहर तो दूसरी ओर जिन्ना था! यह सब एक ही राशि के हैं। फिर भी इनका मेल नही खाया। इसी प्रकार मुनि और मोह-माया का मेल नही मिलता, साधुता और सम्पदा का मेल नहीं है!

भाइयों! आपको जो मानव भव मिला है, उसकी इज्जत को कायम रखने के लिये आपको सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। मानव-भव की इज्जत इसी मे है कि आप ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे आपको इससे नीची गति में अर्थात् नरकगति या पशु-

पक्षी आदि की योनि में जन्म लेना पड़े। इस इज्जत को कायम रखने के लिए सबसे पहली बात है हिंसा से बचना। भगवान् महावीर का पहला उपदेश यही है कि किसी जीव को कष्ट न पहुँचाया जाय। जो गृहस्थ इस अहिंसा धर्म का पूरी तरह पालन करने मे समर्थ नहीं है, उन्हे भी कम से कम निरपराध जीव की हिंसा से तो बचना ही चाहिए।

आधुनिक युग में, राजनीति के क्षेत्र में, गांधीजी ने इसी सिद्धान्त को पकड़ा था। उन्होने कहा कि कोई मारे तो मर जाओ मगर मारो मत। गांधीजी जानते थे कि हिंसा के द्वारा शान्ति स्थापित नही हो सकती। इसलिए उन्होंने अहिंसा का महान् और अमोघ शस्त्र पकड़ा। कई लोग जैनो की बुराई करते हैं और कहते हैं कि जैनो की अहिंसा ने भारतीयो को नामर्द बना दिया, मगर उन्हे पता नही है कि जैनियो ने वीरता भर दी है। अहिंसा में जो वीरता है वह हिंसा मे नहीं। अहिंसा के शस्त्र के सामने अंगरेजो की तोपें, बन्दुकें और तलवारे पानी-पानी हो गयी और उन्हे राज्य छोड़कर भाग जाना पड़ा। अहिंसा की यह असाधारण विजय भी जिन्हे अहिंसा का महत्त्व न समझा सके, उसे और कौन समझा सकता है?

सच बात तो यह है कि अहिंसा अपने आप में एक महान् शस्त्र है और उसे वीर पुरुष धारण कर सकते हैं। कायरो के बूते का वह शस्त्र नही है। इसीलिए कायर लोग उसकी निन्दा करते हैं। अहिंसा के शस्त्र से वैरी का नही वैर का संहार किया जाता है और जब वैर का संहार हो जाता है तो वैरी मित्र बन जाता हैं। हिंसा वैरी का नाश करके वैर को बढ़ाती है। वह वैर की अपरिमित परम्परा को जन्म देते है।

मानव-भव की इज्जत रखने के लिए दूसरी चीज ब्रह्मचर्य है। गृहस्थों को कम से कम पर-स्त्री सेवन का त्याग अवश्य करना चाहिए। जो पुरुष पर-स्त्री को माता, बहिन एवं पुत्री के समान समझता है, उसका जीवन धन्य है। उसने मनुष्यता की इज्जत की है। ब्रह्मचर्य के अभाव मे महान् शक्ति कभी प्राप्त नहीं होती।

महाराष्ट्र के वीर शिवाजी का नाम कौन भारतीय नहीं जानता? आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी शिवाजी का नाम प्रत्येक सभ्य भारतवासी की जीभ पर चढ़ा हुआ है। मगर उनकी वीरता का असली कारण बहुत कम लोग जानते हैं। शिवाजी पक्के पर-स्त्री-त्यागी ब्रह्मचारी थे। इसी कारण उनमे असाधारण शक्ति और तेजस्विता थी!

शिवाजी, औरंगजेब के जमाने मे हुए हैं। एक बार औरंगजेब की फौज ने इन पर हमला किया। सूबा साहब फौज लेकर चढ आया। मगर वीर मरहठो की सेना ने सामना करके मुगलसम्राट् की फौज को भगा दिया। सूबा की पत्नी अत्यन्त सुन्दरी थी। मरहठा-सैनिक उसे पकड़ कर शिवाजी के पास ले गये। शिवाजी ने सामने खडी उस सुन्दरी को देखकर सिपाहियो से पूछा-इस बहिन को यहाँ किसलिए लाये हो? यह कौन है?

'बहिन' सुनते ही सिपाहियो के पैरों तले की जमीन खिसक गई। उन्हे अपनी भूल पर पछतावा होने लगा। फिर भी उत्तर देना अनिवार्य था। अतएव उनमें से एक ने कहा—महाराज! यह सूबा की पत्नी है और असाधारण सुन्दरी है। इसीलिए आपके समक्ष उपस्थित किया है।

शिवाजी—जैसी सुन्दरी यह है, वैसी मेरी मां होती तो मैं भी ऐसा ही खूबसूरत होता ! फिर भी यह मेरी माता के समान है। इसे सूबा साहब के पास, इज्जत के साथ पहुँचा दो। खबरदार, आगे कभी किसी स्त्री के साथ सलूक किया तो खेर नही है ! हिन्दू जाति को किसी प्रकार का कलंक लगना मैं सहन नही कर सकता।

भाइयो ! देखो आपने शिवाजी की महानुभावता ! कितने उच्च विचार हैं ! कैसा पवित्र अन्तःकरण है ! तभी वे असाधारण शक्ति के धना हो सकते थे। तभी मुगल सम्राट् भी उनके नाम से काँपने लगता था ! इसे कहते हैं इज्जत रखना ! शिवाजी ने अपनी, अपनी जाति की और अपने देश की इज्जत बढाई है। आप भी पर स्त्री-सेवन का त्याग करके अपनी इज्जत बढ़ा सकते हैं।

इसी प्रकार सत्य भाषण करने वाले, निर्लोभ, अनीति एवं अत्याचार न करने वाले, प्रामाणिक रह कर अपना निर्वाह करने वाले लोग ही अपनी इज्जत कायम रखते हैं।

भाइयों ! अगर आप में यह गुण आ गये तो समझ लो कि आप अशुभ गतियो से बच गये। इसके विपरीत अगर आपने हमारा कहना न माना तो अपनी इज्जत गँवाओगे और नरक-तिर्यञ्च गति के दुःख उठाओगे।

जम्बूकुमार की कथाः—

जम्बूकुमार ने अपनी इज्जत कायम रक्खी। उन्होंने अपने गुरु की भी शान बढ़ाई और मानव-जीवन की भी प्रतिष्ठा बढ़ाई

उन्होने अपनी आठो स्त्रियों को भलीभांति समझाकर सही राह पर लाने की चेष्टा की और वह सफल हुई। वे हाथ जोडकर कहने लगी- हमारा परम सौभाग्य है कि आप हमे पति के रूप मे प्राप्त हुए है। दूसरा कोई मिलता तो वह भी डुबता और हमे भी डुबाता ! मगर आप स्वय तिर रहे है और हमे भी तार रहे है। नाथ ! हम मोह में फँसी थी। इस कारण आपके वियोग की कल्पना करके व्याकुल हो गई थी। व्याकुलता की स्थिति मे विवेक नही रहता और जीभ से ऊँचे-नीचे शब्द निकल जाते हैं। हमने आपके प्रति अनेक अयोग्य शब्दों का प्रयोग किया है। इसके लिए हमे क्षमा कीजिए। पत्नी, पति का अनुसरण करे, इसी मे उसकी शोभा है। हम सब ने यही निश्चय किया है। अब आप और हम आठो साथ-साथ ही दीक्षा लेंगे।

भाइयों ! इस प्रसंग पर आपको गंभीर विचार करना चाहिए। आज ससार में पति-पत्नि के कर्त्तव्य को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है। दाम्पत्य सम्बन्ध का उद्देश्य क्या होना चाहिए ? यह बात इस कथा से स्पष्ठ मालूम हो जाती है। दूसरे देशो में विवाह का उद्देश्य भले ही भोग-विलास करना समझा जाता हो, परन्तु भारतीय संस्कृति ने कभी यह बात स्वीकार नहीं की है। भारत की धर्मप्रधान संस्कृति विवाह को गृहस्थधर्म का सहायक मानती है। पति और पत्नी-दोनों अलग-अलग अपूर्ण हैं और मिल कर दम्पती के रूप मे पूर्णता प्राप्त करते हैं। दोनो एक दूसरे के धर्म मे सहायक हों, एक दूसरे के सहयोग से अपने धर्म का पालन करें और पूर्ण धर्म का आचरण करने की योग्यता प्राप्त करें, यही गृहस्थ अवस्था का आदर्श है। जीवन के अन्तिम

श्वास तक भोगों की कीचड मे फँसे रहना और भोगों के कीडे बने रहना उचित नही है। पूर्ण संयम की योग्यता जिसने प्राप्त नही की, उसका विवाहित जीवन व्यर्थ हो गया। जिसे गृहस्थ जीवन को सार्थक बनाना है, उसे गृहस्थ धर्म का शास्त्रोक्त विधि से पालन करते हुए मुनिधर्म को धारण करने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। जो गृहस्थ जितने जल्दी वह योग्यता प्राप्त कर ले, उतना ही वह भाग्यशाली है। जम्बूकुमार अत्यन्त भाग्यवान् पुरुष थे। उन्होने विवाह होते ही अपनी पत्नियो को भी सयम धारण करने के लिए तैयार कर लिया।

पति और पत्नी मे से कोई भी एक अगर विवेकवान् हो, धर्म पर पूरी तरह दृढ हो तो दूसरे का भी उद्धार हो जाता है। यदि दोनो ही भोगोपभोग मे मग्न होकर अपने कर्त्तव्य को भूल जाएँ तो फिर उद्धार होना कठिन है जम्बूकुमार पत्नियो के अनेक प्रकार के आग्रह के बावजूद भी अपने पथ पर दृढ़ रहे तो अपनी पत्नियो को भी धर्म के मार्ग पर लाने मे समर्थ हो सके।

रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। कुछ-कुछ प्रकाश हो रहा था। उस समय जम्बूकुमार के माता पिता कमरे की ओर आये। जम्बूकुमार पलंग पर बैठे थे और उनकी आठो पत्नियाँ सामने खडी थी माता-पिता रात्रि के वार्त्तालाप का परिणाम जानने के लिए उत्कंठित थे। उन्हे विश्वास था कि पत्नियो के आकर्षण और आग्रह का जम्बूकुमार पर अवश्य असर पडा होगा। यही बात सोचते हुए वे आये थे।

माता-पिता को आते देख जम्बूकुमार तत्काल पलंग से नीचे उतर पड़े। माता-पिता का स्वागत करने के लिए कुछ आगे

बढ़े। दोनों को नमस्कार किया। इसके बाद पिता बोले—बेटा! प्रातः कृत्य से निवृत्त होओ, स्नान करो, कपड़े पहनो और दुकान चलो।

जम्बू०—पिताजी! मैंने आपका आदेश स्वीकार किया था, अब आपको भी मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी होगी। मैंने साधु बनने का जो निश्चय किया था वह अब भी ज्यों का त्यों कायम है और आज ही साधु बन जाना है। आपके आदेश से मैंने विवाह करना स्वीकार कर लिया था। वह हो चुका है अब शुभ कार्य में विलम्ब करना योग्य नहीं है। जीवन का क्या भरोसा है! कौन जाने कब काल का परवाना आ जाय?

जम्बूकुमार का कथन सुनते ही उनके माता पिता को गहरा आघात लगा। माता के नेत्रों से आँसू बहने लगे। पिता बोले—बेटा! देखते हो, हमारी वृद्धावस्था आ गई है। इस अवस्था में हमारे लिए तुम्हीं एक मात्र आधार हो, तुम्हीं हमारे शेष जीवन के आलंबन हो। न मालूम कितनी आशाओं से हमने तुम्हारा पालन पोषण किया है! तुम्हें देख देख कर कितने मसूबे बांधे हैं। मगर तुम दीक्षा लेने की बात कह कर हमारी समस्त आशाओं पर तुषारपात कर रहे हो।

प्रिय पुत्र! अभी तुमने संसार का अनुभव नहीं किया है। कुछ दिनों तक अनुभव करो, गृहस्थधर्म का पालन करो। फिर समय आने पर दीक्षा की बात कहना। अभी दीक्षा लेने का नाम भी योग्य नहीं है। तुम जानते हो कि तुम्हारे सिवाय हमारा और कोई आधार नहीं है। तुम जैसा पुत्र मिलना भी बड़े पुण्य का

फल है। तुम हमारे कुल के एक मात्र दीपक हो। तुम दीक्षा ले लोगे तो यह घर श्मशान के समान बन जायगा।

वत्स ! घर मे अधेरा करके बाहर उजेला करने मे बुद्धिमत्ता नही है। माता-पिता के प्रति निर्दयता करके दूसरो पर दया करना भी आदर्श कर्त्तव्य नही है। तुम प्राणी मात्र के प्रति दया करने के लिए उद्यत हो रहे हो तो क्या हम लोग उन प्राणियो मे सम्मिलित नहीं हैं ?

माता ने कहा—मेरे कलेजे के टुकड़े ! यह कैसी बातें कर रहे हो ? नौ महीने तक मैंने तुम्हे उदर में धारण किया बडी-बडी आशाए बाध कर दूध पिलाया, गोदी मे खिलाया ! मैं आप गीले मे सोकर तुम्हे सूखे मे सुलाया ! यह सब क्या यही सुनने के लिए किया था ? जरा विचार तो करो कि ऐसी बात मुंह से निकालना भी क्या तुम्हे सोहता है ! माता के हृदय को तुम समझते नही हो। पुत्र के विरह की बात सुनते ही माता के कलेजे मे कटार चुभने की पीड़ा होती है। बेटा ! हमारे बुढापे को मत बिगाडो। हमारे सौ वर्ष पूरे होने दो। फिर जो चाहे, करना। अभी हमे निराधार मत करो।

जम्बूकुमार—पिताजी ! आपके और माताजी के असंख्य उपकारो को मैं मस्तक झुका कर स्वीकार करता हू। यह शरीर और इसमें रहने वाले प्राण सब आपकी दया का फल हैं मैं आपके ऋण से जीवन भर मुक्त नही हो सकता। फिर भी मुझे अपने संकल्प मे परिवर्त्तन करने का कोई कारण नही दिखाई देता आप कहते हैं कि हमारे प्रति निर्दयता करके दूसरे जीवो

के प्रति दया दिखलाना योग्य नहीं है। ठीक है, मगर आपके प्रति निर्दयता करने का प्रश्न ही नहीं उठता। आपको मेरे विरह से अगर कष्ट होता है तो उसका प्रधान कारण वह मोह ही है जो आपके अन्तःकरण में आसन जमाये बैठा है। आप उस मोह का यदि परित्याग कर दें तो कष्ट का अनुभव नहीं होगा। मैं दो के बदले समस्त जीवों पर, जिनमें आप दो भी सम्मिलित हैं, दया पालता हूँ तो इसमें बुराई क्या है ? भगवान् फरमा गये हैं–मित्ती मे सव्वभूएसु अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति मैत्रीभाव होना चाहिए।

माताजी ! संसार में कोई किसी का आधार नहीं है। जिसे आप आधार मानती हो वह स्वयं निराधार है। सच्चा आधार एक मात्र धर्म है। वही दुःख से बचाता है। उसी का सहारा लेने से संकट कटते हैं। अतएव इस मोह–माया को छोड़ो और असली तत्त्व का विचार करो। काल का क्या भरोसा है ? कौन कब चल देगा, यह निश्चित नहीं है। अतएव धर्म–कार्य में पल भर की ढील करना योग्य नहीं है। माता-पिता के रहते क्या पुत्र की मृत्यु नहीं हो जाती ? फिर जीवन का क्या भरोसा है ? अतएव शीघ्र से शीघ्र आत्म कल्याण कर लेने में ही आनन्द है।

२-१०-४८ }



ज्ञान

स्तुतिः—

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरूषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! जब आपके मुख रुपी चन्द्रमा से अंधकार का नाश हो जाता है तो फिर रात्रि मे चन्द्रमा से और दिन मे सूर्य से क्या प्रयोजन है ? जब लोक में धान्य पक चुका हो तो जल के भार से नीचे झुके हुए बादलों से क्या प्रयोजन है ?

तात्पर्य यह है कि जब हम भगवान् के मुख-चन्द्र का दर्शन करते हैं तो हमारा अज्ञान दूर हो जाता है और अन्त.करण में ज्ञान का उज्ज्वल प्रकाश जगमगा उठता है। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा और सूर्य की आवश्यकता ही क्या है ? किसी किसान ने खेती की, वह पक कर तैयार हो गई और तब मेघ चढ कर आये तो कहो वे बादल किसान के किस काम के ? क्योकि उसे अब बादलों की आवश्यकता ही नही रही है।

आचार्य महाराज ने भगवान् ऋषभदेवजी के मुख को चन्द्रमा की उपमा दी है। इसका अभिप्राय यह है कि जैमे चन्द्रमा ज्योतिषी देवों में इन्द्र माना गया है, उसी प्रकार भगवान् समस्त जिनों में इन्द्र हैं, इसी कारण उन्हे जिनेन्द्र कहते हैं। चन्द्रमा की बडी विशेषताएं यह हैं कि वह अत्यन्त सौम्य होता है, दर्शकों के चित्त को आह्लाद पहुँचाता है और प्रकाश भी करता है। इसी प्रकार भगवान् की वीतरागतामयी, निर्विकार मुखमुद्रा भी अतीव सौम्य और भव्य जीवो के चित्त मे असीम आह्लाद उत्पन्न करने वाली होती है। उनके मुख पर सात्विकता की पराकाष्ठा दिखलाई देती है। चन्द्रमा सिर्फ द्रव्य (पौद्गलिक) अंधकार को नष्ट करता है, किन्तु भगवान् के मुखचन्द्र से निकलने वाले वचनों की किरणें भाव-अन्धकार को नष्ट कर देती है।

चन्द्रमा के विषय में एक कवि कहते हैं:—

लालयन्तमरविन्दवनानि, क्षालयन्तमभितो भुवनानि ।
पालयन्तमथ कोककुलानि, ज्योतिषां पतिमहं महयामि ॥

अर्थात ज्योतिष्कों का पति - चन्द्रमा अरविंद-कमलों के वन को विकसित करता है, चारो ओर से सम्पूर्ण लोक को उज्ज्वल बना देता है और कोक पक्षियो का पालन करता है।

चन्द्रमा के इस वर्णन के साथ भगवान् की विशेषताओं का मिलान किया जा सकता है। जैसे चन्द्रमा कुमुदो को विकसित करता है, उसी प्रकार भगवान् भव्य जीवों के अन्त:करण मे, अपने दर्शन मात्र से अनिर्वचनीय आनन्द जगा देते हैं। यही नही, उनकी पवित्र और पीयूषवर्षिणी वाणी से आत्म-स्वरूप का भान होता है और जिसे आत्मा के स्वरूप का भान हो जाता है, वह आत्मिक आनन्द के अथाह समुद्र मे गोते लगाने लगता है। चन्द्रमा समस्त लोक को उज्ज्वल बना देता है, तो भगवान लोकोत्तर धर्म का प्रकाश करके जन समूह के अज्ञान, मिथ्यात्व आदि दोषो को दूर करके लोक को पावन बना देते हैं। चन्द्रमा अगर कोक-कुल का पालन करता है तो भगवान् जीवदया का उपदेश देकर प्राणी मात्र का पालन करते हैं। सव्वे जीवा न हन्तव्वा' अर्थात् किसी भी जीव का हनन नही करना चाहिये, यह भगवान् का प्रधान उपदेश है इस प्रकार चन्द्रमा की अपेक्षा भी भगवान् की उत्कृष्टता सिद्ध होती है।

इस प्रकार लोकोत्तर ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले और उपदेशामृत की वर्षा करने वाले भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

भाइयो! मूल बात यह है कि अज्ञान दूर होना चाहिए। अज्ञान ही प्राय: समस्त अनर्थों की जड़ है। अज्ञान के दो रूप

हैं— ज्ञान का अभाव और मिथ्या ज्ञान। ज्ञान का न होना भी अज्ञान कहलाता है और मिथ्याज्ञान भी अज्ञान कहलाता है। अज्ञान के यह दोनों रूप हानिकारक हैं। बल्कि कहना चाहिए कि अज्ञान की अपेक्षा मिथ्याज्ञान अधिक अनर्थकारक होता है।

मिथ्याज्ञान को दूर करने के लिए सम्यग्दर्शन की आवश्यकता होती है और ज्ञानाभाव रूप अज्ञान को दूर करने के लिए ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम अथवा क्षय की आवश्यकता होती है। ज्ञानावरण के क्षयोपशम से चार ज्ञान होते हैं और क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम या क्षय किस प्रकार किया जाय?

इस प्रश्न का उत्तर कर्मशास्त्र में भली भांति दिया गया है। मैं यहां इतना ही कहना चाहता हूं कि ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम करने का एक सबल साधन ज्ञानदान है। ज्ञान की बड़ी महिमा है। कहना चाहिए कि आध्यात्मिक उत्थान का प्रारम्भ ज्ञान से ही होता है। ज्ञान के अभाव मे मनुष्य अपने हित-अहित को नही समझ पाता। उसे आत्मा-अनात्मा का विवेक भी नहीं हो सकता और जब तक यह विवेक प्राप्त न हो जाय, मनुष्य किस प्रकार आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर हो सकता है? अतएव मुमुक्षु जीवों को सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञान-दान का अर्थ यही नही है कि कोई मनुष्य, अपनी आत्मा में रहे हुए ज्ञान को निकाल कर दूसरे को दे दे। जड़

पदार्थ कोई किसी को दे सकता है। आप चाहें तो अपना मकान किसी को दे सकते है, रुपया-पैसा भी दे सकते हैं. भोजन दे सकते हैं और मोटर-साईकिल आदि भी दे सकते हैं। मगर अपना ज्ञान दूसरे की आत्मा में नही उडेल सकते । क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का गुण है और गुण, गुणी को छोड़ कर अलग नहीं हो सकता ।

फिर ज्ञानदान का अर्थ क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिन साधनो से ज्ञान की प्राप्ति होती है, उन साधनों का दान देना ही ज्ञानदान कहलाता है। ज्ञान के साधन अनेक हो सकते हैं, पर उन सब मे पहला स्थान शास्त्रो, ग्रन्थो और धार्मिक पुस्तको का है। शास्त्रों का दान देना निर्ग्रन्थ प्रवचन अथवा दूसरे ग्रन्थो का दान देना, जिससे जनता का अज्ञान दूर हो सके, ज्ञानदान कहलाता है। बहुत-से लोग लड्डू बताशा, नारियल आदि की प्रभावना करते है, मगर सच्ची प्रभावना जिनशासन के सम्बन्ध मे फैले हुए अज्ञान को दूर करने मे है। कहा भी है—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाश स्यात् प्रभावना ।।

अज्ञान रूपी अंधकार के विस्तार को यथोचित उपायो से दूर करके जिन भगवान् के शासन की महिमा का प्रकाश करना प्रभावना है ।

भाइयो ! अज्ञान को दूर करना सर्वोत्कृष्ट प्रभावना है । ऐसी प्रभावना शास्त्रो का दान करने से होती है। अगर आपके

पास सम्पत्ति है तो आप स्वयं शास्त्र खरीद कर दान दे सकते हैं अगर आपमें विद्वत्ता है और आपस मे सुन्दर शैली से जिन भगवान् द्वारा कथित तत्त्वो की विवेचना करने की लेखनशक्ति है तो आप नवीन पुस्तको का निर्माण कर सकते हैं। जिनमें कविता करने की शक्ति है, वे कविताओं के द्वारा ज्ञान का प्रकाश फैला सकते हैं। जिनमे व्याख्यान देने की कला है वे व्याख्यानों द्वारा जनता के अज्ञान को दूर कर सकते हैं। मतलब यह है कि जिसके पास जो शक्ति हो उसे वह शक्ति ज्ञान के प्रचार में, ज्ञान के दान में, लगानी चाहिए।

ज्ञान दान देने वाला जल्दी केवल ज्ञान पाता है। अतएव पढने की पुस्तकें, पट्टियां, पढ़ने वालो की वृत्ति (छात्र वृत्ति) आदि देना चाहिए।

ज्ञानवान् पुरुषों का आदर करने से भी ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्राय. देखा जाता है कि विद्वान् पुरुष धनवान् नही होते। धनिक समाज मे धनवानों का ही आदर होता है, इस कारण विद्वानों को वैसा आदर नही मिलता। मगर समाज की यह पद्धति एकदम दोषपूर्ण है। जो समाज चांदी–सोने जैसे जड़ पदार्थों का और उनके स्वामी का आदर करता है, परन्तु ज्ञान का और ज्ञान-वान् का आदर नही करता, उस समाज मे ज्ञान का अच्छा प्रचार कदापि नही हो सकता! जब कि ज्ञान एक महान् प्रशस्त गुण है तो फिर ज्ञानवान् का आदर क्यो नही करना चाहिए? शास्त्र बतलाते हैं कि ज्ञानवान पुरुष का आदर करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

आज समाज मे गुरुकुल, विद्यालय, पाठशाला आदि के नामो से जो संस्थाएँ चल रही हैं, वह सब ज्ञान का प्रचार करने के लिए ही चल रही हैं। यह सब अज्ञान को हटाने के रास्ते हैं। जिसने ज्ञान का महत्त्व समझा होगा और जो आगामी भव मे बुद्धिमान एव ज्ञानी बनना चाहता होगा, वह ज्ञान प्रचार की इन सस्थाओ को यथायोग्य सहायता अवश्य देगा। पर्याप्त ज्ञानदान करने वाला मनुष्य अगर अध्ययन करेगा तो उसे अनुत्तीर्ण होने का अफसोस नही करना पडेगा। इसके विपरीत जो दूसरो के ज्ञानोपार्जन मे बाधा डालता है, शास्त्रो या पुस्तकों को आग में या पानी मे डाल कर नष्ट कर देता है, चलती हुई पाठशालाओ को किसी किस्म का अडंगा खडा करके बन्द कराने की कोशिश करता है, जो विद्वान जनो का अनादर करता है, ज्ञान की आसातना करता है ज्ञानी पुरुषो के प्रति विद्वेष का भाव रखता है, ईर्षाभाव से प्रेरित होकर किसी तत्त्व को जानता हुआ भी अनजान बनता है, जो अपने ज्ञानदाता गुरु का विनय नही करता, गुरु के प्रति कृतघ्नता प्रदर्शित करता है, वह अपने इन दुष्कृत्यो के प्रभाव से जन्म-जन्मान्तर में मूर्ख रहता है।

एक आचार्य महाराज बडे विद्वान् थे और उनका बड़ा भाई मूर्ख था। अतएव जो भी प्रश्न पूछने वाले आते, आचार्य महाराज के पास ही आते थे और उन्ही से प्रश्नोत्तर किया करते थे। अतः आचार्य ने विचार किया—लोग मुझे चैन भी नही लेने देते! मुझसे तो मेरे यह भाई ही अच्छे जो पढ़े लिखे नही है और इस कारण चैन से बैठे रहते हैं।

ऐसा दुर्विचार आने के कारण उन्होंने ऐसा ज्ञानावरणीय कर्म बांधा, कि वह जहां जनमे वहां ठोठ ही रहे और कोढ़ी तक हो गये।

इसी प्रकार जो शास्त्रों में दोष ढूंढता है, शास्त्रों की बुराई करता है और शास्त्रज्ञ पुरुष की निन्दा करता है-कि अजी क्या जानता है वह! कोरा राग अलापता है तो वह भी ज्ञानावरणकर्म का बंध करता है। दुनिया को खबर नहीं है कि यह पित्त बढ़ाने वाली चीज है और लोग स्वाद के वशीभूत होकर उसे खा जाते हैं मगर जब बुखार चढ़ता है तब 'अरे राम!' मरे राम!' चिल्ला-चिल्ला कर रोते हैं! कर्म का बंध कर लेने में तो कठिनाई नहीं होती, पर भोगते समय छठी का दूध याद आ जाता है! अतएव याद रखना, ज्ञान या ज्ञानी जनों की बुराई या आसातना करोगे तो आगामी जन्म में क, ख, ग भी आना कठिन हो जायगा!

कई लोग क्रोध में आकर पुस्तकें जला देते हैं या स्लेट-पट्टी फोड देते हैं। कई लोग दूसरों को न पढ़ने देने के दुर्भाव से ऐसा करते हैं। ऐसे लोग भी ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते हैं।

कोई पाठशाला, विद्यालय, सिद्धान्तशाला अथवा साहित्य प्रकाशित करने वाली संस्था चल रही है। वह ज्ञान-प्रचार की ऊँची भावना से चलाई गई है। उसके कार्यकर्त्ता किसी के पास चन्दा लेने पहुंचे। जिसके पास पहुंचे, वह अगर चंदा देना नहीं चाहता तो उसे चाहिए कि सच सच कह दे कि मेरी चन्दा देने की शक्ति नहीं है अथवा इच्छा नहीं है। ऐसा करने के बदले

अगर वह कहता है कि-क्या रक्खा है इसमे ! फिजूल पैसा नष्ट होता है। न कोई पढना है न कुछ लाभ होता है ! इस प्रकार अपना पैसा बचाने के लिए जो लोग ज्ञान के साधनो की ही जड़ खोदने का प्रयास करते हैं वे भी ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध करते हैं ।

कई लोग कहते हैं-शास्त्र झूठे हैं, केवली कोई हो ही नही सकता, शास्त्रो को रचने का अभिप्राय तो लोगो को ठगना है, इन शास्त्रो मे तो गपोड़े भरे हैं ! लोग ऐसा बोल तो देते हैं, मगर इसका नतीजा भुगतान उनके लिए कठिन हो जायगा ! अभी गांधीजी हुए हैं और एक पागल की गोली के शिकार भी हुए हैं, मगर कुछ शताब्दियां बीत जाने पर कोई कहने लगेंगे-अजी, यह सब गप्प है ! मगर ऐसा कहने वालो को पता नही कि वे अपने लिए स्वयं ही काटे बो रहे हैं !

भाइयो ! आप अपने भाग्य की सराहना करो कि आपको केवली भगवान् की कल्याणकारिणी, पापहारिणी वाणी-श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है इस वाणी को सुनकर अपनी शक्ति के अनुसार लाभ उठाओ। अपने क्षयोपशम के अनुसार इसे स्वय समझो और दूसरो को समझाओ। समझ मे न आवे तो अपने द्वारा पहले बांधे हुए ज्ञानावरणीय कर्म के लिए पश्चात्ताप करो और भविष्य के लिए सकल्प करो कि मैं ज्ञानावरणीय कर्म बाधने का कोई काम नहीं करूंगा। ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुषो की सराहना करो, उनको यथोचित सेवा, सहायता करो, सत्कार करो, सराहना करो और जो कुछ बन पड़े ज्ञानप्रचार के लिये सहायता दो। निर्धन किन्तु सदाचारी विद्यार्थी का सहायता

करो। जिनेन्द्र भगवान् की वाणी का प्रचार करने के लिए साहित्य की प्रभावना करो। ऐसा करने से तुम्हारा अगला जन्म अवश्य सुधरेगा। तुम स्वय ज्ञानवान् और वुद्धिमान वनोगे। तुम्हारे पापों का क्षय होगा।

पुन पुनः चेतावनी देता हूं कि यह अनमोल और ऊँचा मनुष्य जीवन सिर्फ मौज करने के लिए नही है। धन सचय कर करके क्या करोगे? जहां जाना है वहां धन साथ नही जायगा। वहा तुम्हारी छोड़ी हुई लाखो करोडो की सम्पत्ति फूटी कौडी के वराबर भी काम नहीं आएगी। तुमने जो भी अच्छे बुरे कर्म किये हों, वही तुम्हारे साथ साथ जाएँगे। यह भगवान् का कथन है। इस पर विश्वास करो, विश्वास करके इसे स्मरण रक्खो, और जब कभी कोई काम करो, इसे स्मरण करते हुए ही करो। वृथा पाप की पोटली मत बांधो, भाई, मत बाधो! वह आगे चल कर तुम्हारे लिए मुसीबत का कारण बन जायगी।

अपनी बात रखने के लिए या अपना थोडा-सा पैसा बचाने के लिए कभी भूलकर भी ज्ञान अथवा ज्ञानी की निन्दा न करो। हो सकता है कि कभी कोई बात आपकी समझ में न आवे। उस समय यह मत सोचो कि आपकी समझ में त्रुटि हो ही नहीं सकती। ज्ञानी जनों के कथन पर पूर्ण श्रद्धाभाव रक्खो।

तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहि पवेइयं।

भगवती सूत्र शत. २०

जिनेन्द्र देव ने जो कहा है वही सत्य है, उसमें शंका के लिए कोई अवकाश नही है। इस प्रकार की गाढी श्रद्धा रक्खो।

गौतम स्वामी जैसे परम ज्ञानी ने एक बार भगवान् से पूछा—जो बात हमारी समझ मे न आवे, उसके लिए ऐसा कह दें कि केवली का वचन सत्य है ? ऐसा कहने मे कोई दोष तो नही है ? भगवान् ने उत्तर दिया–सत्य को सत्य कह देने मे कोई दोष नही है ।

बहुत–से लोग झूठी प्रतिष्ठा के वशीभूत होकर अपनी अज्ञता स्वीकार करने मे हिचकते हैं। अपनी शान कायम रखने के लिए असत्य का आश्रय लेते हैं । मगर अन्त में उनकी अधिक अप्रतिष्ठा ही होती है ।

कहते हैं, एक लोमड़ी चली अगूर खाने को। मगर ऊपर होने के कारण वह पा नही सकी । जब वह निराश होकर वापिस लौटी तो उससे पूछा गया–अगूर खाये ? उसने उत्तर दिया–अंगूर तो खट्टे थे ! उसने यह नही कहा कि अंगूर तो ऊँचाई पर थे और मैं प्रयत्न करके भी उन्हे नहीं पा सकी ।

यह तो एक रूपक है । इसका तात्पर्य यही है कि बहुत-से ऐसे लोग मौजूद हैं जो तत्त्व की गहराई को समझते नही है मगर अपनी नासमझी को समझते हुए भी दूसरों को छिपाने का प्रयत्न करते है । कोई-कोई अपनी नासमझी को भी नही समझते हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसे लोग ज्ञानियो के कथन का ही अपलाप करने लगते हैं । मैं पहले बतला चुका हूं कि साधारण मनुष्य की बुद्धि कितनी अल्प है ! अतएव नम्रतापूर्वक अपनी अज्ञता को स्वीकार कर लेना ही मनुष्य के लिए उचित है। दंभ करने से अन्त तक अज्ञता छिपती नही, है बल्कि उपहास का पात्र बनना पड़ता है ।

भगवान् के वचनों में से कई बातें जो प्रत्यक्ष से मालूम होने योग्य हैं, प्रत्यक्ष से ही सच्ची मालूम होती हैं। कितनी ही बातें अनुमान प्रमाण से जानने योग्य हैं। किसी-किसी बात को आगम से अथवा उपमा प्रमाण से ही जान सकते हैं। अतएव उचित विचार करके समझने का प्रयत्न करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है।

राजा प्रदेशी पक्का नास्तिक था। वह आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नही करता था। साधु-सन्तो से दूर ही रहता था। मगर संयोग वश एक बार केशी स्वामी से उसका साक्षात्कार हुआ। चर्चा हुई। राजा ने मुनि से पूछा अगर आत्मा शरीर से न्यारी है तो उसे हथेली पर रख कर दिखलाइए। नही दिखला सकते तो कैसे माना जाय कि उसका अस्तित्व है ?

उस समय हवा चल रही थी और वृक्षो के पत्ते हिल रहे थे। मुनि ने इस अवसर से लाभ उठाते हुए राजा से पूछा-आप बतला सकते हैं कि वृक्ष के यह पत्ते किस कारण हिल रहे हैं ?

राजा बोला—यह कौन बडी बात है ? सभी को मालूम है, कि हवा के कारण पत्ते हिल रहे हैं !

मुनि—तो क्या हवा आखों से दिखाई देती है ? उसे हथेली पर रख कर आप दिखला सकते है ?

राजा—नही, हवा आंखो से नहीं दीखती। मगर शरीर से उसका स्पर्श होता है और उस स्पर्श का अनुभव हमे होता है। उसीसे हम हवा का अस्तित्व समझते है।

मुनि—राजन् ! ठीक कहते हो हवा का स्पर्श किया जाता है, मगर उसे आखो से नही देखा जा सकता। तुम्हारे कथन से यह सिद्ध होता है कि वायु मे स्पर्श है। जब स्पर्श है तो रूप, रस और गध भी उसमे होना चाहिए। क्योकि रूप, रस, गध और स्पर्श सदा साथ ही रहते हैं। जहां एक होता है, वहां चारों होते हैं और जहां एक नही होता वहां शेष तीन भी नही होते। इस प्रकार जब हवा रूपी है और फिर भी आखो से नही देखी जा सकती, तो फिर अरूपी आत्मा को आंखों से देखने का आग्रह क्यों करते हो ?

भाइयो ! समुद्र के एक किनारे खडा मनुष्य दूसरा किनारा नही देख सकता, फिर भी उसका अस्तित्व तो मानना ही होगा। जब एक किनारा माना है तो दूसरा किनारा माने बिना काम नही चलेगा। इत्र की खुशबू नाक से स्पष्ट होती है तो नाक को स्पष्ट रूप से उसका अनुभव होता है, परन्तु लाख उपाय करने पर भी वह खुशबू आंखो द्वारा नही देखी जा सकती।

शब्द भी स्थूल है। वह यन्त्रों की पकड में आ जाता है। हमारे कान उसे अच्छी तरह ग्रहण कर लेते है। फिर भी वह आंखो से दिखाई नही देता।

कही दूर के पहाड पर अग्नि हो तो आखों से दिखाई नही देती, मगर जब उसमे गीला ईंधन पड़ता है और धुआ उठती है तो हम उस धुएं को देख कर अग्नि के होने का अनुमान कर लेते हैं। हम दूसरे आदमी को प्रत्यक्ष देखते है, किन्तु उसके पूर्वजों को न देख कर भी अनुमान अवश्य कर लेते हैं, कि इसके पूर्वज

कभी न कभी, कही न कही, अवश्य रहे होगे। पानी का मैला प्रवाह देखकर अनुमान प्रमाण से वर्षा का ज्ञान होता है।

उपमा प्रमाण से भी हमे ज्ञान होता है। जैसे कहा है —

आयुष्यं जललोल बिन्दुचपल, फेनोपमं जीवितम्

अर्थात्–यह आयु जल के चपल बूंद के समान है और जिंदगी पानी में उठने वाले बुलबुले के समान है, अर्थात् क्षण-भगुर है।

हिंदी काव्य मे भी यही बात यो कही है—

अंजली के नीर ज्यों जावे रे जवानियां।

यह जवानी अजलि में लिए हुए नीर की तरह क्षीण होती जा रही है।

कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जो प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से भी नही जानी जा सकती। उनको जानने के लिए आगम प्रमाण की आवश्यकता होती है। यह बात दूसरी है कि कोई चाहे जिस पोथी को आगम कह दे और उसे प्रमाणभूत मानने का आग्रह करे। मगर सच्चा आगम वह है जो आप्त अर्थात् प्रामाणिक पुरुष के द्वारा कहा गया हो, जिसके कथन में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से बाधा न आती हो–किसी भी युक्ति या तर्क से जिसका खंडन न हो सकता हो, जिसकी प्ररू-पणा मे पूर्वापर विरोध न हो, अर्थात् पहले कुछ कह दिया हो और आगे चल कर कुछ और कह दिया हो ऐसा विरोध न पाया जाय,

जिससे प्राणी मात्र का कल्याण होता हो और जो जनसमाज को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाला हो। ऐसा आगम ही सच्चा आगम है। वही प्रमाण भूत होता है। जब कोई सूक्ष्म तत्त्व हमारी बुद्धि के द्वारा ग्राह्य न हो, तब उसे आगम प्रमाण से स्वीकार कर लेना ही योग्य है।

जिस महापुरुष ने पूर्ण वीतरागता प्राप्त कर ली है, वह किसी को धोखा नही देगा, किसी को गलत राह पर नही ले जाना चाहेगा। और जिसे सर्वज्ञता प्राप्त हो चुकी है वह कोई भूल नहीं कर सकता। इस स्थिति में उसका कथन सर्वथा असंदिग्ध ही होता है। कहा है—

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिना.॥

वीतराग प्रभु के द्वारा कहा हुआ इन्द्रियो से, मन से और बुद्धि से पर सूक्ष्म तत्त्व किसी भी तर्क के द्वारा खंडित नही किया जा सकता, वह प्रभु की आज्ञा से ही स्वीकार कर लेना चाहिए। यह एक निश्चित बात है कि जिन कदापि अन्यथा वादी नहीं हो सकते।

कहने का तात्पर्य यह है कि बहुत-सी बाते ऐसी है जो अभी आपकी या हमारी भी समझ में नही आतीं। वे बाते अगर ज्ञानियो ने कही है तो उन पर अविश्वास मत लाओ। अविश्वास करने से उन ज्ञानियो की तो कोई हानि नही होगी, आपकी ही हानि होगी। आप उस तत्त्व से वचित रह जाएंगे और ज्ञानी की

आसातना करेंगे तो ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्र बंध कर लेंगे। अगर आप ज्ञानावरणीय कर्म को नष्ट करना चाहते हैं तो, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, ज्ञान दान दीजिए, ज्ञान की वृद्धि मे सहायक बनिये ज्ञान और ज्ञानवान् का सन्मान कीजिए। आपने अगर ज्ञान सीखा है तो दूसरो को भी सिखलाइए।

रामपुरा (मालवा) मे एक भाई केसरीमलजी सुराणा थे। वे बत्तीसो शास्त्रो के ज्ञाता थे। उन्होने जब से होश संभाला, चारो खबो का त्याग कर दिया। सदा एकान्तर तप किया करते थे। घर जाने का भी उन्होने त्याग कर रक्खा था। जो कोई साधु या साध्वी उनसे सीखना चाहता, उसे बडे प्रेम से सिखलाते थे। एक ही बात दस बार पूछने पर भी उन्हे कभी क्रोध नही आता था। इतने विरक्त थे कि घर मे किसी की मृत्यु हो जाती तो भी घर जाने का नाम नही लेते थे। उनके हिस्से मे जो द्रव्य आया था, उसे किसी दूसरे के पास जमा करा दिया था। जब पारणा करते तो उस द्रव्य के ब्याज से लाये हुए सामान से पारणा करते थे। पूज्य चौथमलजी महाराज और पूज्य श्रीलालजी महाराज भी उनके पास जाया करते थे। मैंने भी उनसे सिखावन ली है। सत्य पर उनका अटल विश्वास था। शास्त्र सिखलाने मे प्रमाद नही करते थे !

यह ज्ञानावरण कर्म को तोडने का रास्ता है। अपूर्व ज्ञान को सिखने और सिखाने से जीव कर्मों को कोटि खपाता है और उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो केवल ज्ञान भी पा लेता है।

कई लोग जानते हुए भी दूसरो को नही सिखलाते हैं, मगर विद्या तो सिखलाने से ही बढती और निर्मल होती है।

विद्या—धन बांट्या वधे, छांट्यां भला निवारण ।
मूरख अन छेड्या भला, छेड्यां भला सुजान ।।

विद्या की विशेषता ही यह है कि ज्यों-ज्यों दूसरे को वह दी जाती है, त्यों-त्यों उसकी वृद्धि होती है। नदी के किनारे के जलाशय मे से ज्यो-ज्यो पानी निकाला जाता है, त्यों त्यो उसमें अधिकाधिक आता जाता है। मूर्ख मनुष्य को छेडना ठीक नही है, पर विद्यावान् को छेडने मे लाभ है। छेडने पर वह कुछ बोलेगा तो कुछ न कुछ अच्छी बात ही कहेगा ! इसी आशय से कहावत प्रचलित है—दाना दुश्मन भला पर नादान दोस्त भला नही। कहते हैं.—

पण्डितोऽपि वरं शत्रु., न मूर्खो हितकारक: ।
बानरेण हतो राजा, विप्रचौरेण रक्षित: ।।

पंडित अगर शत्रु है तो भी अच्छा है, क्योकि वह जो कुछ करेगा सो विचार करके ही करेगा। मगर मूर्ख मित्र भी मगल-कारी नही है, क्योकि वह मित्र होकर भी हानि ही पहुँचाएगा।

किसी राजा ने एक बन्दर पाला और उसे तलवार लेकर खडा रहना और किसी को भी अन्दर न आने देना सिखलाया। राजा ने उसे अपने पलंग के पास ही रक्खा।

इसी नगर मे एक बडा पंडित था। वह निर्धनता के कारण ऊब गया और जब उसे कोई भी दूसरा रास्ता न सूझा तो उसने राजा के यहाँ जाकर ही चोरी करने का निश्चय किया। रात हुई और पंडित किसी तरह राजमहल

मे घुस गया। वह राजा के सोने के कमरे के बाहर खड़ा होकर भीतर की ओर झांकने लगा। जब उसने झाँका तो चांदनी रात में उसके शरीर की परछाई राजा के शरीर पर पडी। यह देख बन्दर ने समझा कि कोई घुस आया है और इसे मार देना चाहिए। बन्दर ने अपनी तलवार सँभाली। तब तक पंडित नीचे की ओर झुक गया। परछाई गायब हो जाने के कारण बन्दर भी रुक गया।

चोर विचार करने लगा—अगर चोरी करने में मैं सफल हो भी गया तो मुझे कुछ धन मिल जायगा मगर उसके बदले राजा के अनमोल प्राण इस मूर्ख वानर के द्वारा चले जाएँगे। राजा इस नगर और देश के रक्षक हैं। इनका जीवन बहुत उपयोगी है मैं अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इतना बडा अनर्थ होते नहीं देख सकता। इस प्रकार विचार कर चोर पंडित वही बैठा रहा। दिन निकलने पर चोर पकड़ा गया और सिपाहियो ने उसे जेलखाने मे रख दिया।

यथासमय उसकी पेशी हुई। राजा ने उससे राजमहल में प्रवेश करने का प्रयोजन पूछा। तब पंडित ने कहा—मैं गरीब हूं और चोरी करने के लिए राजमहल मे आया था। यह कह कर उसने चोरी न करने का सारा किस्सा आद्योपान्त कहकर सुना दिया। राजा उसकी सच्चाई और समझदारी से अत्यन्त प्रभावित हुआ।

भर्तृहरि ने कहा है कि मूर्ख मित्र के साथ स्वर्ग मे जाना भी योग्य नहीं है और शत्रु, अगर विद्वान हो तो उसके साथ नरक मे भी जाने मे कोई हानि नही है। तात्पर्य यह है कि मूर्ख मनुष्य

की सगति किसी भी दशा मे वाछनीय नहीं है और विद्वान की सगति हर हालत मे हितावह होती है।

मनुष्य का अन्त करण जब ज्ञान से आलोकित हो जाता है, तब उसमे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विवेक स्वत: प्रादुर्भूत हो जाता है। ज्ञानीजन किसी भी अवस्था मे निर्दोष-निरपराध प्राणी को नही सताते। गृहस्थ अपने सामाजिक या राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए कभी-कभी सापराधी को हिंसा का आश्रय लेता है, मगर वह भी विवश होकर ही। जब दूसरा कोई भी मार्ग न रह गया हो और अनीति एवं अत्याचार का तूफान बढता ही चला जाता हो तो, उसका शमन करने के लिए उसे कभी-कभी बल--प्रयोग करना पड़ता है। उदाहरण के लिए हैदराबाद मे भारत-सरकार द्वारा की गई कारंवाई को ही लीजिए। भारत सरकार शान्तिप्रिय है और किसी पर अत्याचार करना नही चाहती। मगर भारत की प्रजा के प्रति उसका उत्तरदायित्व है। अगर कोई भी शक्ति उस प्रजा को पीडित करती है तो उसे दबाना उसके लिए लाजिमी हो जाता है। हैदराबाद मे रजाकारों की करतूतें अपनी सीमा का उल्लंघन करने लगी, लोग सकट मे पड़ गये, स्त्रियाँ अत्याचारो से बचने के लिए कुओ मे पडने लगी, जोरजुल्म का नगा नाच होने लगा। लोग बेसब्र होकर भारत-सरकार की चुप्पी की आलोचना करने लगे। कहने लगे—सरकार अपनी आँखो के सामने यह सब अत्याचार देख रही है और फिर भी चुप क्यो है? उस पर वाग्बाणो की वर्षा होने लगी। फिर भी सरकार ने चाहा कि किसी शान्तिपूर्ण तरीके से समस्या हल हो जाय तो अच्छा है। मगर सत्ता के मद से उन्मत्त बने हुए रजाकारो ने कोई समझौता नही होने

दिया। तब भारत सरकार को विवश होकर अपनी फौजें भेजनी पडी, यह भी सिर्फ अत्याचार को रोकने के लिए और शान्ति की स्थापना के लिए।

जैन शास्त्र, गृहस्थ के लिए ऐसी कार्रवाई का विरोध नही करता। हालाँकि वह हिंसा मे धर्म नही मानता फिर भी गृहस्थ अगर अपराधी को मार डालता है तो भी उसका अहिंसा व्रत खण्डित नही होता। इसका कारण यही है कि गृहस्थ निरपराध त्रस जीवो की संकल्पी हिंसा का ही त्यागी होता है ऐसी स्थिति मे उसके व्रत के खंडित होने का प्रश्न ही नही उपस्थित होता।

राम और रावण के बीच घोर संग्राम हुआ। रामचन्द्र ने उस संग्राम मे न जाने कितने मनुष्यों का वध किया होगा। पर क्या कोई राम को हत्यारा कह सकता है ! नही। क्योकि रामचन्द्र सत्ता लोभ से प्रेरित होकर नही लडे थे। उनका इरादा किसी पर अत्याचार करने का नही था, बल्कि एक शीलवती सती के सतीत्व की रक्षा करना था। अगर वे सीता की उपेक्षा कर देते तो परिणाम यह होता कि शीलधर्म की कोई प्रतिष्ठा नही रहती। कोई भी किसी की भी पत्नी को उडा ले जाता ! अनाचार का दौरदौरा हो जाता ! इन भयकर बुराइयो को दूर करना ही रामचन्द्रजी का लक्ष्य था। वे नीति और सच्चाई के रास्ते पर थे। जो अनीति की राह पर चलता है, उसकी लक्ष्मी भी चली जाती है और राज्य भी चला जाता है। रावण का यही हाल हुआ। उसकी नीयत बिगड गई थी। जब नीयत बिगड़ जाती है तो मनुष्य नीति-अनीति को भूल जाता है।

बिगड़ती है जिस वक्त जालिम की नीयत,
नही काम आती दलील और हुज्जत ।

पिछली शताब्दियो मे मेवाड मे अनेक लडाइयां हुई हैं । विक्रम सम्वत् २००० मे हमने चित्तौड मे चातुर्मास किया । फिर ऊपर किले पर भी गये । चित्तौड के किले की कीर्ति विश्वविख्यात है । लोगो की जीभ पर आज भी यह शब्द गूंजते रहते हैं— 'गढ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढैया ।' चित्तौडगढ की शान वास्तव मे निराली है उसके कण-कण पर भारतीय वीरता की कथा अंकित है । उस किले की विशाल चहार दीवारी मे असख्य स्मृतियां घिरी हुई हैं । चित्तौडगढ अपनी कीर्त्ति की ही भांति बनावट मे भी विशाल है उसमे पानी के सदा प्रवाहित होते रहने वाले स्रोत हैं और बड़े-बड़े जलाशय हैं । उसके भीतर खेती-बाड़ी होती है और अच्छी खासी बस्ती भी अब बसी हुई है ।

किले पर जाकर हमने पद्मिनी का महल भी देखा । उस समय की घटना के बहुत से निशान अब भी बने हुए हैं । उस घटना के निष्कर्षस्वरूप मैंने एक लावनी लिख डाली थी । उसका प्रारम्भ यो है:—

यह गढ चित्तौड़ की कथा सुनो नर नारी ।
हुई सती पद्मिनी वीर धर्म की धारी ॥

रानी पद्मिनी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए सती हो गई ! उसने प्राणो का उत्सर्ग कर देना श्रेष्ठ समझा, पर धर्म का परित्याग करना उचित न समझा ! ऐसी धर्मपरायणा वीरांगनाएँ धन्य है !

उस जमाने मे भीमसिंहजी और रत्नसिंहजी किले पर राज्य करते थे। सीलोन जिसका पहले का नाम सिंहलद्वीप है वहा के राजा की पद्मिनी नाम की राजकुमारी थी। कहते हैं, वह इतनी सुन्दरी और सुकुमारी थी कि जब वह पानी पीती थी तो वह पानी उसके गले मे से दिखाई देता था। राजा ने उसके योग्य वर के विषय मे विचार किया और उदयपुर के राणाजी को अपनी कन्या देने का विचार स्थिर किया। एक बार राणा जगदीशजी गये। सिंहलद्वीप के राजा को पता चला तो वह भी अपनी कन्या के साथ वहां पहुँच गया। बातचीत तय हो गई। वह राणाजी के साथ मेवाड आया और वही शुभ लग्न देखकर पद्मिनी का विवाह कर दिया। पद्मिनी असाधारण सुन्दरी थी। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा फैलते-फैलते दिल्ली के सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी के कानो तक पहुँची। उसने सोचा—ऐसी सुन्दरी तो मेरी बेगम होनी चाहिए।

इस प्रकार विचारकर वह अपनी बडी भारी फौज के साथ चित्तौड पहुँचा। चित्तौड़गढ के पास ही, नीचे बहने वाली दो नदियो के बीच मे पडाव डाला। चारो ओर से किले को घेर लिया। छह माह तक पडाव डालने के बाद भी जब राणा ने आत्मसमर्पण नही किया तो बादशाह ने दूसरा उपाय खोजा। उसने अपने एक अनुचर को भेजकर कहलाया कि मैं न लड़ाई करने को आया हूँ और न दुश्मनी बढाने आया हू। मैं पद्मिनी की तारीफ सुनकर सिर्फ उसके दर्शन करने आया हूं। राणाजी सरल थे राजपूत बड़े सरल होते हैं। बादशाह के मन मे कपट था, मगर, निष्कपट राणा ने उस पर विश्वास कर लिया। उत्तर मे

कहला दिया किले मे चले आओ। बादशाह किले में गया। पद्मिनी के बराबरी के एक कांच पर प्रतिबिम्बित करके पद्मिनी का प्रतिबिम्ब बादशाह को दिखलाया गया। बादशाह उस प्रतिबिम्ब को देखकर पागल हो उठा। उसकी दबी हुई इच्छा और भी प्रबल हो उठी। उसने मन मे सोचा-पद्मिनी अगर मेरी बेगम न बनी तो मेरी जिन्दगी और बादशाहत सब बेकार है।

प्रकट मे उसने राणाजी से कहा-अब हमारे और आपके बीच में कोई झगडा नही रहा। हम दिल्ली लौट जाएँगे। आप बडे मेहरबान हैं, आदि। राणाजी बादशाह की बातो मे आकर उसे पहुँचाने के लिए उसके साथ चले। बादशाह एक, दो, तीन, चार, पाच, छह, और सात फाटक लांघ गया। इसी समय बादशाह ने सीटी बजाई और उसके छिपे हुए सिपाही दौडकर आ पहुंचे और राणाजी को पकड कर अपने कैम्प मे नजरबन्द कर दिया।

राजपूतो को जब यह समाचार मालूम हुआ तो वे इकट्ठे हुए। उन्होने बादशाह की धूर्तता पर आश्चर्य प्रकट किया और राणाजी को मुक्त करने के उपाय पर विचार किया। सबने एक निश्चय करके बादशाह के पास सदेश भेजा कि महारानी पद्मिनी आपके पास आने को तैयार है। किन्तु वह इज्जत के साथ आएँगी। वे पर्दानशीन हैं अतएव डोले मे बैठकर आएगी और सात सौ सेविकाए उनके साथ होगी। यह समाचार सुनकर बादशाह फूला न समाया। उसने कहा-या अल्लाह! क्या ही उम्दा सलाह! उसने उत्तर मे कहला भेजा-ठीक है, सब को आने दो।

सात सौ डोले तैयार हो गये। सब डोलो मे एक–एक राजपूत सरदार बैठ गया। प्रत्येक डोले को उठाने के लिए चार-चार राजपूत लगे। उनके हथियार उसी डोले मे रख दिये गये। जिसे पद्मिनी का डोला प्रकट करना था, उसमे वीरवर बादल और गोरा बैठ गये डोले रवाना हुए। बादशाह उन्हें देखता है और कहता है–या अल्ला ! क्या उम्दा सलाह !

बादशाह की फौज के सिपाही अपने--अपने काम मे लगे थे। उन्होने समझ लिया था कि दोस्ती हो गई है, अब कोई खतरा नही है। इस कारण वे निश्चिन्त और असावधान थे।

डोले फौज के पड़ाव मे आकर रुके। बादशाह को समाचार दिया गया–महारानी पद्मिनी आपसे मुहब्बत करने आई हैं, मगर एक बार अन्तिम रूप से अपने पति का दर्शन करना चाहती है। बादशाह ने यह बात कबूल कर ली। पद्मिनी का डोला राणाजी के कैम्प के पास ले जाया गया। सब नौकर-चाकर वहां से हटा दिये गये थे। गोरा-बादल ने राणाजी से कहा–आप इसमे बैठ जाइए। राणाजी उसमें बैठ गये। उसका जरीपोश पर्दा बदल दिया गया। किसी को इन सब बातों का भेद मालूम नही हुआ। जब राणाजी किले मे प्रविष्ट हो चुके तो डोले वाले ३५०० सरदारो ने अपने अपने हथियार सभाल कर बादशाह की फौज पर हमला बोल दिया। उधर मुसलमान कहने लगे–या अकबर बली ! इधर राजपूतो ने नारा लगाया–जय बजरंगबली ! जम कर लडाई हुई। राजपूतो ने जान लड़ा दी। आखिर बादशाह को अपनी फौज के साथ भागना पड़ा।

मगर बादशाह ने फिर दूसरी तैयारी करके हमला किया। राजपूतों ने डट कर उसका मुकाबिला किया। मगर उनके बहुत से सैनिक काम आ चुके थे। विजय की आशा नहीं रह गई थी। तब किला बन्द करके सोचा गया—अब किस उपाय का अवलंबन करना चाहिए ? राणाजी ने कहा--अब इतनी सेना नहीं बची है कि बादशाह की विशाल फौज का मुकाबिला किया जाय, मगर अपमान के साथ, कुत्तों की मौत मरना भी योग्य नहीं है। वीर क्षत्रिय के जीवन की सार्थकता शत्रु के साथ जूझते--जूझते मरने में ही है।

आखिर महल के पास एक बड़ा खड्डा खुदवाया गया और उसमें लकड़ियां भरवा दी गई। आग लगी और लपटें उठने लगीं। महाराणा ने जनाने महल में जाकर कहा—अब मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। तुम अपने धर्म की रक्षा करना चाहती हो तो इस अग्निदेवता की शरण लो।

महाराणा की बात सुनकर राजपूत रमणियों में वीरत्व का भाव जाग उठा। उन्होंने स्नान किया, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये, मस्तक पर कुकुम का टीका लगाया और बारी बारी से महाराणा को नमस्कार कर-करके वे उस धधकती आग में कूदने लगीं। इस प्रकार लगभग ४००-५०० रमणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। तत्पश्चात् महारानी पद्मिनी आई। उन्होंने राणाजी से कहा—मैं सदा के लिए आपसे विदा मांगती हूं। मुझे खेद है कि मेरी ही बदौलत आपको सर्वनाश का यह भीषणतम दृश्य देखना पड़ा है। मगर हमारा उत्सर्ग युग--युगान्तर तक मानव जाति स्मरण करेगी। और इससे

चित्तौड की कीर्ति और भी उज्ज्वल हो उठेगी। इसके बाद महारानी ने ईश्वर का स्मरण किया और कहा—

'अगन अब रखियो लाज हमारी।
हम सब आई शरण तिहारी॥'

हे ज्वालामुखी! क्षत्रियों को शान तुम्हारे हाथ है। मुझे अपनी शरण मे लीजिए। अब तुम्ही मेरी सखी हो, माता हो मैं तुम्हारी गोद मे विश्राम लूंगी।

इसी को कहते हैं जौहर! जौहर हो चुका तो वीर क्षत्रिय तलवारें ले-ले कर जूझने के लिए तैयार हो गये। वे दिल खोल कर लडे! मगर बादशाह की विशाल सेना के सामने आखिर कहां तक ठहरते। सब राजपूत काम आ गये। इसके बाद बादशाह जब पद्मिनी को पाने के लिए उसके महल की ओर चला तो उसे सैकडो वीर रमणियों की लाशें ही लाशें दिखलाई दीं। उसका दिल बैठ गया। हाथ मलता पछताने लगा कि मैंने कुरान और ईमान भी छोड़ा और पद्मिनी भी हाथ न आई!

आये थे गुल के वास्ते बस खार ले चले।
हिजरे में पदमनी वजू हार ले चले॥

निराश होकर बादशाह को दिल्ली लौट जाना पडा। यह घटना सं० १३६० की है।

भाइयों इस घटना का जिक्र करने का आशय यही है कि आप इसके प्रकाश में अपने कर्त्तव्य को देख सकें। भारतवर्ष ने

धर्म की रक्षा के लिए कैसे कैसे बलिदान दिये हैं ! राणा की जगह कोई कायर पुरुष होता तो सोच सकता था कि एक औरत के लिए क्यो सर्वनाश को निमत्रण दिया जाय ? मगर नहीं उन्होंने यह नहीं सोचा। जिन्दगी वैसे भी क्या हमेशा कायम रहने वाली है ? जो नर-नारी जिंदगी को बचाने के लिए अपने धर्म का परित्याग कर देते हैं, अपनी कुल मर्यादा को त्याग देते हैं और पतित हो जाते हैं वे क्या अमर हो जाते है ? नहीं, उन्हे भी मरना पडता है, कुत्ते की मौत मरना पड़ता है और उनके मरने के बाद भी लोग उनकी जिंदगी पर थूंकते हैं। मगर जो धर्म की रक्षा के लिए, देशहित के लिए या अपनी पवित्र मर्यादा की रक्षा के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग करते हैं, वे मरकर भी अमर हो जाते हैं। वे अपने जीवन के द्वारा एक सुन्दर और मधुर आदर्श खड़ा कर जाते हैं। उनकी जीवनी मनुष्य जाति के लिए जीवित पाठ होती है और लम्बे समय तक उससे पवित्र प्रेरणाएँ प्राप्त होती रहती हैं।

धर्म के प्रति इतनी दृढता जिसमे होगी, उसका जीवन भी धन्य होगा और मरण भी धन्य होगा ! जिसने धर्म को अत्यन्त मूल्यवान समझकर अपने प्राण धर्म—रक्षा के लिए समर्पित कर दिये, वह क्षर देह को त्याग कर भी अक्षर-देह के रूप मे सदैव जीवित रहता है। यह ऊँची भावना तभी आती है जब मनुष्य के हृदय मे सद्बुद्धि हो और विवेक हो। अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त करने के लिए शास्त्रों का पठन-पाठन, श्रवण, चिन्तन, मनन उपयोगी होता है। पूर्वज महापुरुषो के आदर्श चरित्रों का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। इसीलिए आज मैंने ज्ञान के सम्बन्ध मे ही प्रकाश डाला है।



क्षमा

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारम्,
गम्य न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे महाप्रभो ! आपको क्या उपमा दी जाय ? उपमा देने के लिए एक चन्द्रमा ही है । गणधर महाराज ने भी चन्द्रमा की उपमा दी है । यथा

चन्देसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ।।

यहा भगवान् को चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल बतलाया गया है ।

आचार्य महाराज कहते हैं कि हम आपको चन्द्रमा की उपमा दें मगर वह तो उदित होकर अस्त भी हो जाता है और आप तो नित्योदय हैं-आपके ज्ञान का प्रकाश सदैव एक सरीखा बना रहता है। चन्द्रमा पौद्गलिक अंधकार का ही नाश करता है, किन्तु आप मोह के महान् गहन अन्धकार का नाश करने वाले हैं। चन्द्रमा को राहु ग्रसित कर लेता है, जिससे उसकी चादनी दब जाती है। किन्तु आपके आड़े कोई नही आ सकता। आप की दिव्य प्रभा को रोकने की शक्ति राहु मे नही है। कभी-कभी बादल भी चन्द्रमा के आड़े आ जाते है और उसे ढंक देते हैं, किन्तु आपके ज्ञान को ढंकने वाला कोई नही है। इस प्रकार अत्यधिक कान्ति वाला आपका मुख-कमल, संसार मे एक अनूठे चन्द्र-बिम्ब के समान सुशोभित होता है। ऐमे भगवान् ऋषभदेव हैं, उनको ही मेरा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! भगवान् को चन्द्रमा की उपमा क्यो दी जाती है ? इसका कारण यह है कि जैसे चन्द्रमा शीततला प्रदान करने वाला है, उसी प्रकार भगवान् भी शीतलता—अनन्त शान्ति के प्रदाता हैं। शीतलता उच्च कोटि का गुण है। दुनियां किसी चीज को जलाने के लिए आग का उपयोग करती है, किन्तु भगवान कर्मो को भस्म करने के लिए शीतलता से काम लेते हैं। किसी को

मारने के लिए क्रोध की आवश्यकता होती है, मगर कर्म-शत्रुओं का समूल संहार करने के लिए क्रोध का भी संहार कर देना पड़ता है। शीतलता के द्वारा ही कर्मों का नाश किया जाता है। भगवान् ने असीम क्षमाभाव धारण करके ही समस्त कर्म शत्रुओं का विनाश किया है। क्षमा-शीलता मे बडी शक्ति है। शत्रु कितना ही गर्म होकर क्यो न आया हो कितनी ही वचन रूपी चिनगारियाँ छोड रहा हो और क्रोध की आग से तमतमा रहा हो अगर सामने वाला शीतलता पकड़ ले, अर्थात् शाति धारण कर ले तो उसे शान्त होना ही पडता है। कहा है—

> क्षमा शस्त्र करे यस्य, दुर्जन कि करिष्यति ?
> अतृणे पतितो वह्नि., स्वयमेवोपशाम्यति ।।

जिसके हाथ मे क्षमा का शस्त्र हो उसका कोई भी दुष्ट क्या बिगाड़ सकता है ? पानी मे पडी हुई आग अपने आप ही शान्त हो जाती है। आशय यह है कि क्षमा की प्रबल शक्ति के सामने दूसरी कोई भी शक्ति नही टिक सकती। जैसे पानी मे गिरी हुई आग अपने आप ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार क्षमा के सामने दुर्जनता-क्रोध आदि दुर्भाव–भी स्वत. नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्यान देने वाला थक जाता है, मगर गालिया देने वाला नही थकता। क्योंकि व्याख्यान देने वाला अकेला, बिना रुके बोलता है, जब कि गाली देने वाले आमने--सामने दो होते हैं। जब एक गाली देता है तो दूसरा गाली सुनता है और सुनते-सुनते विश्राम कर लेता है ! इस तरह बारी-बारी से विश्राम करते रहने से वे थकते नहीं हैं। थकावट उसे होती है जो अकेला ही, लगातार बोलता रहता है।

किसी छोटे से गांव मे एक बुढिया रहती थी। उस बुढिया को हरेक से लडने और गालियां देने की आदत पड़ गई थी। वह बिना किसी बिगाड किये ही, चलती हुई स्त्री को कह देती-तेरा चूड़ा कब फूटेगा?

बुढिया ऐसा क्यो लडाई-झगडा पसंद किया करती थी? कारण यही कि उसने वीतराग भगवान् की सुधामयी वाणी का मधुर स्वाद नही चखा था। अगर उसे एक बार भी प्रभु की वाणी का स्वाद मिला होता तो वह इस मंत्र को धारण कर लेती-

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई॥

अर्थात् मैं समस्त जीवों को अपनी ओर से क्षमा करता हूं और संसार के समस्त जीव मुझे क्षमा प्रदान करे। सब प्राणियों को मैं अपना मित्र समझता हू। किसी के साथ मेरा वैर भाव नही है।

भाइयों! इस महामंत्र मे ऐसी शक्ति है कि वडे से वड़े क्रोधी का भी क्रोध उसके प्रभाव से भाग जाता है। इससे चौदह पूर्वों का ज्ञान है। इस गाथा में केवलज्ञान पाने की तरकीव वतलाई है।

एक वार विहार करते-करते हम वीजापुर पहुंचे। वीजापुर निजाम-राज्य के अन्तर्गत है। अव तो वहां के शासन मे काफी परिवर्त्तन हो गया है और हो रहा है, मगर जव हम वहां गये थे, तव वहां सभी वडे-वडे अफसर-प्रायः मुसलमान ही थे। वीजापुर का नाजिम भी एक मुसलमान ही था। वहां २३-२४

घर ओसवालों के हैं जिनमे २२ घर तो सिर्फ संचेतियो के ही हैं। इनमे एक बडा लखपति सेठ था, जो आसपास मे मशहूर था। अदालती काम–काज मे इतना चतुर था कि वकील भी उसके सामने पानी भरते थे।

वहा के श्रावकों में कुछ अजीब-सी एकता थी कि यदि कोई मन्दिर मार्गी साधु जा पहुंचता तो स्थानकवासियो की तरफ के लोग, और यदि स्थानकवासी साधु पहुंच जाता तो मन्दिर-मार्गियों की तरफ के लोग, उससे प्रश्न पूछते और आखिर उसे जल्दी ही वहां से विहार करना पडता था। उस समय उधर आसपास के लोगो ने मुझ से कहा कि आप बीजापुर जाएं तो अच्छा रहे। जब मौका आ गया तो हम उस ओर गये और बीजापुर से चार कोस दूर एक गांव मे ठहरे। बीजापुर वालो को मालूम हुआ तो चार भाई मेरे पास आये। जहाँ एक भी नही आता था, वहां चार आये तो अच्छा शकुन ही हुआ! हम बीजापुर पहुचे। तब उन लोगो के श्रीपूज्य वे लखपति आये और बोले—महाराज! मुझे मुकदमे की पेशी पर बाहर जाना पड़ेगा तो आप दो दिन यही ठहरना।

ठाकुरजी के एक मन्दिर मे हमारा व्याख्यान कराया गया। व्याख्यान में कुछ हिन्दू भी आये और कुछ मुसलमान भी आये। उन्होने बतासे प्रभावना मे बाटे। मैंने सोचा—चलो यह भी शकुन अच्छा है! दूसरे दिन बहुत लोग आये। मैंने भी दिल खोल कर उपदेश दिया। फिर मैंने उन लोगो से पूछा—भाई, तुम्हारे गुरु कौन हैं? उन्होने कहा—कोई नही। तब मैंने उन्हें

समझाया कि बिना गुरु के निगुरे हो और फिर उन्हें गुरु-आम्नाय दी, सबको ज्ञान दिया।

एक बार नाजिम भी आया। उसने बतलाया कि हमारे कुरान मे यह लिखा है, वह लिखा है, फला पैरे में खुदा ने ऐसा कहा है वैसा कहा है। उसकी सब बाते सुनकर मैंने कहा—हमारे भगवान् ने ऐसा कहा है। और उसे 'खामेमि सव्वे जीवा' आदि गाथा पढकर सुनाई। जब इस गाथा का भावार्थ मैंने नाजिम को सुनाया तो वह बहुत खुश हुआ। पढा-लिखा आदमी था बात उसकी समझ में आ गई।

तीसरे दिन वह सेठजी भी आ पहुँचे। बोले--महाराज ! आपने यहां आकर क्या जादू की लकडी फेर दी है !

मैंने कहा—भाई, इन पर तो फेर दी है, अब तुम पर फेरनी है।

सेठजी—अजी, यहां तो किसी साधु को ठहरने भी नही देते थे और आपका तो चौमासा कराने की बाते लोग कह रहे हैं।

मैंने कहा—चौमासा हो या न हो, मगर मैं अपनी शक्ति भर तुम्हे भी नही डूबने दूंगा। तुम्हे भी तारने का प्रयत्न करूंगा।

उस वर्ष मनमाड़ मे चौमासा करने का वचन दिया था। वही चौमासा किया। उस सेठ को भी पूंछा वहा के लोग चौमासे मे पर्युषण के समय मनमाड आये। सबने मुंहपत्ती बांध बाध कर सामायिक की। इस प्रकार जो लोग साधुओ से दूर दूर रहते थे और धर्म से बचने की कोशिश करते थे, उन्हे भी धर्म की ओर

उन्मुख किया। आपको भी अपनी दुकान जमाने के लिए, ग्राहको को समझाना-बुझाना पडता है और हमे भी समझाना पड़ता है। परन्तु आपकी और हमारी दुकान मे अन्तर है। आपकी दुकान लालच की है और हमारी दुकान निर्लोभता की है। ग्राहको के लिए ही हम अपनी दुकान चलाते हैं। ईश्वर और धर्म के प्रति विश्वास उत्पन्न कर देना ही हमारा काम है, जिससे लोगो को आत्मा की तरफ ध्यान देने का अवसर मिले और वे अपने जीवन को कृतार्थ कर सकें।

हां, तो भाइयो! 'खामेमि सव्वेजीवा' बहुत ही सुन्दर गाया है। यह क्रोध का प्रभावशाली मंत्र है। इसके सामने क्रोध नहीं ठहर सकता।

बात उस बुढिया की थी। वह अपने गांव में चाहे जिससे लड़ती रहती थी। उसकी इस आदत के कारण घर वाले भी दुखी हो गये और गाव वाले भी परेशान हो गये। आखिर गांव वालों ने, उस गाव के ठाकुर साहब से, उसकी शिकायत की। कहा-हम खाते-पीते तो हैं, मगर यह बुढिया खून नही बनने देती। ठाकुर सा० ने उस बुढिया को बुलवा कर पूछा—डोकरी, तू क्यो सबसे लडाई-झगड़ा और गाली-गलौज करती रहती है? तब बुढ़िया ने उत्तर दिया-अन्नदाता, मेरी तो आदत ही ऐसी पड गई है!

ठाकुर साहब क्या करते! उन्होने कहा—गांव से किसको निकालू और किसे रक्खू! एक काम करो। इससे लडने की बारी बांध दो। यह बारी वाले घर जाकर लड़ लिया करेगी, जिससे ३०० घरो मे से २९९ को शान्ति मिलेगी। गाव वालो ने ठाकुर साहब की योजना स्वीकार कर ली।

लडाई की वारी वध गई। बुढिया वारी वाले घर में जाती और बहुत ही क्रोधजनक, एव हृदय-विदारक गालिया देना आरंभ कर देती। औरत दिखाई पडती तो कहती—तेरा धनी कव मरेगा राड कही की ! पुरुष सामने आता तो कहती—नकटे कट्टी के तेरा पूत मरे !

इस प्रकार लड़ते-लडते कुछ दिन बीत गये। यद्यपि उसके वचन-वाण असह्य थे और यदि दूसरा कोई ऐसे शब्द बोलता तो लोग उसकी खोपडी तोडे विना न रहते, मगर उस बुढिया की तरफ लोगों की उपेक्षा हो गई थी। प्रायः उसकी गालियों को सभी सुनी-अनसुनी कर दिया करते थे। इसी उपेक्षा की वदौलत बुढिया सकुशल जीवित थी।

एक दिन एक औरत की वारी आई। उसकी लड़की ससुराल से आई हुई थी। वारी का विचार करके वह औरत उदास हो रही थी। लड़की ने अपनी माता की उदासी का कारण पूछा। माता ने उसे कारण वतला दिया। कारण जान कर लड़की ने कहा—अच्छा, तुम कुछ मत वोलना। मैं उस बुढिया से लड़ लूंगी। मैं लडकर उसे शांत कर दूंगी, ऐसी शान्त कि फिर वह किसी से भी न लड़ सके ! मैं सदा के लिए लडाई बन्द करा दूंगी।

लडकी ने सुबह होते ही जवार की फुली मंगवाई और उसे गोद मे लेकर बैठ गई। उसी समय बुढिया आ धमकी और आने के साथ ही बोली—तेरा चूडा फूटे रांड ! तेरी मां कहां है ?

मगर लड़की चुप !

बुढिया गालियां देती जाती थी और उनके उत्तर में गालियां सुनना चाहती थी, मगर उस लडकी ने जीभ ही न खोली। बुढिया विना रुके आखिर कब तक बक-वक करती? कोई सामना करता तो वीच-वीच मे उसे विश्राम मिलता और नयी-नयी गालिया सूझती। मगर लडकी जबान नही हिला रही थी। जब गालियां देती-देती बुढ़िया थक गई, पसीना-पसीना हो गई तो मुस्करा कर लडकी ने कहा—'लो माँजी, फुली खा लो। और न खाना हो तो रहने दो।' यह कहकर और अगूठा दिखला कर लडकी फुली फांक गयी। बुढिया फिर चिढकर गालियो की वर्षा करने लगी। यद्यपि थकावट के कारण अब आवाज मे वह तेजी नही रह गयी थी, फिर भी धीरे-धीरे वह गालिया देने लगी।

इस प्रकार जब भी बुढिया गालियां देती-देती रुकती, तभी वह लडकी उसे चिढ़ा देती और चुपचाप वैठी रहती। आखिर बुढिया बोलते-बोलते इतनी घबरा गयी कि उसे चक्कर आ गया। वह जमीन पर गिर पड़ी।

जब काफी अर्सा हो गया तो बुढिया के घर वाले उसकी सार-सभाल करने आये। वे उठाकर उसे ले जाने लगे तो लडकी ने कहा—ठहरो, अभी मांजी को मत ले जाओ। अभी इनसे मुझे लडना है। मगर घर वाले नही माने और उसे ले जाने लगे। तब लड़की ने कहा—ले जाते हो तो भले ले जाओ, मगर कल फिर यहीं लडने भेज देना। कल भी मेरे ही घर की बारी है, क्योंकि आज लड़ाई पूरी नहीं हो पायी है।

दूसरे दिन सवेरा होते ही ठाकुर सा० का सिपाही बुढ़िया के घर पहुंचा। उसने कहा-माजो, आज भी तुम्हें कल वाली लड़की से ही लड़ने को जाना होगा। ठाकुर साहब का हुक्म है।

बुढ़िया ने घबड़ा कर कहा-मैं अब लड़ना ही नहीं चाहती! मुझे क्या मरना है ऐसी लड़ाई करके!

बुढ़िया के लड़के ने यह सुना तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। फिर भी उसने कहा-क्यों मा, लड़ोगी नहीं? बिना लड़े तुमसे कैसे रहा जायगा?

बुढ़िया-जिस लड़ाई से कोई सार नहीं निकले, उससे फायदा ही क्या है? अब मैंने लड़ना छोड़ दिया। ठाकुर साहब से भी कह देना, भले ही वे बारी तोड़ दें। अब मुझसे नहीं लड़ा जायगा।

लड़की ठाकुर साहब के यहां लाई गई। सब गांव वालों ने उसकी सहिष्णुता और चतुराई की बड़ाई की। सब ने उसे मान-पत्र दिया।

लड़की ने मानपत्र के उत्तर में कहा-यह ज्ञान मैंने भगवान् महावीर के चेलों से सुना है। उनका कहना है कि गाली के बदले गाली मत दो। कहा भी है.—

> जो तोको कांटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
> तोहि फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल॥

अगर कोई तेरे रास्ते में कांटे बिखेरता है तो तू बदले में, उसके रास्ते में कांटे मत बो। तू फूल बो। फूल बोने से तुझे फूल ही मिलेंगे और कांटे बोने वाले को फूल नहीं-त्रिशूल प्राप्त होंगे।

तात्पर्य यह है कि अपने प्रति बुराई करने वाले की भी तुम भलाई ही करो। भलाई करोगे तो भलाई होगी। बुराई करने वाला अपने किये का आप ही फल भोगेगा।

जोश खाके बिजली दरियाव के अन्दर पडी।
नुकसान कुछ होता नही खामोश बहतर चीज है ॥
महावीर का फर्मान है खामोश बहतर चीज है।
दिल पाक रखने के लिए, खामोश बहतर चीज है ॥टेर॥

भाइयो ! बिजली कड़ककर नदी या समुद्र मे पडती है, मगर उससे कुछ भी बिगाड़ नही होता। वह स्वयं बुझ जाती है और खत्म हो जाती है इसी प्रकार क्षमाधारी व्यक्ति के समक्ष क्रोध निष्फल हो जाता है।

खामोश खजर देख कर, दुश्मन को ताकत नही चले।
बिना काष्ठ के पावक जले, खामोश बहतर चीज है ॥

जिस वीर पुरुष ने क्षमा का शस्त्र धारण कर रक्खा है, उसके आगे शत्रु की कोई भी शक्ति काम नही आती। बिना ईंधन के आग अपने आप ही शान्त हो जाती है।

तप में ऋषि युद्ध मे हरि, श्रेष्ठ विसमरण दान में।
अरिहंत की यह वीरता, खामोश बहतर चीज है ॥

ठाणांगजी सूत्र मे चार बाते बहुत ऊंची बतलाई है। वह इस प्रकार हैं—(१) तपस्या मे ऋषि-मुनि सर्वश्रेष्ठ है। छह-छह महीने तक आहार-पानी नही लेते हैं। (२) युद्ध करने मे, शत्रुओ

का सामना करने मे, वासुदेव अपनी सानी नही रखते हैं। (३) दान देने मे वैश्रमण जाति के देवों की समनता कोई नहीं कर सकता। तीर्थंकर-भगवान एक करोड़ आठ लाख सोनैया प्रतिदिन वर्षी दान देते हैं। यह सोनैया लाने वाले यही देव हैं। (४) अरिहृत भगवान् क्षमा गुण में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके मुकाबिले मे कोई क्षमा नही कर सकता।

इस कथन से यह साबित है कि क्षमा करना श्रेष्ठ पुरुषों का काम है। तुच्छ मनुष्य क्षमा नही कर सकते। और भी कहा है:—

खामोशी कर श्रीराम ने, बनवास का रस्ता लिया।
गजसुकुमार ने केवल लिया खामोशी बहतर चीज है॥

रामचन्द्रजी दशरथ के सब से बड़े पुत्र थे और राजसिहासन के योग्य अधिकारी थे। मगर आपको मालूम ही है कि किस प्रकार कैकेयी ने भरत के लिए राजसिहान की मांग की। समस्त प्रजा रामचन्द्रजी के पक्ष में थी। लक्ष्मण भी राम के ही पक्ष मे थे। यहा तक कि भरत स्वयं राम के पक्ष में थे। फिर भी उन्होने राज्य प्रसन्नता के साथ भरत को सौंप दिया और खामोशी खाकर वनवास के लिए चल दिये। और भरत के चरित की उज्ज्वलता भी क्या कम है? वे स्वयं राम के पास भागे २ गये। राज्य उन्होंने लेना स्वीकार नहीं किया। तब विवश होकर राम को एक बार राज्य लेना पड़ा और फिर भरत को ही सौंप दिया। भरत, राम के सेवक बनकर राज्य संभाले रहे। भाई-भाई की गाढी प्रीति का यह कितना सुन्दर उदाहरण है? रामचन्द्र गद्दी के

अधिकारी होने पर भी प्रसन्नता पूर्वक वन को चल देते हैं! इसे कहते हैं खामोशी! यह है आदर्श क्षमा!

बोलो न ओ सपूतो! तुम क्या कहते हो? तुम भाई से लडोगे ता नही? अरे, एक भाई के ज्यादा और दूसरे भाई के कम चला गया तो क्या हो गया? लडना भाई का काम नही है, यह तो कमीने का काम है। महंगी चीज मुहब्बत है। हजार रुपये भाई के पास ज्यादा रह गये तो तुम्हारी तकदीर चली गई? उम्र भर प्रेम तो बना रहेगा! लड़ोगे तो उम्र भर बोलने से भी जाओगे। देखो, राम ने तो अयोध्या के राज्य को भी तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया! और आज क्या दृश्य दिखाई देते हैं? भाई-भाई के बीच बंटवारा होता है तो एक चक्की के भी दो पाट दोनो लेना चाहते है! कहा राम का महान् त्याग और कहां यह तुच्छ वृत्ति! राम कितने जबर्दस्त थे! उनकी क्षमा से कुछ तुम भी सीखो!

और उधर देखो क्षमा की साक्षात् मूर्ति गजसूकुमार मुनि को! एक ब्राह्मण ने कच्ची मिट्टी लाकर उनके मस्तक पर सिगडी सी बना दी और फिर उसमे दहकते हुए अगार भर दिये। फिर भी उस ब्राह्मण पर उन्होने लेश मात्र भी क्रोध नही किया। उसकी ओर आख उठाकर भी न देखा और क्षमा कर दिया। अपने प्राण-लेवा शत्रु को भी क्षमा कर देने के कारण उन्हे तत्काल केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। और—

खामोशी से राजा परदेशी, स्वर्ग के अन्दर गया।
खंधक मुनि मुक्ति गये, खामोशी बहतर चीज है॥

राजा प्रदेशी के विषय में, संक्षिप्त रूप से, पहले कहा जा चुका है वह पहले घोर नास्तिक था। पंचेन्द्रिय प्राणियों के खून से उसके हाथ रंगे रहते थे। वह आत्मा और परमात्मा को नहीं मानता था। धर्म पर उसका विश्वास नहीं था। एकदम निर्दय था और पापाचार मे मग्न रहता था। मगर केशी स्वामी के सत्संग से उसे बोध हुआ। उसने धर्म के स्वरूप को समझा। आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया। हृदय मे दया का आविर्भाव हुआ। उसकी सारी जीवन चर्या बदल गयी। वह दयालु और दानी बन गया। मगर अन्तिम समय में उसकी रानी ने उसे जहर दे दिया। मगर उसने तनिक भी क्रोध नहीं किया। इस कारण उसके घोर पातक दूर हो गये और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई!

भाइयों! जैनशास्त्रों में एक से एक उत्तम क्षमा के उदाहरण मौजूद है। खंधक मुनि का क्षमाभाव क्या साधारण है? उनकी कथा को पढ़ने पर फौलाद का दिल भी पिघल जाता है! हृदय में कंपकपी होने लगती है क्षमा का ऐसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता।

खंधक मुनि राजकुमार थे। विचरते २ वे अपने बहनोई के राज्य मे पहुँचे। उसने किसी प्रकार भ्रम में पड़कर जीते जी उनकी खाल उतरवा ली। चाण्डाल उन्हे श्मशान मे ले गया। उसने खाल उतारने की बात कही और अपनी विवशता के लिए क्षमा मागी। तब खंधक मुनि को पता चला कि मेरे शरीर की चमड़ी उधेड़ी जाने वाली है। मगर वे तनिक भी भयभीत या कुपित नहीं हुए। उन्होंने चाण्डाल से यही कहा - तपस्या करने के कारण मेरा मांस सब सूख गया है। चमड़ी हाड़ो से चिपक गई

है। कोई अच्छा औजार न होगा तो सारी चमड़ी उधेड़ने में तुम्हें बहुत कष्ट होगा !

कितनी दयालुता ! कैसे लोकोत्तर क्षमा है ! भाइयों ! तुम गजमुकुमार और खधक मुनि के उपासक हो, अनुयायी हो ! इन महात्माओं के चरित से कुछ सीखो। यह दिव्य विभूतियाँ सौभाग्य से ही तुम्हे मिली हैं। खधक मुनि अपने आलौकिक क्षमाभाव के कारण अजर-अमर पद के अधिकारी बने।

ज्ञान ध्यान तप दया और, सर्व गुण की खान है।
तारिफ फैले मुल्क मे, खामोशी बहतर चीज है ॥

क्षमा समस्त गुणों की खान है। जब तक हृदय में क्षमा नही आती तब तक मनुष्य न ज्ञान सीख सकता है, न शुभध्यान धारण कर सकता है न सच्ची तपस्या कर पाता है और न दया हा कर सकता है। जिसके अन्त करण मे क्रोध की ज्वालाए उठती रहती हैं, गुरु के तनिक–से तीखे वचन सुनकर जो कुपित हो जाता है, वह नवीन ज्ञान का उपार्जन किस प्रकार कर सकता है ? इसी प्रकार चित्त क्रोध से क्षुब्ध हो रहा हो वह धर्मध्यान भी नही कर सकता। ऊपर से ध्यान की मुद्रा बना लेना दूसरी बात है, मगर चित्त शान्त हुए बिना सच्चा ध्यान नही होता। क्षमा के अभाव मे तपस्या और दया भी पूरी तरह सफल नही होती। आन्तरिक तप जिससे आत्मशुद्धि होती है, क्रोध की मौजूदगी मे सभव ही नही है और दया तथा क्रोध परस्पर विरोधी हैं। जहाँ क्रोध होगा, दया नही रहेगी और जहाँ दया होगी, वहाँ

क्रोध नहीं होगा। इस प्रकार विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि क्षमा ही समस्त गुणों की खान है।

जिसका अन्तःकरण क्षमा से विभूषित होता है, उसकी कीर्ति सारे संसार में फैल जाती है। वह अपने आनन्द के लिए ही क्षमा का सेवन करता है, कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर नही, फिर भी उसकी कीर्ति फैल ही जाती है। फूल अपनी सुगन्ध फैलाना नही चाहता, फिर भी अगर उसमे सुगंध है तो वह विना फैले कैसे रह सकती है ?

भाइयों! क्षमा एक महान् गुण है। योद्धा जब युद्ध भूमि में संग्राम के लिए जाता है तो वह बख्तर पहन लेता है। बख्तर पहन लेने पर शत्रु के शस्त्राघात उसका कुछ बिगाड़ नही कर पाते। क्षमा आत्मा का बख्तर है जिसने इस बख्तर को धारण कर लिया उसका कोई कुछ बिगाड नही कर सकता। विरोधियो के वाग्बाण उस पर असर नही कर सकते प्रहार उस पर निरर्थक साबित होते हैं। उसका चित्त किसी भी आघात से क्षुब्ध नहीं होता। विरोधी झल्लाता है चिल्लाता है, बकवाद करता है और आघात करता है पर क्षमावीर पुरुष उसके सामने मुस्कराता है। वह अपनी सरल और निर्दोष मुस्किराहट से उसके समस्त प्रयत्नों को बेकार बना देता है।

क्षमा समर्थ और असमर्थ, सभी के लिए उपयोगी है। सभी उसका आश्रय ले सकते है। कहा भी है:—

क्षमा बलमशक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा।
क्षमा वशीकृतिर्लोके, क्षमया किं न सिद्धयति ? ॥

क्षमा बलहीनों के लिए बल है और सबलों का आभूषण है। क्षमा संसार मे सच्चा वशीकरण मंत्र है। कितना ही प्रचंड शत्रु क्यो न हो, क्षमा के द्वारा शीघ्र ही उसे वश मे किया जा सकता है। चण्डकौशिक विषधर कितना भयानक था? उसके भय के कारण लोगो ने उधर से आना-जाना बन्द कर दिया था। मगर भगवान् महावीर जान-बूझ कर उसके पास गये। विषधर फुंकारता हुआ उनके सामने आया। मगर क्षमा की प्रत्यक्ष मूर्ति भगवान् दयाभाव के साथ उसकी ओर देखते रहे। अन्त में परिणाम क्या आया? वह भगवान् के वश मे हो गया। यह क्षमा का ही प्रताप था। क्षमा सचमुच आलौकिक वशीकरण है।

आगे कहा है—'क्षमया किं न सिद्धयति' अर्थात् क्षमा के द्वारा कौन सी सिद्धि प्राप्त नही हो सकती? क्षमा सिद्धियो का भण्डार है। क्षमा भाव धारण करने मे जब मुक्ति भी सुलभ हो जाती है तो अन्य सिद्धियो की बात ही क्या है? एक नीतिकार ने क्षमा की महिमा बतलाते हुए कहा है:—

नरस्याभरणं रूपं, रूपस्याभरणं गुण ।

गुणस्याभरण ज्ञानं, ज्ञानस्याभरण क्षमा ॥

मनुष्य कितना ही सोना अपने शरीर पर लाद ले और चाहे हीरा, मोती, पन्ना आदि जवाहरात को धारण करले, यदि उसमें नैसर्गिक सुन्दरता नही है तो वे सब आभूषण व्यर्थ है। आभूषण सौन्दर्य उत्पन्न नही कर सकते, भावना के अनुसार सौन्दर्य को बढ़ा सकते है। वास्तव मे मनुष्य का सच्चा आभरण

तो उसका सहज सौन्दर्य ही है। जिसमे सुन्दर रूप नही है, आभूषण उसे सुरूप नहीं बना सकते।

आजकल विशेषतया राजपूताना मे आभूषणों का बहुत अधिक चलन है। लोग समझते हैं कि आभूषण पहनने से सुन्दरता आ जायगी। यही नही आभूषण श्रीमंताइ प्रकट करने के भी साधन समझे जाते हैं। पर आभूषणो की इस प्रथा के कारण कितने अनर्थ होते हैं और समाज मे किस-किस प्रकार की विकृतिया आ घुसती हैं, इस ओर बहुत कम लोगो का ध्यान जाता है। आभूषणो ने न जाने कितने बालको के प्राण लिये हैं! न मालूम कितने डाके डलवाये हैं। नैसर्गिक सौन्दर्य को विकृत बना देने के सिवाय और इनसे लाभ ही क्या होता है? अतएव जब कवि यह कहता है कि मनुष्य का सच्चा आभरण उसका रूप ही है तो वह गलत नही कहता।

किसी मनुष्य मे रूप तो हो, मगर गुण न हो तो उसका रूप भी शोभा नही पाता। पलाश का पुष्प देखने मे बहुत सुन्दर होता है, परन्तु सुगंध उसमे लेश मात्र भी नही होती। अतएव लोग उसका वैसा आदर नही करते जैसे गुलाब के फूल का करते हैं। सारांश यह है कि रूप का मूल्य गुणो के कारण है।

'गुणस्याभरणं ज्ञान' कोई पुरुष गुणवान भी हो परन्तु ज्ञान हीन हो तो उसके गुण चमक नही पाते। गुणो के साथ ज्ञान होना चाहिए। अज्ञान समस्त गुणो को मलीन कर देता है। इस प्रकार रूप की शोभा गुणो से है और गुणो की शोभा ज्ञान से है। साथ ही 'ज्ञानस्याभरणं क्षमा' अर्थात् ज्ञान की शोभा क्षमा है।

ज्ञानवान् होकर भी अगर कोई क्षमाहीन है, बात-बात मे आग बबूला हो जाता है तो उसका ज्ञान शोभा नही पाता। क्षमा से ही ज्ञान सुशोभित होता है।

भाइयो! अपने जीवन को उज्ज्वल बनाना चाहते हो, ससार मे अपने यश की खुशबू फैलाना चाहते हो ज्ञान, ध्यान, तपस्या और दया आदि सद्‌गुणो को प्राप्त करना चाहते हो और उन्हे पूर्ण सफल और सुशोभित करना चाहते हो तो क्षमा धारण करो। क्षमाभाव धारण करने से आपको तत्काल ही अपूर्व शक्ति का अनुमान होगा। आपके चित्त का सारा क्षोभ दूर हो जायगा। अन्त करण निर्मल बन जायगा। सब प्रकार की आकुलता मिट जायगी। आपका जीवन शान्त और सुखी बन जायगा।

शान्ति कहो चाहे क्षमा और गम भी इसका नाम है।
दोस्त जहा तेरा बने, खामोशी बहतर चीज है॥

क्षमा के अनेक नाम हैं। उसे शान्ति कहो, उपशम कहो या गम कहो, एक ही बात है। जो क्षमावान् होते है। उनके सब दोस्त बन जाते हैं। कल्पना करो, कभी आपने किसी का कोई बिगाड कर दिया। जिसका बिगाड़ किया है, वह क्रुद्ध होता है, अंटसट बक रहा है, गालियां देता जाता है। ऐसे अवसर पर अगर तुम चुपचाप बने रहो तो दूसरे लोग तुम्हारी तरफदारी करने के लिए बोलेंगे। कहेगे—बेचारा सीधा आदमी है, कुछ बोलता नही है, अपनी गलती को मजूर कर रहा है। रही गलती होने की बात, सो तो इन्सान से हो ही जाती है। जो बिगाड़ हो गया सो हो गया। अब खामोश हो जाना चाहिए। इतना कहने

पर सामने वाला भी अगर थोडा-बहुत भी सभ्य होगा तो चुप हो जायगा। ऐसा न हुआ और बकवाद करता ही रहा तो लोग भी उबल पड़ेंगे और उसे डाटने--फटकारने लगेंगे। कहेंगे चुप रहो, लप--लप मत करो। शर्म नही आती है तुझे! आदि आदि।

कहिए यह किसका प्रभाव है? रास्ता चलते आदमियो को किसने एक के पक्ष मे और दूसरे के विपक्ष में कर दिया? क्षमा ने ही!

इसके विरूद्ध अगर दोनो समान रूप से बोलते होते और एक दूसरे को गालियाँ देते होते तो दर्शको की भीड किसी का पक्ष न लेती! दोनों की लडाई का तमाशा देखते, हंसते और दोनो को बेवकूफ बनाते।

भाइयो! क्षमा में बड़ा मजा है। रबड़ियाँ मावे में और कीटी की चक्कियो में जितना मजा नही है, उतना क्षमा मे है। इसी कारण संसार के समस्त धर्मों का सार यही है कि क्षमा करो। क्षमा को सब शास्त्र और सब धर्म समान रूप से उत्तम मानते हैं। जैन धर्म मे जो दस यतिधर्म बतलाये है, उनमे सब से पहले क्षमा को ही स्थान दिया गया है।

> पाप होवे भस्म जैसे शीत से सब्जी जले।
> चौथमल कहे ऐ दिला, खामोशी बहतर चीज है॥

भाइयो! जैसे अग्नि से सूखा घास जल जाता है और पाला पडने से खेती एकदम जल जाती है, इसी प्रकार क्षमा से समस्त पाप भस्म हो जाते हैं।

क्षमावीरो के कुछ उदाहरण अभी-अभी मैं कह चुका हूं। उन उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि क्षमा पापों को नष्ट करने के लिए दिव्य ज्वाला के समान है। इसलिए अगर आप निष्पाप बनना चाहते हैं तो क्षमा के विमल और शान्त सरोवर मे गोते लगाइए।

मेरा काम आपको दया क्षमा, सत्य, दान आदि के रंग में रंगना है, अगर आप असली मलमल होओगे तो आपके ऊपर असली रग चढ़ेगा। पाच-दस साल के पुराने मैले टाट के टुकड़े पर रंग चढ़ना मुश्किल होता है। अगर बार-बार शिक्षा सुनने पर भी हृदय पर असर न हो तो उसे टाट का टुकडा ही समझना चाहिए। असली स्वच्छ मलमल पर तो सद्गुणों का रंग चढ़ना ही चाहिए। क्षमा की महिमा अमित है। प्रत्यक्ष में ही उसकी उपयोगिता समझी जा सकती है। यह जानकर आप क्षमा धारण करेंगे तो निश्चय ही आपको आनन्द की प्राप्ति होगी।

जम्बूकुमार की कथा:—

जम्बूकुमार का चरित आप कई दिनों से सुन रहे हैं। उनकी पत्नियो ने उन्हे कितने ही अनुचित शब्द कहे, कितने ही आरोप उन्होने लगाये, किन्तु जम्बूकुमार को तनिक भी क्रोध नही आया। वे आदि से अन्त तक एकदम शान्त रहे। परिणाम यह हुआ कि उस वाद-विवाद में उनकी पूर्ण विजय हुई। आठों स्त्रियाँ उनके साथ ही दीक्षा लेने को तैयार हो गईं।

जम्बूकुमार के माता-पिता ने आठों बहुओं के माता-पिता को भी बुलवा लिया। वे सब आकर जम्बूकुमार को दीक्षा न लेने

के लिए अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा-वत्स ! मान जाओ। बुढ़ापे मे हमारी लाज रक्खो हमे निराधार करके मत जाओ। कितनी आशाए लेकर हमने तुम्हारा पालन-पोषण किया है ! तुम्हे देख देख कर न जाने कितने मसूबे बांधे हैं ! उन सब पर पानी मत फेरो। हमें निराशा के गड़हे मे गिरा कर मत जाओ।

उधर बहुओं के माता-पिता कहते हैं—जमाईजी ! आपके दिमाग पर यह क्या सनक सवार हुई है ? यह भी कोई दीक्षा लेने का अवसर है ? कल विवाह और आज दीक्षा ! ऐसा तो कभी किसी ने नही किया ! ऐसी जल्दबाजी करना योग्य नही है। आज ही जगत् मे प्रलय होने वाला नही है साधु भी रहेगे आप भी रहेगे, थोड़े दिनो बाद दीक्षा भी ले सकेंगे। फिर यह उतावल क्यो करते हैं ?

जम्बूकुमार ने कहा गुरुजनो ! मैं इस सम्बन्ध मे बहुत कह चुका हू। बार-बार किसी बात को दोहराने से कोई लाभ नही है। जीवन का कुछ भी भरोसा नही है। भले ही जगत् में प्रलय न हो, फिर भी कोई दावा नही कर सकता कि मेरी जिन्दगी कल समाप्त नही हो जायगी ! क्षण भर के लिए भी तो जीवन पर भरोसा नही किया जा सकता ! ऐसी स्थिति मे धर्म का आचरण करने मे प्रमाद करना क्या योग्य है ? आखिर दीक्षा लेने मे हानि क्या है ? मानव जीवन का उद्देश्य क्या भोगोपभोगों की कीचड में फंसना ही है ? क्या अपने कुटुम्ब-परिवार के रूप मे थोडे से लोगों को अपना समझना और दूसरो को पराया समझना ही सच्चाई है ? संसार मे कोई भी जीव ऐसा नही है जिसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित न हो सका हो फिर पुराने

अर्थात् पूर्वजन्मो के आत्मीय जनों को उपेक्षा करना कहाँ तक उचित है ? गृहस्थी मे आरम्भ-समारभ किये बिना काम नहीं चलता। आरम्भ समारम्भ करने मे हिंसा होती है और जिन जीवो की हिंसा होती है, वे वही पूर्वजन्मो के रिश्तेदार या आत्मीय जन ही तो है ! मैं उनके प्रति निर्दय व्यवहार नही कर सकता और इसीलिए पूर्ण रूप से अहिंसाव्रत का पालन करना चाहता हूं। आप इसे क्यो अनुचित समझते हैं ? भोगोपभोगो में आसक्त रह कर कीडो-मकोडो की तरह मर जाना जीवन का आदर्श नही है। जीवन की सार्थकता इस बात मे है कि मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करे। अतएव आप मोह के वशीभूत होकर सकल्प-विकल्प मत कीजिए। हम सब ने किसी बुरे काम को करने का संकल्प नही किया है। बड़े-बडे ज्ञानी पुरुषों ने और महान् महिलाओ ने जिस मार्ग पर चल कर स्व पर का कल्याण किया है, उसी मगल-पथ पर चलना हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी।

हां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आपकी पुत्रियो पर मैंने किसी प्रकार का दबाव नही डाला है उन्हे सिर्फ वस्तु-स्थिति समझाई है। वे अपने सम्बन्ध मे स्वयं निर्णय कर रही हैं। अब भी वे जो चाहे, निर्णय करें। मुझे उसमें कोई आपत्ति नही होगी।

फिर उन्होंने अपनी लडकियों की ओर लक्ष्य करके कहा—बेटियो ! तुम्हें देख देख कर हमारा खून सूख रहा है ! विवाह के समय तुम्हारे पैरो मे लगा महावर भी अभी सूख नही पाया है। औरतुम दीक्षा लेने को तैयार हो गई हो ! तुम्हारी विवशता को तुम्हारे अन्तःकरण की वेदना को, तुम्हारे दुःख-दर्द को हम भली-

भांति समझ सकते हैं। जम्बूकुमार तुम्हारे प्रति जैसा व्यवहार कर रहे हैं, उससे तुम्हे निराश होना स्वाभाविक है। इसी दुःखी के कारण तुम दीक्षा लेने को तैयार हुई हो। फिर भी तुम्हारा मार्ग ठीक नही है। तुम इतनी निराश मत होओ और संयम के बीहड मार्ग पर चलने का आग्रह मत करो। ऐसा करने से हम सब की जिंदगी दु:खमय हो जायगी!

"मगर आपके माता-पिता जो आंसू बहा रहें है उन्हें भी आप देखते हैं या नही? क्या उनके आंसुओं की अपेक्षा करना योग्य है? इस प्रकार कहने पर जम्बूकुमार बोले—यह जीव अनादि काल से भव भ्रमण कर रहा है। अनन्त बार इसने मनुष्य जन्म भी पाया है। जितनी बार इसने मनुष्य भव पाया उतनी ही बार इसकी मृत्यु हुई और उतनी ही बार इसने उस भव के माता, पिता, भाई, पुत्र, पत्नी आदि कुटुम्बीजनों को रुलाया है। अगर उनके आंसुओं को इकट्ठा किया जाय तो विशाल समुद्र भी उनके सामने तुच्छ-सा दिखलाई पड़ेगा। जो लोग भविष्य में संसार में रचे पचे रहेंगे उन्हें भी बार-बार मृत्यु के चुंगल में आना पड़ेगा और अपने कुटुम्बियो को रुलाना पड़ेगा। उन आसुओं से भी दूसरा समुद्र बन सकेगा। क्या मैं ऐसा ही करूं? अनन्त जन्म मरण करके अनन्त माता-पिताओ को रूलाना मुझे प्रिय नही है, इस कारण मैं मृत्यु को ही जीत लेने का प्रयत्न करना चाहता हू? पुत्र की मृत्यु होने पर माता-पिता रोते हैं, मगर मृत्यु को जीत लेने का प्रयत्न करने पर और अजर-अमर बनने की कोशिश करने पर उन्हे क्यों रोना चाहिए?

'जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु.' जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु होना निश्चित है। यह शरीर सदा स्थायी नहीं रह सकता। जहाँ संयोग है वहां वियोग है। इस अटल सत्य को कौन मिथ्या बना सकता है ?

ऐश के सामान तेरे सब पड़े रह जाएँगे
यार ! तेरी लाश पर रोते खड़े रह जाएँगे ।।

निश्चित है कि एक दिन वह आयगा जब तेरी लाश पड़ी होगी और तेरे सब प्रेमी उसके आसपास खड़े हुए होंगे।

माताजी और पिताजी ! यह बात बड़ी कठोर है, परन्तु इतनी सच्ची है कि कदापि अन्यथा नहीं हो सकती। प्राणी मात्र की मृत्यु अनिवार्य है। वह आयगी और अवश्य आयगी। टल नहीं सकता। एक दिन आपसे मेरा विछोह अवश्य होने वाला है। फिर क्यों आप मोह के वशीभूत हो रहे हैं ? वारम्वार इस वियोग वेदना को भुगतने की अपेक्षा इसकी जड़ को काट फेंकना ही क्या उत्तम कार्य नहीं है ? आप विवेकवान् हैं और धर्म के ज्ञाता हैं तो अपने जीवन में उसका उपयोग क्यों नहीं करते ? आशा और तृष्णा तो अक्षय हैं। उनकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। भलाई इसी में है कि उनको समूल उखाड़ कर फेंक दिया जाय !

वियोग-वेदना का मूल कारण संयोग है, अतएव संयोग से ही छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए। 'संजोगा विप्पमुक्कस्स' भगवान् का यह वचन है। देखिए न, मनुष्य जब मर जाता है तो कुटुम्बीजन भले रोते रहें, विलाप करते रहें, मगर वे

साथ नही दे सकते। साथ देना तो दूर की बात रही, उन्हे यह भी पता नही चलता कि मृतात्मा किधर गया है ? मृतात्मा अकेला ही जाता है। उसने पाप का आचरण किया है तो नरक में जाकर घोर वेदनाएँ भोगता है और यदि धर्म पुण्य किया है तो स्वर्ग के सुख पाता है। न कोई दुःख मे हिस्सा ले सकता है न सुख मे ही। इसके लिए एक प्रत्यक्ष उदाहरण लीजिए। एक आदमी बाजार से तोरई खरीद कर लाया। उसने तोरई छील कर गट्टे बनाने चाहे। ऐसा करते समय हाथ मे चाकू लग गया। और उंगली कट गयी। उसने उंगली पर पट्टी बाँध ली। उधर तोरई का शाक पक कर तैयार हुआ। घर के सब लोग खाने बैठे और सबने थोड़ा-थोड़ा शाक खाया।

एक-दो दिन बाद उंगली पक गयी और वेदना होने लगी। वह रोता है चिल्लाता है और कहता है—शाक तो सबने बांट २ कर खा लिया और इस दर्द को कोई नही बाँटता।

आप ऐसे प्रसंग पर क्या करेगे और क्या कहेगे ? क्या आप में से किसी मे चाहने पर भी उसकी वेदना को बाँट लेने की शक्ति है ? अधिकांश तो यही कहेगे कि सावधानी से काम क्यो नही किया ? वह कहता है—मैं सभी के लिए शाक बना रहा था अतः सभी लोग इस दर्द को बांट लो ! तब आप यही कहेगे कि तू पागलपन की बाते करता है ! कही बीमारी का भी बंटवारा होता है।

यही बात कर्मों के फल के सम्बन्ध मे है। कर्मों का फल, अकेले करने वाले को ही भोगना पड़ता है। उसमे साझेदारी नही हो सकती। एक आदमी सारे कुटुम्ब के लिए झूठ, बोलता

है हिंसा करता है, चोरी-डकैती करता है, किन्तु इन कुकर्मों का फल भोगने के लिए कोई साथ नही चलता। वहा न तेरी गुलाबबाई हिस्सेदार होगी और न तेरे भंवरजी ही साथ देंगे। अकेले को ही अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। धनवानों को लूट-लूट कर सम्पत्ति से घर भर देने वाला डाकू जब पकडा जाता है तो उसे अकेले को ही कारागार आदि की सजा भोगनी पडती है। लूटी हुई सम्पत्ति से मौज उडाने वाले लोग उसकी सजा का हिस्सा नही लेते। इस दुनिया का सयोग इतना कच्चा है! इसे त्याग देने मे विषाद होने का क्या कारण है?

पिताजी! माताजी! गुरूजनो! आप वास्तविकता का विचार कीजिए। कल्पना की जंजीरो को तोड कर परमार्थ की ओर ध्यान दीजिए।

आप कहते हैं कि आपको निराधार करके मैं न जाऊं। मगर धृष्टता के लिए क्षमा कीजिए। विचार कीजिए कि जगत् मे कौन किसका आधार बन सकता है? मगध के प्रतापी सम्राट श्रेणिक ने अनाथी मुनि का नाथ बनने की इच्छा प्रकट की थी। तब मुनि ने उन्हे क्या कहा था? मुनि ने साफ शब्दो मे बतलाया था कि—

अप्पणा वि अणाहोऽसि, सेणिया मगहाहिवा।
अप्पणा अणाहो सन्तो, कस्स नाहो भविस्ससि॥

उत्त अ. २० गा. १२

मुनिराज कहते हैं—हे मगध के अधीश्वर! तू तो स्वयं अनाथ है। तू मेरा नाथ कैसे बन सकता है? जो स्वयमेव अनाथ है वह दूसरे का नाथ कैसे बनेगा?

मुनि की स्पष्टोक्ति सुनकर श्रेणिक चकित रह गये। सोचने लगे-मेरे पास विशाल सेना है, हाथी, घोड़े सिपाही, कुटुम्ब परिवार सभी कुछ है। अक्षय भडार है। फिर मुनि मुझे अनाथ क्यों कहते हैं? तब मुनि ने राजा के संशय को दूर करने के लिए अपनी जीवनकथा सुनायी। उससे स्पष्ट हो गया कि संसार की कोई भी वस्तु किसी के लिए शरणभूत नही है। कोई किसी के दुःख को मिटा नही सकता। अतएव मुनि ने प्रतिपादन किया—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य, सुहाण य, ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥
उत्त. अ. २० गा. ३७

आत्मा स्वयं, अपने सुख दुःख का जनक है और आप ही उनका विनाश कर सकता है। सन्मार्गगामी आत्मा ही अपना मित्र है और उन्मार्गगामी आत्मा ही अपना शत्रु है।

यही भगवान् महावीर का उपदेश है कितनी जाज्वल्यमान यह वाणी है! इसमें लोकोत्तर तेज भरा है। भगवान् कहते हैं कि किसी का अवलम्बन नहीं लेना है, सबको स्वावलम्बी बनना है। परावलम्बन झूठा है और स्वावलम्बन सच्चा है। परावलंबी अन्त में निराश और दुखी होता है।

जम्बूकुमार कहते हैं-मैं आपको अपनी ओर से क्या शिक्षा दे सकता हूं? भगवान् की इस वाणी पर आप विचार करें। श्रेणिक सरीखे सम्राट भी जब किसी के अवलम्बन नही बन सकते, तो मैं नाचीज आपका आधार कैसे बन सकता हूं? इस तथ्य पर आप विचार करेंगे तो अनिर्वचनीय आनन्द के भागी होंगे।

और देखिये, जब सायंकाल होता है तो नाना दिशाओं और नाना प्रदेशो से भांति-भांति के पक्षी आकर वृक्ष पर विश्राम करते हैं और ची-ची करके शान्त हो जाते हैं। मगर ज्यों ही सवेरा होता है, एक-एक करके सब फुर्र हो जाते हैं। किसी भी पक्षो का पता नही चलता कि उसके साथ विश्राम करने वाले पक्षी कहाँ, किस ओर उड़ गये हैं।

संसार में कुटुम्ब परिवार की स्थिति भी यही है। जब जीवन की संध्या आती है तो भाई कही जाता है, मां कही जाती है, पति कही और पत्नी कही चली जाती है। संसार की ऐसी स्थिति मे कौन विवेकवान् उलझना चाहेगा? अतएव मैं आप से अनुरोध करता हू कि जिनदेव के कहे हुए दयामय धर्म का अनुसरण कीजिए। सुधर्मा स्वामी जैसे गुरु के चरणों का आश्रय लीजिए। यह अनमोल अवसर है। इसे मोह माया मे उलझ कर खोना अच्छा नहीं है।

भृगु पुरोहित के दो लडके दीक्षा लेने को तैयार हुए तो स्वयं पुरोहित और पुरोहितानी ने भी दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया था। उसी प्रकार आप सब भी साधु बनने के लिए तैयार हो जाइए।

अवसर देखकर जम्बूकुमार की आठो पत्नियों ने भी जम्बूकुमार के कथन का समर्थन किया। उन्होने अपने-अपने माता-पिता से त्याग मार्ग अपनाने का आग्रह किया। उन्होने कहा—संसार के सब सम्बन्ध काल्पनिक हैं! यह आत्महित मे बाधा डालने वाले हैं! परमात्मा के साथ प्रीति जोड़िये। इसी मे आप का परम कल्याण है।

यह सब संवाद सुनकर जम्बूकुमार के माता-पिता और आठों सास-ससुर भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। जो समझाने चले थे, वे स्वयं समझ गये!

समस्त वायुमंडल सहसा परिवर्तित हो गया। अब तक जो विषाद का वातावरण फैला था, हर्ष में परिणत हो गया। जम्बूकुमार के पिता ने कहा-जिसके घर में जम्बू जैसा भाग्यवान् पुत्र और ऐसी भाग्यवती पुत्र वधुएँ हों, उसके घर में आनन्द ही आनन्द क्यों न होगा?

४-१०-४८ }





थें मांयलाने समझाओ

स्तुति :

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

हे महाप्रभो ! आपको किस वस्तु की उपमा दी जाय ? हमारे पास उपमा देने योग्य एक वस्तु सूर्य है वही सबसे अधिक तेजस्वी और प्रकाश का पुंज है, किन्तु विचार करने पर विदित

होता है कि सूर्य में और आप में भी बडा अन्तर है। सूरज प्रति दिन संध्या के समय अस्त हो जाता है, मगर आपके अस्त हो जाने का काम ही नही है। कभी-कभी सूर्य को राहु ग्रस लेता है और उसकी ज्योति दब जाती है। मगर आपके केवलज्ञान और केवल दर्शन की अनन्त ज्योति सदैव समान रूप से झिलमिल-झिलमिल होती रहती है। आपके ज्ञान-दर्शन के प्रकाश को ढँकने की शक्ति संसार मे किसी मे भी नही है। इसके सिवाय बादल भी आड़े आकर सूर्य के प्रभाव को रोक देते है, मगर आपकी दिव्य ज्योति को रोक लेने की शक्ति किसी में नहीं है।

सूर्य मे और आपमें एक बडा अन्तर और भी है। सूर्य एक साथ सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित नही कर सकता। सम्पूर्ण विश्व की बात जाने दें, सिर्फ जम्बूद्वीप को ही लें तो उसे भी सूर्य पूरी तरह प्रकाशित नही कर सकता। जम्बूद्वीप का एक भाग सूर्य के द्वारा प्रकाशित होता है तो दूसरे भाग मे अंधेरा छाया रहता है। मगर आप एक साथ सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते रहते हैं। तीनो लोक आपके केवलज्ञान की ज्योति मे उद्भासित होते हैं। अतएव हे मुनियो के नाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी ज्यादा है। फिर आपको किस वस्तु की उपमा दी जाय ?

ऐसे भगवान् ऋषभदेव आदीश्वर हैं। उनको ही मेरा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! संसार में सूर्य से अधिक प्रकाश वाला और कोई पदार्थ नही है। किन्तु सूर्य का बिम्ब जड है और उसका प्रकाश भी जड़ ही है। जड होने के कारण वह जड़ पदार्थों को

ही प्रकाशित कर पाता है जड पदार्थों के भी दो भेद है—रूपी और अरूपी। सूर्य विम्ब रूपी है। रूपी होने से उसमे रूपी वस्तुओं को ही प्रकाशित करने की शक्ति है। अरूपी वस्तुओ को प्रकाशित नही कर पाता। किन्तु भगवान का ज्ञान-दर्शन का प्रकाश आत्मिक गुण है। वह चेतन-स्वरूप है और अरूपी है। अतएव वह चेतन और अरूपी वस्तुओ को भी उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे जड़ और रूपी वस्तुओ को।

सूर्य जड और रूपी पदार्थो को भी पूरी-तरह प्रकाशित नहीं कर सकता। आप सूर्य के प्रकाश में जब किसी चीज को देखते हैं तो सिर्फ उसका ऊपर-ऊपर का भाग ही देखते हैं, भीतरी भाग को नही देख सकते। कल्पना कीजिए एक मनुष्य का शरीर आपने देखा। शरीर मे बहुत-सी चीजे सम्मिलित हैं। ऊपर की चमडी भीतर की चमड़ी मास, रुधिर, चर्बी आदि आदि। मगर आप सूर्य के प्रकाश मे क्या- क्या देख पाते हैं? सिवाय ऊपरी चमडी के सूर्य आपको और कुछ भी नही दिखला सकता। उस चमड़ी का भी ऊपरी भाग ही आप देख पाते हैं, भीतरी भाग नही फिर चमड़ी से ढके हुए शेष भाग को तो सूर्य दिखलाता ही नही है।

अब जरा और आगे बढकर सोचिये। सूर्य का प्रकाश मनुष्य के शरीर में से सिर्फ चमडी को, चमडी मे से भी उसके ऊपरी भाग को प्रकाशित कर पाया है, मगर क्या वह चमडी के भी पूर्ण स्वरूप को प्रकाशित कर पाता है? उत्तर मे मिलेगा नही। चमड़ी का केवल रूप ही सूर्य से प्रकाशित होता है। मगर क्या चमड़ी रूप ही है? नही, उसमे रूप के साथ रस भी है, गंध

भी है, स्पर्श भी है, और दूसरे-दूसरे गुण भी हैं। मगर सूर्य इनमें से किसी भी गुण को प्रकट नही करता।

इस सूक्ष्म विचार की गति यहीं नही अटक जाती। वह और भी आगे बढती है और ज्यों-ज्यों विचार की गति आगे-आगे बढ़ती जाती है, विचार गंभीर होता चला जाता है। विचार की गंभीरता के साथ ही साथ सूरज के प्रकाश की असमर्थता और संकीर्णता भी मालूम होती जाती है। मगर आपको इतनी गंभीरता की तरफ न ले जाकर संक्षेप में इतना ही कह देना काफी होगा कि भगवान् के ज्ञान मे और सूर्य मे उतना ही अन्तर है जितना सूर्य में और जुगनू में होता है। इससे कम नही, अधिक अन्तर है। भगवान् का ज्ञानमय प्रकाश चेतन-अचेतन, रूप-अरूपी भीतर-बाहरी, सभी वस्तुओं को, सब वस्तुओं के सब गुणों को प्रकाशित करता है। संसार में कोई वस्तु ऐसी नही जो उस लोकोत्तर प्रकाश से छिपी रह सके। ऐसी स्थिति में आचार्य महाराज ने भगवान् की महिमा अगर सूर्य से भी अधिक कही है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भाइयों! भगवान् पूर्ण ज्ञानी होते हैं। उनकी आत्मा पर पडा हुआ अज्ञान का पर्दा दूर हो जाने के कारण वे ज्ञानमयज्ञान स्वरूप होते हैं। पूर्ण ज्ञानी से कोई भी बात छिपी नही रहती

एक बार भगवान् महावीर स्वामी, ग्राम, नगर, पुर, पाटन आदि मे विचरते—विचरते राजगृह नगर में पधारे। राजगृह नगर में एक सुदर्शन नामक सेठ भी रहते थे। भगवान् के

पदार्पण का समाचार सुनकर वे भगवान् के पास आये और अर्ज की कि—प्रभो! काल कितने प्रकार का है?

भगवान् ने उत्तर दिया—सुदर्शन अद्धाकाल आदि के भेद से काल चार प्रकार का है।

सुदर्शन ने फिर प्रश्न किया—भगवन्! अद्धाकाल किसे कहते हैं।

भगवान् ने फर्माया—अनन्तकाल बीत गया है और अनन्तकाल बाकी है; उसके बीच का काल अद्धाकाल कहलाता है। यह काल, जिसे समय भी कहते हैं, इतना सूक्ष्म है कि छद्मस्थ के अनुभव मे नही आ सकता। उसकी बारीकी का अनुमान इसी से कर लो कि आंख के पलक मारने मे असख्य समय व्यतीत हो जाते हैं।

एक घन्टे में साठ मिनिट माने जाते हैं और एक मिनिट में भी साठ सैकिंड होते हैं। अगर एक सैकिंड के साठ भाग कर लिये जाएँ और उन साठ भागों में से भी एक भाग के फिर साठ भाग किये जाएं, तब भी वह भाग समय की सूक्ष्मता को नहीं पहुँच सकता। समय को सिर्फ कल्पना के द्वारा ही समझा जा सकता है। कल्पना करो कि कोई बजाज मलमल के थान में से किसी ग्राहक को पांच गज टुकड़ा फाडकर देता है। मलमल भी ग्यारह हजारिया असली है और फाड़ने वाला भी होशियार है। वह झट से मलमल को फाड डालता है। उसे फाड़ने मे एक सैकिंड भी नही लगता। मलमल की बुनावट की ओर ध्यान दो तो मालूम होगा कि उसमें ताना भी है और बाना भी है। अर्थात्

उसमें खड़े और आड़े दोनों तरह के तार हैं और वे सैकड़ों की संख्या में हैं। जब मलमल फटने लगा तो क्या सभी तार एक साथ फटे हैं? नहीं, वे एक-एक करके क्रम से फटते हैं। पहले पहला तार फटा, फिर दूसरा, फिर तीसरा। इस क्रम से सैकड़ों तार फटे हैं।

एक-एक तार भी अन्तिम अंश नहीं है। प्रत्येक तार में अनेक रेशे होते हैं। जब पहला तार फटा तो उसमें रहे हुए अनेक रेशों में से पहले एक रेशा टूटा, फिर दूसरा, फिर तीसरा आदि आदि। इस प्रकार आप कल्पना कीजिये कि एक-एक रेशे के टूटने में जितना समय लगा है, वह कितना सूक्ष्म है, जब कि पूरा फाड़ने में एक सैकिंड भी नहीं लगा है। एक सैकिंड से भी कम काल के उतने ही हिस्से करने होंगे, जितने तमाम तारों के रेशे हैं। वह काल कितना सूक्ष्म है? इस सूक्ष्मता को आप समझ नहीं सकते और न संसार की कोई घड़ी बतला सकती है।

परन्तु जिसे जिनागम में 'समय' कहते हैं और जो काल का सबसे सूक्ष्म अंश है, वह तो रेशा टूटने के समय से भी सूक्ष्म है। वह असंख्य गुना सूक्ष्म है।

जीव एक शरीर को त्याग कर जब नया जन्म धारण करने के लिए जाता है तो उसे प्रायः एक समय लगता है, कभी दो या तीन समय भी लग जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इधर से निकला नहीं कि उधर उसने जन्म लिया नहीं! कई लोग समझते हैं कि मृत जीव तीन दिन तक श्मशान में रहता है। कइयों का खयाल है कि तेरह दिन तक घर के ऊपर मंडराता रहता है। मगर यह सब नासमझों की बातें हैं। वास्तव में जीव अपने पहले

वाले शरीर को त्यागते ही उस जगह पहुंच जाता है, जहां उसे जन्म लेना होता है। यह थोड़ा-सा काल हमारी और आपकी कल्पना में नही आता।

सारांश यह है कि भूतकाल और भविष्यकाल के बीच जो काल वर्त रहा है, वह अद्धा काल कहलाता है।

दूसरा प्रमाण काल या उपमा काल कहलाता है। उपमा काल कहने का अभिप्राय यह है कि यह काल सिर्फ उपमा-उदाहरण से ही समझा जा सकता है। अद्धा काल सूक्ष्मतम होने के कारण समझ में नही आता और उपमा काल बहुत विशाल होने के कारण सीधा समझ में नही आता। अतएव उसे समझने के लिए उपमा का आश्रय लेना पड़ता है।

पल्योपम किसे कहते हैं? सुनिये-एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा एक गडहा खोदा जाय। उसमें एक रोज से सात रोज तक के जन्मे हुए युगलिया के बच्चे के बालो के ऐसे टुकड़े कि फिर जिनके टुकड़े न हो सकते हों, ठूंस २ कर भर दिये जाएं। सौ-सौ वर्ष बाद एक एक टुकडा निकाला जाय। यों करते करते उस गड़हे को पूरी तरह खाली होने में जितना समय लगे, उतने समय को पल्योपम कहते हैं।

यहां यह स्पष्ट कर देना उचित है कि न तो कभी किसी ने ऐसा गड़हा खोदा है और न कोई खोदेगा ही, मगर केवलज्ञानियो ने अपने ज्ञान में देखकर यह बतलाया है कि अगर ऐसा किया जाय तो जितना समय लगेगा वह पल्योपम कहलाएगा।

सागरोपम इससे भी बड़ा काल है। दस कोड़ा कोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

यह विवरण सुनकर सुदर्शन सेठ ने कहा—प्रभो ! स्वर्ग और नरक मे सागरोपमो की आयु होती है। इतनी लम्बी उम्र कैसे कटती होगी ?

भगवान् ने कहा—सुदर्शन, तुम स्वयं पाँचवें देवलोक से आये हो। वहाँ दस सागरोपम की तुम्हारी उम्र थी ! और आज तुम इतनी उम्र के लिए आश्चर्य प्रकट करते हो ?

भगवान् के ऐसे वचन सुनकर सुदर्शन शुद्ध भाव से मनन करने लगे। मनन करते-करते उनके परिणामो मे ऐसी निर्मलता आ गई कि मति ज्ञानावरण का विशिष्ट क्षयोपशम हुआ और उसी समय जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अब सुदर्शन स्वयं जानने-देखने लगे कि मैं दस सागरोपम की उम्र पूरी करके आया हूं। उन्होने अपने ज्ञान से यह भी जान लिया कि देवता होने से पहले मैं महाबल नामक राजकुमार था और पुण्य का आचरण करने से मुझे स्वर्ग प्राप्त हुआ था।

सेठ सुदर्शन ने भगवान् से कहा—भंते ! मैं भूला हुआ था। मेरी चेतना पर अज्ञान का पर्दा पडा हुआ था। मैं गफलत मे था। आज आपका पधारना और मेरा दर्शन के निमित्त आना मेरे लिए परम सौभाग्य की बात हुई अहो ! मैं इस दुनिया मे क्या करने आया था और क्या करने लगा ? पूर्व जन्म मे मैंने तपस्या आदि क्रिया मोक्ष पाने के लिए की थी, किन्तु पापो का नाश करते-करते उम्र तो रह गई थोड़ी और कर्म रह गये बहुत,

इस कारण मुझे स्वर्ग में जन्म लेना पडा शेष कर्मों का क्षय करने के लिए यहाँ आया सो यहां चक्कर में पड़ कर अपने कर्त्तव्य को ही भूल गया। धन सम्पत्ति और कुटुम्ब परिवार के मोह में फँस गया। अब आपके चरणारविन्दों मे आकर मुझे चेत हुआ है। मैं अब अपने अधूरे काम को पूरा करूंगा। अब मैं भीतर वाले को समझाऊंगा कि—अरे मेरे आत्मा! तू किस लिए यहाँ आया है? तेरे जन्म की सार्थकता किसमे है? और तू क्या करने लगा है?

थे मायलाने समझाओ, समझायां काम चलेला ।। ध्रुव ।।

समझे भाई? कहोगे—हाँ, महाराज! समझ गये! लेकिन नही जीभ से कह देने से काम नही चलेगा। जो भीतर है उसे समझाओ। प्रथम तो शरीर उसके आड़े आ गया है, तिस पर ऊपर से कपडे पहन रक्खे हैं। उसमे वह अन्तरात्मा ऐसा छिपकर बैठा है कि दिव्य दृष्टि के बिना नजर ही नही आता। उसी अन्दर वाले को समझाना पड़ेगा। उसे समझाये बिना काम नही चलेगा।

जो मांयलो समझ जाय तो, राग—द्वेष मिट जाय।
फिर तो पहुचो ऐसे देश में, नाम रूप नहिं पाय ।।

राग और द्वेष की परम्परा तभी तक जारी रहती है, जब तक भीतर वाला समझ मे नही आता। भीतर वाले अर्थात् अन्तरात्मा का जब ज्ञान हो जाता है तो एक ऐसे अद्भुत रस की अनुभूति होने लगती है कि उस रस के सामने उत्तम से उत्तम विषय-भोगो का रस भी बेस्वाद जान पड़ता है। वह रस अपूर्व

है। उसकी मिठास वही जानता है जो उसका आस्वादन करता है। वह गूंगे का गुड़ है। उसकी मात्र अनुभूति होती है उसे व्यक्त करने में शब्द असमर्थ हैं। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तो राग द्वेष दूर हो जाते हैं। रागद्वेष के हट जाने पर ऐसे देश की प्राप्ति होती है, जहाँ न रूप रहता है, न नाम रहता है। एक जाज्वल्यमान ज्योति ही शेष रह जाती है।

जो अन्तरात्मा को नहीं समझा है, वही बाह्य वस्तुओं में आत्मीयता की कल्पना करके उनमे रचा-पचा रहता है। वही परपदार्थों को अपना समझता है। वह कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी मूछों पर ताव देता है और कभी स्त्री का वेष बनाता है। यह सब अपने आपको न समझने का ही फल है। अन्दर वाला अन्दर वाले को समझ जाय तो समभाव की प्राप्ति हो जाती है। गजसुकुमार को अपूर्व समभाव कैसे प्राप्त हो गया था? उन्होने अपनी आत्मा के स्वरूप को समझ लिया था। इसी कारण अपने मस्तक पर आग रखने वाले को भी उन्होने कुछ नहीं कहा। वे जानते थे कि शरीर के जलने पर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं होगा। मेरी कोई चीज जल नहीं सकती। दुःख तो उसी को होगा जो अपनी मानेगा।

नमिराजर्षि करते हैं—

सुहं वसामो जीवामो जेसिं मे नत्थि किंचणं।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झई किंचणं ॥

उत्त. अ. ६ गा १४

नमिराज मिथिला के बड़े भारी राजा थे । उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया और साधु बन गये । इन्द्र उनकी परीक्षा लेने आया। ब्राह्मण का वेष धारण करके उसने कहा—मिथिला नगरी जल रही है । आपकी रानिया रो रही हैं और कह रही हैं—हे नाथ ! हमें बचाओ । अधिक नही तो कम से कम हमारी यह दुर्दशा तो देख लो । देखो, यह सारे हाथी, घोड़े, महल आदि भस्म हो रहे हैं ।

इन्द्र ने ऐसी माया रची थी कि नमिराज अगर मिथिला की ओर आंख उठाकर देख लेते तो सचमुच हो भयानक और हृदयद्रावक अग्निकाण्ड नजर आता । मगर इन्द्र के बहुत कहने पर भी उन्होने आंख उठाकर उस ओर नही देखा । वे अपनी आत्मा की ओर ही उपयोग लगाये रहे ।

इन्द्र के कथन के उत्तर में नमिराज ने कहा—जो निराकुल होकर शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, संसार का कोई भी पदार्थ जिनके लिए अपना नही है, उन्हे किसी के जलने अथवा न जलने से क्या प्रयोजन है ? मिथिला मेरी नही है और मैं मिथिला का नही हूं । अतएव मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता ।

भाइयो ! नमिराज कोई साधारण राजा नहीं थे । वह दो देशो के बड़े राजा थे । उनके अनेक रानियां थी और अनेक राज-कुमार थे । वे जैन जगत् मे प्रसिद्ध सती मदनरेखा (मयरण रेहा) के पुत्र थे । घोर संकट के समय जंगल में उनका जन्म हुआ था । जब वे अपने पिता के घर मे प्रकट हुए तो तमाम दुश्मन, जो

सदा सिर उठाये रहते थे, आकर उनके पैरों मे पड़ गये। इस प्रकार अनायास ही शत्रुओ के नम जाने के कारण उनका नाम नमिराज हो गया। यह लम्बी कथा है। इस कथा को ब्योरेवार कहने के लिये लम्बा समय चाहिए। यहां उसके उल्लेख करने का आशय इतना ही है कि जब अन्दर वाला समझ जाता है कि दुनिया की कोई भी चीज मेरी नही है, तब उसमे राग-द्वेष नही रह जाता। वह सोचता है कि मैं किससे मुहब्बत करूँ ! अतएव अगर आप समभाव का सुख भोगना चाहते है अगर आप अपने स्वरूप मे स्थिर होना चाहते हैं, अगर आपको दुनिया के दुःखो से छुटकारा पाना प्रिय है तो आप अन्दर वाले को समझो और समझाओ। बस फिर जन्म नही लेना पड़ेगा, मरण के पजे में भी नही फँसना पड़ेगा।

भाइयों ! मन बहुत चपल है। उसकी चपलता को दूसरा कोई नही पा सकता।

छिन में भाग-भाग ने जावे, ज्यों बिन लगाम को घोड़ो।
थे कहबों वश में नहीं आवे, दिन रह गयो थोड़ो ॥

यह थोडी देर भी एक जगह नही ठहरता है। कभी पूर्व में कभी पश्चिम मे तो कभी दक्षिण मे और कभी उत्तर मे भागता है। हाथ मे माला है, मुँह मे राम-राम है, मगर मन चोपाटी पर या अजमेर के बाजार मे घूमता फिरता है। कहा भी है—

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांय।
मनड़ो तो चहुं दिश फिरे, यह तो सुमिरण नांय ॥

अतएव अन्तरात्मा को समझने के लिए मन को स्थिर करो। मन को स्थिर करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। बार-बार उसे इधर-उधर न दौडने देने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। गीता में भी कहा है कि मन अभ्यास के द्वारा ही वशीभूत किया जा सकता है।

'क्या करें महाराज ! यह तो वश मे नहीं आता' ?

अरे गेल्या ! (पगले !) अब जिन्दगी के दिन थोड़े रह गये हैं, मौत पास मे सरकती आ रही है। और तू जैसे भग के नशे मे धुत्त हो रहा है ! अगर अब भी मन को वश मे करने का अभ्यास नही करना चाहता तो फिर किस जन्म मे करेगा ? जो मनुष्य-जन्म पाकर भी मन को वशीभूत नही कर सका, वह क्या हाथी, घोडे, या ऊट के भव मे मन पर विजय प्राप्त करेगा ? कहते हो, हम इतने पढ़े है—सस्कृत पढ़े हैं अग्रेजी पढे हैं, उर्दू पढे हैं, तो क्या पढे हो या तीसरे खड से, पड़े हो ? दिन पर दिन भागे जा रहे हैं मौत नगाड़ा बज रहा है। कौन कह सकता है कि घर से दुकान गया हुआ मनुष्य वापिस घर पहुँचेगा भी या नही ? इस प्रकार समय थोड़ा है और तुम भोगोपभोग भोगने मे हरा मस्त हो रहे हो !

इसके लारे थे भी दौडो, याही था में खोड़ ।
जो थे सेंठा होकर रहसो, यो आवेला दौड़ ।।

तुम्हारा दोष यही है कि तुम इसके पीछे-पीछे भागते फिरते हो। अरे, क्यो पागल हो रहे हो ? तुम मत भागो इसके पीछे ! अगर तुम मजबूत रहोगे तो प्रथम तो वह भाग ही नहीं सकेगा,

अगर भागेगा भी तो अपने आप रोता हुआ वापिस लौट आएगा। वह नही मानता है तो जाने दो, झख मार कर लौटेगा, मग तुम उसके पीछे-पीछे मत चलो। मन कहता है—चलो सिनेम और तुम उसका कहना मानकर चल पड़ते हो इसी से तो सार गड़बड़ होती है। तुम्हें चाहिए कि जब वह सिनेमा मे जाने व कहे तो तुम साफ कह दो तुझे जाना है तो तेरी मर्जी, मैं हर्गि नही जाऊंगा। और तुम दूसरे काम मे लग जाओ। भगवान् व भजन करने लगो, शास्त्र का स्वाध्याय करने लगो, तत्त्व की चच करने लगो या माला ही फेरने लगो। मगर तुम ऐसा कहां कर हो ? तुम तो मन के गुलाम बने हुए हो। वह जैसा कराता है वैस ही करते हो। जहां वह ले जाना चाहता है वही तुम चल देते हो यह क्या अच्छी बात है ? बादशाह होकर गुलाम के गुला बनना क्या तुम्हें शोभा देता है ? चाहिए तो यही कि तुम म को अपना गुलाम बनाओ, फिर भी अगर इतना नही कर सकते त कम से कम मन के गुलाम तो न बनो! उसका कहा मत मानो यो करते-करते एक दिन तुम उसे वश मे भी कर ही लोगे आखिर तो वह तुम्हारा ही अनुचर है। आत्मा की ही शक्ति है आत्मा की दृढता के सामने उसकी कहां तक चलेगी ? हा अग तुमने ही शिथिलता धारण कर ली और उसके पीछे पीछे दौ लगाने में ही आनन्द मान लिया जाय तो बात दूसरी है फिर तु रखड़ते ही फिरोगे। ठहरने का ठिकाना नही मिलेगा—दुख होओगे।

वृथा ही यो इत—उत डोले, यों काम नहीं चाले ।

करणो काम अधूरो पड्यो, जीन्हे नहीं सँभाले ।

बिना प्रयोजन ही यह मन इधर-उधर भटकता रहता है। मगर क्या ऐसा करने से काम चल जायगा ? जो काम करने योग्य है, वह अधूरा पड़ा है। जो मंजिल तय करनी है, वह अभी दूर पड़ी है। उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता है! यह मन किसकी ओर दौड़ता है ?

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजति, न से चाइत्ति वुच्चई ।।

दस. अ. २ गा. २

अच्छे अच्छे सुन्दर वस्त्रों की ओर, बढ़िया इत्र और सेंट की ओर, उत्तम और मूल्यवान गहनों की ओर और सुन्दरी स्त्रियों की ओर मन दौड़ता फिरता है। चाहे इन वस्तुओं को यह भोग सके अथवा न भोग सके, अगर इनसे हटा नहीं है तो उसे त्यागी नहीं कह सकते।

श्रीदशवैकालिकसूत्र की यह गाथा है। इससे मन के प्रभाव का पता चलता है। मनुष्य भले ही कामभोगों को न भोगता हो, फिर भी अगर उसका मन उनसे हटा नहीं है तो वह सच्चा त्यागी नहीं हो सकता। यह मन का ही प्रभाव नहीं तो और क्या है ? भगवान् ने यहाँ संकेत दिया है कि केवल त्यागी का वेष धारण करने से काम नहीं चलेगा। और भोग न भोगने मात्र से भी काम नहीं चलेगा, परम पद पाने के लिए तो मन को त्यागी बनाना पड़ेगा। विषयों के त्याग के साथ ही साथ विषयों की वासना का भी त्याग करना आवश्यक है। जब वासना दूर हो जाय तभी त्याग की परिपूर्णता समझनी चाहिए। वासना को दूर करने के लिए स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन की आवश्यकता है।

मगर तुम्हें इन बातों पर विचार करने की भी कहां फुर्सत है? समझने की भी तो आवश्यकता नही समझते! तुममे से बहुत से लोग 'विषय' और 'विषयवासना' का अन्तर भी शायद नही समझते हो! क्या इसी प्रकार इस जीवन को सफल बनाओगे?

कहा जाता है—श्रावकजी! व्याख्यान नहीं सुनते!

श्रावकजी कहते हैं—समय नही मिलता महाराज! कचहरी के काम जाना पड़ता है और दुकान संभालने वाला भी तो दूसरा नहीं है!

अरे भले आदमी! क्या तू मुकदमेबाजी के लिए यहां आया है? चोरी करने और बदमाशी करने के लिए तुझे मनुष्य का जन्म मिला है? धन के ढेर लगाने से तेरा जीवन और भविष्य सुधर जायगा? जरा विचार तो कर!

गीता को देखो, भागवत को देखो या जैन शास्त्रों को देखो सब जगह आपको यही देखने को मिलेगा कि जिन्होंने परम पद पाया, मनुष्य जन्म की करनी से ही पाया है। तुम करनी करने आये और दूसरे-दूसरे कामों मे ही फंस गये! जो काम प्रधान है और जो अधूरा पड़ा है, उसे तो संभालते नही हो और इधर-उधर के झगड़ों में पड़े हो।

इणाने गज मुनि वर समझायो तुरत परम पद पायो।
चौथमल कहे मायलो समझ्यो जब जग मोह छिटकायो॥

श्रीकृष्णजी के लघुभ्राता, अत्यन्त सुकुमार गजसुकुमार का शरीर बड़ा ही सुन्दर था। उगते हुए सूर्य के समान गौरवर्ण

ओर दीप्तिमान था। वह नौजवान थे और उनके विवाह के लिए कुंवारी कन्याएं इकट्ठी कर रक्खी गई थी। किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर वह विरक्त हो गये। विवाह और राज्य के बड़े से बड़े प्रलोभन पाकर भी अपने विचारो पर डटे रहे और आखिर दीक्षित होकर ही रहे। जिस दिन दीक्षा ली, उसी दिन भगवान् से आज्ञा लेकर श्मशान मे ध्यान करने चले गये। वहाँ सोमल नामक ब्राह्मण ने उनके सिर पर मिट्टी की पाल बांधकर दहकते हुए अंगार रख दिये। वेदना होने लगी तो विचारने लगे—मैं और हू शरीर और है। शरीर पर मोह करूँगा तो फिर नया शरीर धारण करना पड़ेगा। फिर मरना पडेगा और फिर जन्म लेना पडेगा! यह शरीर जड़ है और एक न एक दिन छूटने ही वाला है। कुछ दिन ठहर कर छूटने के बदले अगर आज हो छूट जाय तो हानि क्या है। उन्होने आत्मा से कहा—

कृमिजालशताकीर्णे, जर्जरे देहपिञ्जरे।
भिद्यमाने न भेत्तव्यं, यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥

हे आत्मन्? शरीर के छूटने पर डरने की क्या बात है? तुम्हारा असली शरीर तो ज्ञानमय है। यह जड़ शरीर तो हाडों का पीजरा है सैकडो कीड़ों से भरा हुआ है। विनाशशील है! इसके साथ तुम्हारा क्या नाता? तुम अपने असली शरीर को संभालो। यह जाता है तो जाने दो। इसके लिए चिन्ता मत करो।

भाइयो! सचमुच ही यह शरीर अशुचि है, मैले की थेली है! इससे ज्यादा अपावन वस्तु संसार मे और कौन-सी है? पवित्र से पवित्र समझी जाने वाली वस्तु भी जब इसके संसर्ग में

आती है तो वह भी अपवित्र बन जाती है। ऐसा अपावन यह देह है! जिस शरीर की उत्पत्ति ही रज और वीर्य जैसे घिनौने पदार्थों से हो, वह पवित्र कैसे होगा? सौ वार इसे साबुन मल-मल कर धाओ, इत्र चुपड़ो अथवा खुशबूदार तेल लगाओ, शरीर कभी अपना स्वभाव नहीं त्यागने वाला है। कितना ही उत्तम भोजन करो, उसे यह मल के रूप में परिणत कर देगा। कितना ही सुगन्धित शर्बत पीओ, शरीर के साथ सम्पर्क होने पर वह मूत्र बन जायगा?

कभी किसी से लड़ाई हो जाती है तो वह यही कहता है- साले, तू किसके पेशाब से पैदा हुआ है? कोई यह नहीं कहता कि तू किसके गुलाबजामुन का है।

हां, तो मुनि गजसुकुमार ने विचार किया--मैं इस अपावन, विनाशशील और जड़ शरीर से क्यों मोह करूं? जाता है तो जाय, रहता हो तो रहे। इसका और मेरा क्या रिश्ता है? इस प्रकार उन्होंने अन्दर वाले को समझाया। वह समझ गया। परिणाम यह हुआ कि वे परम पद के अधिकारी बने। सदा के लिए समस्त वेदनाओं से मुक्त होकर अक्षय सुख के भाजन बने!

कहने का आशय यह है कि मन भले ही बहुत चपल, ढीठ और बिगड़ैल क्यों न हो, आखिर वह वशीभूत किया जा सकता है। आत्मा में उसको काबू में लाने की शक्ति है। आत्मा की शक्ति के सामने वह पराजित हो जाता है। आत्मा स्वामी है, मन उसका अनुचर है। मगर आत्मा ही जब अपने स्वरूप को भूल कर मन का अनुचर बन जाता है, तब मन उसे दुःखी

और भयानक यातनाओं के मार्ग में ले जाता है ! अतएव जो आत्महित के अभिलाषी हैं, उन्हे अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा मन पर नियंत्रण स्थापित करना चाहिए। जो भव्य पुरुष ऐसा करेगा, वह भी सूर्यातिशायिमहिमा अर्थात् सूर्य से भी अधिक महिमा वाला बन जायगा।

जम्बूकुमार की कथा—

प्रात. काल होते ही राजगृह के नागरिकों ने एक अद्भुत दृश्य देखा, ऐसा दृश्य कि जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती थी ! चोरो का सरदार प्रभव और उसके पांच सौ साथी अब तक चुराया हुआ माल अपने-अपने सिरो पर लादे हुए बीच बाजार मे होकर जा रहे थे। उस माल में हीरे थे, पन्ने थे, मोती थे, सोने–चांदी आदि सभी कुछ था। वह उन लोगो की, साहसपूर्ण चोरी की सारी कमाई थी। जिस सम्पत्ति को उन्होने महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् समझ कर, अपने प्राणों पर संकट झेल कर एकत्र किया था, आज वही सम्पत्ति उन्हें धूल के समान मूल्यहीन प्रतीत हो रही थी।

इस घटना पर विवेक के साथ विचार किया जाय तो पता चल जायगा कि दुनिया की अनमोल दौलत का असली मूल्य क्या है ? अज्ञान मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वस्व समझता है, जिस सम्पदा के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करते संकोच नही करता, यहाँ तक कि मरने को भी तैयार हो जाता है, ज्ञानी उसी सम्पत्ति को तुच्छ और निस्सार समझते हैं। ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है, वह केवल मिथ्या कल्पना के ही क्षेत्र मे है। वास्तविकता के क्षेत्र मे उसकी कोई कीमत नहीं है।

हां, तो प्रभव चोर अपने साथियों के आगे बढता हुआ, सीधा राजमहल में पहुँचा। राजगृह—नरेश और मगधसम्राट के सामने उन्होने अपने सिर पर लदी गठरियाँ पटक दी। गठरियों की गाँठें खोल-खोल कर उन्होने वह सब धन बाहर निकाला, जो उनमें बन्द था।

सम्राट यह सब देखकर चकित था। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि मामला क्या है ? यह असीम सम्पदा सिमट कर क्यों सहसा मेरे समक्ष आ पहुँची है ? सम्राट् कभी उस सम्पदा की ओर नजर डालता था और कभी सम्पदा लाने वालों की तरफ जिज्ञासा और विस्मय से भरी निगाहों से देख रहा था। तब प्रभव ने सहज भाव से कहा-राजन् ! हम लोगों ने तुम्हारे राज्य में बहुत से डाके डाले हैं, अनेक चोरियां की हैं और बहुत से अत्याचार किये हैं। हम लोग अपने कृत्यों का पश्चात्ताप करने के लिए तैयारी कर रहे हैं। यह सब धन अब हमारे लिए बेकार है। इसकी हमे आवश्यकता नहीं रह गई है। जिस धन ने हमारी आत्मा को कलुषित करके निदय और अत्याचारी बना दिया, उस धन को अब हम दूर से ही नमस्कार करते हैं। हमारी निगाह में अब यह जर नहीं जहर है, वित्त नही विष है, सम्पत् नहीं सर्प है, यह धन नहीं अनर्थ है दौलत नही दुर्लत है, बुरी आदतें डालने वाली है ! इसे आप सँभालिए और इसमे जिसकी जो चीज हो, उसे लौटा दीजिए। इसके अतिरिक्त जो माल जहाँ गड़ा है वह भी मैं बतला देना चाहता हूं। वह भी निकलवाकर उसके स्वामी को लौटा दीजिए।

भाइयो ! सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में, शुक्लपक्षी और कृष्णपक्षी मे ज्ञानी और अज्ञानी मे कितना अन्तर है ? इस अन्तर को समझने के लिए यह घटना प्रकाश के समान है। आपके सामने प्रभव के दोनो रूप उपस्थित हैं। उसका पहला रूप अज्ञान-अवस्था का रूप है और आज का रूप ज्ञान-अवस्था का रूप है। दोनो रूपो को समझकर आप अपनी आत्मा की कसौटी कर लीजिए।

अगर आपको धर्म की अपेक्षा धन अधिक प्रिय लगता है, अगर आप धन के लिए धर्म का परित्याग करने मे संकोच नहीं करते, धन के लिए अनीति और अत्याचार का सहारा लेते हैं, अगर आप धन को ही अपने जीवन का मुख्य ध्येय मानते हैं और उसी की उपासना मे जीवन व्यतीत करते हैं, तो समझ लीजिए कि आप अभी तक शुक्लपक्षी नही बने है। आप अभी तक अज्ञान अवस्था मे पड़े हुए हैं। इसके विपरीत यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी ऊंची हो गई है कि आप धन के लिए धर्म को नहीं त्याग सकते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्यग्दृष्टि हैं, शुक्लपक्षी हैं।

भाइयों ! किसी समय प्रभव चोर कितना खूंख्वार था। और आज वह क्या बन गया है ? उसकी नीयत क्या से क्या हो गई है ! यह सब सत्संगति का माहात्म्य है। मगर कई भले आदमी कहने लगते हैं कि हमे साधुओ की आवश्यकता नही है। परन्तु साधु जन नहीं होगे तो ससार का कल्याण भी नही हो सकता।

प्रभव के जीवन में जो महान् परिवर्त्तन हुआ; उससे एक बात और भी सीखी जा सकती है। जो आज नालायक है वही कल लायक बन सकता है। आज जो कंगाल है, कल वही राजा भी हो सकता है और आज जिसे हम अपना स्वजन समझते हैं, जिसे प्राणों के समान प्रिय मानते हैं, कल वही हमारे प्राणों का ग्राहक बन सकता है। सारा विश्व परिवर्त्तन शील है। इसमें सचेतन या अचेतन-कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। विभिन्न प्रकार के कारण पाकर पदार्थों में परिवर्त्तन होता रहता है। अतएव आज अगर कोई व्यक्ति बुरा है तो उसे सदा के लिए बुरा समझ लेना उचित नहीं है। पापी के पाप को भले घृणा की दृष्टि से देखा जाय, मगर पापी पर घृणा नहीं करनी चाहिए। कौन कह सकता है कि ऊपर से पापी प्रतीत होने वाले की अन्तरात्मा कितनी ऊंची और सरल है! प्रभव ही इसका उदाहरण है !

अयवंतामुनि बाल्यवस्था में ही दीक्षित हो गये थे। उन्होंने बालसुलभ कुतूहलवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पात्र को पानी मे तैराया। दूसरे मुनि, उनके मुनि-मर्यादा के विरूद्ध इस कार्य को देख कर उनकी भर्त्सना करने लगे। तब भगवान् ने साधुओं से कहा-इनकी अवहेलना-निन्दा मत करो। यह तो मुक्तिगामी जीव हैं।

तात्पर्य यह है कि कब, किस जीव के, कैसा रसायन आ जायगा, यह कोई नहीं जानता। प्रभव का नाम सुनते ही अच्छों-अच्छों के छक्के छूट जाते थे। उसकी नृशंसता प्रसिद्ध थी। मगर उसके भीतर देवता सोया हुआ था। जम्बूकुमार के थोड़ी

देर के संसर्ग ने ही उसके देवता को जगा दिया। अब मिट्टी से हीरा हो गया।

तो मगध नरेश प्रभव को अपने दल के साथ, सामने खड़ा देखकर चकित रह गये। उन्हें जान ही नही पड रहा था कि वे स्वप्न देख रहे हैं या सत्य घटना को देख रहे हैं! आखिर मगध-नरेश ने प्रभव से पूछा–प्रभव! यह ज्ञान तुम्हे कहाँ से मिला है? किस गुरु ने तुम्हे यह महान् शिक्षा दी है?

प्रभव ने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया किस प्रकार वह जम्बूकुमार के घर चोरी करने गया और किस प्रकार उस घर की, और खास तौर पर जम्बूकुमार की स्थिति देखकर वैराग्य का उदय हुआ, यह सब प्रभव ने मगधराज के सन्मुख कह दिया। फिर प्रभव ने कहा–राजन्! आपके यहाँ तेतीस हजार घोड़े इतने ही हाथी और इतने ही रथ हैं और बडी भारी सेना है। मगर मुझे और मेरे साथियों को आपकी फौज का किंचित् भी भय नहीं था। वह हमारा न कुछ बिगाड सकी थी, न बिगाड़ सकती थी। हाँ हमें यमराज का भय अवश्य लगा। मुझे संसार मे बार-बार जन्म लेने और मरने की इस परम्परा से घृणा हो गई। जम्बूकुमार के अन्तःस्तल से निकली हुई वाणी सुनकर मेरी आंखें खुल गई। एक अपूर्व प्रकाश मेरे सामने चमकने लगा। उस प्रकाश के सामने इन रत्नो, मणियो और आभूषणों का प्रकाश नगण्य है। तभी से मुझे यह हीरे और पन्ने आदि मिट्टी के ढेले के समान तुच्छ दिखाई देने लगे। हम सब ने यह निश्चय कर लिया है कि जम्बूकुमार के साथ ही साथ हम लोग भी अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे।

प्रभव का कथन सुनकर मगध नरेश को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—प्रभव ! तुम्हारे इस आकस्मिक परिवर्त्तन से मैं अतीव प्रसन्न हूं। जब तुम चोर और लुटेरे थे, तब भी महान् थे, असाधारण थे अब महात्मा बनोगे तब भी असाधारण ही बनोगे। तुम्हारे भीतर प्रचंड शक्ति विद्यमान ही थी ! केवल उसकी दिशा ही बदलनी थी। वह आज बदल गई है। तुम सरीखे वीरों का यश युग युग में जनता की जिह्वा पर नाचा करेगा। मगर जिस गुरु ने तुम्हारे जीवन की दशा को एकदम मोड दिया है, उसका प्रभाव भी साधारण नही हो सकता। चलो, उस महान् आत्मा के दर्शन तो कर लें !

राजा अपनी सेना और कर्मचारियों के साथ सेठ ऋषभदत्त के घर की ओर चल दिया। सेठ को समाचार मिले तो उसने उनके स्वागत की यथोचित व्यवस्था की। राजा ने जम्बूकुमार को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। फिर जम्बूकुमार से कहा—प्रिय कुमार ! आपको संसार के सभी उत्तमोत्तम भोग विलास प्राप्त हैं। आपके यहां किसी वस्तु की कमी तो मालूम नही होती। फिर आप क्यो साधु बनना चाहते हैं ? कुछ दिनो तक सांसारिक सुखो का उपभोग कर लो। फिर संयम लेने का विचार करना।

जम्बूकुमार बोले—राजन् ! भोगोपभोग की सभी सामग्री मौजूद है, परन्तु इसमे सुख कहां है ? इन जड वस्तुओं में सुख नही है। सुख तो आत्मा का गुण है और इसीलिए सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए आत्मा को जगाने की आवश्यकता है। आत्मा मे जागृति आने पर ही आनन्द की अनुभूति हो सकती है। उसे जगाने के लिए ही मैं संयम स्वीकार करना चाहता हू।

मैं कुछ दिन ठहर कर भी संयम ले लेता, मगर विवश हूं। मृत्यु के साथ मेरी मैत्री नही है। मुझे विश्वास नही कि वह जल्दी नही आ जायगी। ऐसी स्थिति मे एक क्षण का प्रमाद भी अनर्थकारी हो सकता है। किसी गृहस्थी के घर मे आग लग जाय तो वह कपडे-लत्ते, बर्तन भाडे आदि की उपेक्षा करके सर्व प्रथम जवाहरात की रक्षा करता है क्योंकि वह सारभूत पदार्थ हैं। ऐसा न करके यदि वह पहले कपड़े-लत्ते आदि निस्सार पदार्थों को निकाले तो पागल समझा जायगा। इसी प्रकार यह लोक जन्म-जरा-मरण की आग से जल रहा है, चारो ओर यह आग फैली हुई है, इसमे से मैं अपनी आत्मारूपी सारभूत वस्तु को बचा लेना चाहता हूं। इस दु खमय दुनिया से आत्मा को अलग कर लेना ही सारभूत है।

मगधनरेश जम्बूकुमार के इस उत्तर से प्रभावित होकर कहने लगे—कुमार! आप धन्य हैं। आपका मनोरथ मंगलमय है। मैं आपके विचार का अनुमोदन करता हूं।

इतना कहकर उन्होने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि जवाहरात से जडा, एक हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य सुन्दर पालकी लाओ। उसमे जम्बूकुमार, इनकी पत्नियो, उनके माता-पिता, सास-ससुर तथा प्रभव आदि को बिठलाकर महा-प्रभु महावीर स्वामी की सेवा मे ले जाया जाय। पालकी आई और सब वैरागी उसमे सवार होकर दीक्षा लेने के लिए चले। जब पालकी नगर के बीचों बीच से निकली तो इस अनूठे और देवदुर्लभ दृश्य को देखकर राजगृह की जनता मानो कृतार्थ हो गई! सभी के मुंह से धन्य-धन्य की ध्वनि निकल पडी। सड़क

के दोनो किनारों पर कतार बनाकर मानव-समुदाय खड़ा था और उन मुक्ति के पथिकों का हृदय से और वाणी से अभिवादन कर रहा था। सब लोग चाहते थे, पांच मिनिट के लिए सवारी रुक जाय तो हम इनसे बातचीत कर ले, इन्हें धन्यवाद दे सकें, इनके इस उत्कृष्ट वैराग्य की सराहना करे।

मगर पालकी धीमी-धीमी गति से अग्रसर होती जा रही थी। आगे-आगे बाजे वाले चल रहे थे। पालकी के पीछे उत्कंठित जनता की भारी भीड़ जय-जयकार करती हुई चल रही थी। राजगृह नगर में जहा देखो वही एक मात्र यही चर्चा थी। कोई जम्बूकुमार की प्रशसा कर रहा था तो कोई प्रभव की तारीफ कर रहा था। कोई उनकी पत्नियों की यशोगाथा गा रहा था तो कोई माता-पिता आदि के प्रति अपना आदर भाव प्रकट कर रहा था किसी ने कहा – जम्बूकुमार की कीर्ति अखंडित हो ! अक्षय हो ! कोई कहता था संसार की श्रेष्ठ विभूति को लात मार कर भिक्षुक बनने वाले इन महाभागों का जीवन धन्य है ! जनता की भीड मे से एक ध्वनि आती थी–आज का सा दृश्य, राजगृह मे तो क्या, समस्त भूमंडल मे शायद ही कभी किसी ने देखा होगा ! अहा क्या इनकी उम्र है ! क्या इनका शरीर है ! और कितनी इनके पास सम्पत्ति ह ! कल ही तो निन्यानवे करोड का दायजा मिला है और आज ही यह साधु बन रहे हैं ! इसे कहते हैं त्याग !

आज कल बहुत से लोग कहने लगे हैं कि जिनसे कमाया नही जाता वही साधु बन बैठते हैं ! मुफ्त का माल खाने के लिए ही ये साधु बने है। भाई, यह दुनिया है। यहाँ तरह-तरह के विचार और भाँति-भाँति की खोपड़ियां हैं। 'मुण्डे मुण्डे मति-

भिन्ना' की लोकोक्ति यहां सदैव चरितार्थ होती रहती है। जिसके जी मे जैसा आता है, कहता है। उनकी बातो पर ध्यान न देते हुए अपने कर्त्तव्य का ही ध्यान रखना चाहिए। इस दुनिया के आगे तो महादेव और पार्वती भी हार गये ।

एक बार पार्वती ने आग्रह किया कि आज बस्ती में होकर चलना चाहिए। महादेवजी ने मना किया, लेकिन पार्वती नहीं मानी। तब ले नादिया और चल पडे बस्ती मे। पार्वती नादिया पर सवार हुई और महादेवजी उनके पीछे पीछे चलने लगे। यह दृश्य देखकर लोग हसने लगे कि देखो, यह हट्टी-कट्टी तो बैल पर सवार है और बेचारे बूढ को पैदल चला रही है ! यह बात सुन कर पार्वती ने महादेव को नादिया पर बिठलाया और आप पैदल चलने लगी। थोडी दूर जाने पर लोगो ने फिर मजाक किया-कैसी विचित्र बात है! बेचारी औरत पैर रगडती-रगडती चल रही है और यह बुड्ढा बैल पर लदा हुआ है ! यह सुनकर दोनो नादिया पर बैठ गये। तब भी लोग टीका-टिप्पणी करने में नही चूके। कहने लगे हू ! बेचारा बैल छोटा है और उस पर दोनो सवार हो गये हैं ! इनके दिल मे दया भी नही है ! यह सुनकर महादेव और पार्वती दोनो नादिया पर से उतर गये और पैदल चलने लगे। फिर भी लोगो ने पीछा नही छोडा। कहा—कैसे बुद्धू हैं यह दोनो ! सवारी साथ लिये हैं, मगर चल रहे है पैदल हा ! पैदल ही चलना था तो सवारी साथ रखने का शौक क्यो चर्राया !

आखिर महादेवजी और पार्वतीजी बस्ती से बाहर निकले। महादेवजी ने कहा-सुन ली बस्ती की बाते ! यह दुनिया दुरंगी है। भले आदमी का कर्त्तव्य है कि वह दुनिया के कहने पर ध्यान न देता हुआ अपने अन्तरात्मा की निर्मल ध्वनि को ही सुने और उसी की प्रेरणा पर चले।

भाइयों ! जीवन मे कभी-कभी बडी कठिन समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। मनुष्य की बुद्धि उन समस्याओ को हल करने मे कुन्ठित हो जाती है। उसे सूझ नही पड़ता कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? अन्तरात्मा की आवाज उसे एक ओर ले जाना चाहती है और दुनिया के लोग उसे दूसरी ओर जाता हुआ देखना चाहते हैं। वह अन्तरात्मा की ध्वनि का अनुसरण करता है तो दुनिया उसकी बुराई करती है और अगर दुनिया के चाहे मार्ग पर चलता है तो अन्तरात्मा का घात करना पडता है। मगर हर हालत मे मनुष्य को अपनी बुद्धि शुद्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए। अपनी शुद्ध बुद्धि से विचारकर अपनाया हुआ मार्ग कल्याणकारी ही होगा। अलबत्ता, ऐसा करते हुए लोक की उच्च और पवित्र मर्यादाओं को न ठुकराया जाय, यह वांछनीय है।

जम्बूकुमार के सामने यही समस्या थी। मगर उन्होंने अपने अन्तर्नाद का ही दृढतापूर्वक अनुसरण किया। फल यह हुआ कि उनकी दृढता ने दूसरो को भी प्रभावित किया और एक ऐसा अनुपम आदर्श खडा हो गया जो युग-युगान्तर तक धर्म-प्रिय जनता के लिए स्पृहणीय प्रतीत होता रहेगा। जम्बूकुमार के त्याग की कथा उस समय भी अद्भुत थी और आज भी अद्भुत प्रतीत होती है। धन्य है ऐसे त्यागियो को ! जो मुमुक्षु उनका अनुसरण करेगा, उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होगा, वह भी उन्हीं की तरह अक्षय और अखण्ड आनन्द का भागी होगा।

५-१०-४८ }



धर्म प्रभाव

स्तुति :

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! किस प्रकाशमान पदार्थ से आपकी उपमा दी जाय ? एक दीपक हमारे ध्यान मे आता है । मगर देखते हैं कि

दीपक से धुआँ निकलता है, उसे प्रकाशित होने के लिए बत्ती की आवश्यकता होती है और तेल की भी आवश्यकता होती है। किन्तु आप ऐसे अपूर्व दीपक हो कि जिसके लिए न बत्ती की और न तेल की आवश्यकता होती है। फिर दीपक तो आस-पास के प्रदेश में ही किंचित् प्रकाश करता है और हवा का एक हल्का-सा झौका लगते ही बुझ जाता है। परन्तु आप इस सम्पूर्ण त्रिलोकी को प्रकाशित करने वाले हैं और बडे बड़े पर्वतो को भी हिला देने वाली आंधी का भी आप पर कोई असर नहीं होता। हे जगन्नाथ, जगदीश्वर! आप ऐसे अलौकिक दीपक हैं। आपको ही मेरा बार-बार नमस्कार है।

भाइयों! जरा हवा के स्वभाव पर विचार कीजिए। वह दीपक को तो बुझा देती है, परन्तु किसी जगल मे अगर दावानल सुलग रहा हो तो उसे और ज्यादा प्रज्वलित कर देती है? क्या ऐसा ही स्वभाव दुनिया के लोगो का नही है? दुनिया के लोग अन्याय और न्याय का विचार नही करते। गरीब अगर ठीक रास्ते पर होगा तो भी उसे दबा देगे और धनवान् अगर गलत रास्ते पर चलेगा, सैकड़ो गलतियां करेगा तो भी उससे दब जाएँगे, उसका साथ देगे।

जाति ने मांस-मदिरा के सेवन का निषेध किया है, फिर भी अगर कोई लखपति आदमी इन चीजो का सेवन करता है, तब भी दूसरे लोग उसके विरोध मे आवाज नहीं उठाएँगे। यही नहीं, अगर कभी किसी ने कोई आवाज उठा भी दी तो अधिकांश लोग उसे बुरा-भला कहेंगे, उसका विरोध करेंगे और उस लखपति का साथ देंगे। यहाँ तक कि लखपति के उस खानपान को

उपेक्षा करके उसके घर अपनी लड़की ब्याह देने में अपना सौभाग्य समझगे ।

एक ऐसी घटना का मुझे पता है। किसी मालदार के घर एक लडकी का विवाह कर दिया गया। उसके घर में मांस-मदिरा के खान-पान का प्रचलन था, मगर लड़की उन्हे घृणा की दृष्टि से देखती थी। उस लडकी को भी उन चीजो का सेवन करने के लिए कहा गया। लडकी ने इन्कार कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि तीन साल तक उसे पीहर मे ही रहना पड़ा। सुसराल वाले उसे लेने नही आये! ऐसे-ऐसे लोग दुनिया मे मौजूद हैं।

दुनिया अकसर पापियो का पक्ष लेती है, बशर्ते कि उनके पास सम्पत्ति की प्रचुरता हो और बेचारा गरीब अगर न्याय-नीति पर चलता है तब भी उसे धक्के खाने पडते हैं। धनवान् अन्यायी के सौ कुसूर माफ हैं और गरीब कुसूर न करने पर भी कुसूरवार है! अगर गरीब ने कभी कोई छोटी सी भी गलती कर दी तो उसकी इज्जत धूल में मिला दी जाती है! किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

वयोवृद्धास्तपोवृद्धा, ज्ञानवृद्धाश्च ये नरा ।
ते सर्वे धनवृद्धस्य, द्वारे तिष्ठन्ति किंकराः ।।

अर्थात्—क्या वयोवृद्ध, क्या तपोवृद्ध और क्या ज्ञानवृद्ध-सभी धनवृद्ध के द्वार पर किंकर की तरह खड़े रहते हैं।
और:—

वैभवभाजां दूषणमपि भूषणपक्ष एव निक्षिप्तम् ।

अर्थात्—धनवानों के दूषणों को भी लोग भूषण बना देते हैं।

समाज में व्यापक रूप से पाई जाने वाली इस मनोवृत्ति के मूल पर अगर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि जड-बुद्धि वाले लोगो का धन के प्रति जो आदरभाव है, उसी के कारण वे धनवान् का भी आदर करते हैं। धन के प्रति अनुचित आदर ने गुणों का मूल्य कम कर दिया है। जब बड़े बड़े गुणी पुरुष भी अनुभव करते हैं कि हीनाचारी, निर्गुण, निर्दय, निर्बुद्धि और विवेकशून्य धनवान का सर्वत्र आदर किया जा रहा है और ज्ञान एवं सदाचार से विभूषित विद्वान गुणी पुरुषों को कोई टके सेर भी नही पूछता, तो वह भी धन की ओर ही आकर्षित होता है। गुणों के प्रति उसकी आस्था ढीली पडती जाती है। इस प्रकार धनवानो को अनुचित आदर मिलने के कारण समाज में धन की पूजा बढ़ती जाती है और गुणो की प्रतिष्ठा घटती जाती है।

इस कथन का आशय यह नही है कि सभी धनवान दुराचारी होते हैं, अथवा सभी निर्गुण होते हैं। कई धनवान ऐसे भी मिलेगे जो धर्मप्रेमी है और उच्च आचार-विचार वाले है। ऐसे धनवान भी अगर प्रतिष्ठा के भागी बने तो यह स्वाभाविक ही है। मगर सिर्फ धनवान होने के कारण ही जब किसी को प्रतिष्ठा मिलती है और धन की आड में जब दुर्गुण छिपा दिये जाते हैं, साथ ही विशिष्ट गुणवान होने पर भी जब निर्धन का अनादर किया जाता है तो समाज का अधःपतन होता है। ऐसा होने से समाज गुण की उपासना की उपेक्षा करके धन की उपासना मे लग जाता है।

मेरा कहना यह है कि चाहे कोई धनी हो या निर्धन हो, अगर वह गुणवान है, ज्ञानवान है, सदाचार परायण है, तो उसे उचित आदर मिलना चाहिए।

जमाना बदल रहा है और बडो तेजो से बदल रहा है। धन की सत्ता बहुत दिनो तक कायम रह ली, पर अब कायम नहीं रहने वाली है। जनता के बहुभाग मे एक प्रकार का असन्तोष दिखाई दे रहा है। निर्धन, सधन की प्रभुता को स्वीकार करने को तैयार नही है। पूंजीवादी प्रभुत्व समाप्ति की ओर बढ़ता जा रहा है ऐसे समय में, धनवान भाइयो को विशेष रूप से सावधान हो जाना चाहिए। इसलिए नही कि वे उस असामयिक व्यवस्था को किसी प्रकार कायम रखने का प्रयत्न करें, क्योकि ऐसा होना संभव नही है। उन्हें सावधान होना चाहिए इसलिए कि वे धन की शक्ति को खोकर किस शक्ति पर जीवित रहना चाहते हैं ? उन्हे दूसरी शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करना है, ऐसी शक्ति जो केवल धन पर अवलम्बित न होकर गुण पर आश्रित हो।

भाइयों ! आखिर सच्चाई मे ही काम चलेगा। झूठ कब तक काम देगा ? सत्युग में भी सच्चाई ही काम देती थी। सच्चाई बहुत बडो चीज है। अतएव तुम सच्चाई पर ही रहो और कच्चाई की तरफ मत जाओ। गरीब अगर सच्चा है और उसे कोई दबाता है तो तुम उसकी सहायता करो। मत सोचो कि दबाने वाला मालदार है और उसका विरोध करने पर वह हमे हानि पहुंचा सकेगा। तुम केवल सच्चाई की ओर ही देखो। परमात्मा गरीबो की तरफ रहता है, इसलिए तो उसे गरीबनिवाज भी कहते हैं, दीनदयाल भी कहते हैं।

जब तक आपके दिल में दया है और दिमाग में गरीबी का भाव है, तभी तक ईश्वर आपके साथ है। जिस क्षण आपके चित्त में अहंकार का अंकुर उत्पन्न हो जायगा और आप समझेंगे कि जो कुछ हूं, मैं ही हूं, उसी क्षण ईश्वर आपका साथ छोड देगा। आपको ईश्वरीय शक्ति की सहायता मिलना बन्द हो जायगा। बडे-बडे राजा भी जब यह समझ गये कि मैं कुछ भी नही हूं, अर्थात् मेरे राजपाट का कोई मूल्य और महत्त्व नही है, तभी वे ऊँचे दर्जे पर चढ सके। अगर राजा होने का अभिमान उनके हृदय मे बना रहता तो उनकी भक्ति कबूल ही न होती। जो राजा निर्मोह होते हैं वे अपने आपको कुछ नही समझते हैं। दुनिया चाहे उनको बड़ा माने, मगर वे अपने को छोटा ही मानते हैं।

राजा श्रेणिक का लडका मेघकुमार साधु बन गया। सबसे छोटा साधु होने के कारण रात्रि मे सोने के लिए उसे किनारे पर जगह मिली। जिस जगह उसका बिस्तर था, उसी जगह से साधुओं के आवागमन का मार्ग था। रात्रि में अंधकार होने से साधुओ के आते-जाते समय कभी उनके पैरो की रज उसके शरीर और बिस्तर पर गिरती थी और कभी उनका ओघा मेघकुमार के शरीर का स्पर्श करता था। इस विघ्न के कारण मेघकुमार को रात्रि में नीद नही आई। उसे कुछ अनादर की भी गन्ध आई। विचार किया—मैं इतने बड़े राजा का पुत्र हूं और मेरी यहां कोई कद्र ही नहीं है! ऐसा साधुपना लेकर मैं क्या करूंगा? मेरे पिता महाराज श्रेणिक इतने प्रतापी सम्राट हैं और उनके पुत्र को यह साधु यों ठुकराते हैं? मैं देवलोक सरीखे राजमहल मे सोने वाला इस प्रकार कैसे जीवित रह सकूंगा? यह अपमान मुझसे नहीं सहा

जायगा। सूर्योदय होते ही, भगवान् से आज्ञा लेकर मैं अपने घर चल दूंगा।

भाइयो ! परिणामो की धारा बिजली के वेग से भी अधिक तेज वेग वाली है। उसके चढने मे भी देर नही लगती और उतरने मे भी देर नही लगती। जब चढती है और चढती ही चली जाती है तो केवलज्ञान को उत्पन्न कर देती है। अगर गिरती है तो आत्मा को भी नरक में गिरा देती है। परिणामों की धारा के प्रताप से ही तिरते हैं और इसी के प्रताप से डूबते हैं। परिणाम बदलते तनिक भी देर नही लगती। मेघकुमार ने वैराग्यपूर्वक दीक्षा ली और साक्षात् भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ली, मगर एक छोटा-सा निमित्त मिलते ही परिणाम बदल गये !

लोग कहते हैं—महाराज ! पहले उन्हे दो महीना पास में रखते और परखते। फिर दीक्षा देते तो क्या हानि थी ? एकदम ही क्यो मूंड लिया ? मगर ऐसा कहने वालो को समझना चाहिए कि भगवान् लोकोत्तर ज्ञानी थे। भविष्य, वर्त्तमान की तरह ही उनके ज्ञान में झलकता था। अतएव उन्हे परखने की आवश्यकता नही थी। भगवान् जानते थे कि एक बार मेघकुमार विचलित होगा, मगर उसी समय संभल भी जायगा।

रह गई साधारण साधुओ की बात, सो उन्हे वैरागी की परीक्षा जरूर कर लेनी चाहिए, जिससे आगे चलकर शासन का उपहास न हो। फिर भी वह परीक्षा एकान्त सही ही साबित होगी, यह नही कहा जा सकता, क्योकि कब किसकी परिणाम धारा गिर जायगी, यह छद्मस्थ नही जान सकता। बीस और

तीस वर्ष तक दीक्षित जीवन व्यतीत करने वाले भी कभी-कभी संयम से भ्रष्ट हो जाते हैं। नारियलो के समूह मे कोई अच्छा दूध वाला भी होता है और कोई सड़ा भी निकल जाता है। मगर वह गुरुपद का अधिकारी तब ही तक है जब तक कि शास्त्रोक्त संयम का पालन कर रहा है। तब ही तक उसके सामने हमारा मस्तक झुकना चाहिए। "जया य वंदिमो होई, पच्छा होइ अवंदिमो" अर्थात् जब तक कोई व्यक्ति संयम का पालन करता है तब तक वन्दनीय होता है। अगर संयम से भ्रष्ट हो जाता है तो फिर वन्दनीय भी नही रहता। कहा है—

साहब का घर दूर है, जैसे पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेमरस, पड़े तो चकनाचूर ॥

मिट्टी का बना घट विवाह—मंडप मे स्थापित किया जाता है तो मांगलिक समझा जाता है। जब वही घट फूट जाता है और उसके ठीकरे हो जाते हैं तो कौन पूछता है? उसकी कोई कद्र नही होती। इसी प्रकार जब तक कोई साधु बना रहता है, तब तक लाखों मनुष्य उसके पैरों मे पड़ते हैं। और जब साधुपने से गया तो आदर सत्कार से भी गया। एक लखपति व्यापारी अपने क्षेत्र मे प्रतिष्ठित समझा जाता है, मगर जब वह दीवाला फूंक देता है तो एक टके की भी उसकी इज्जत नही रहती। थोडी देर पहले हजारो आदमी जिसकी कृपादृष्टि के भिखारी बने रहते थे, वह उस समय पास मे भी नहीं फटकते!

अपने पद से भ्रष्ट हुआ मनुष्य दूसरो की निगाहों में तो गिरता ही है, स्वयं अपनी निगाहों मे भी गिर जाता है। मोह के

आवेश के कारण परिणामो की धारा जब गिरती है तो मनुष्य अपनी उच्चता और प्रतिष्ठा का भी विचार न करके पतित हो जाता है। किन्तु जब मोह का आवेश कम होता है और वह होश मे आता है तो फिर पश्चात्ताप करता है। कहा भी है—

जया ओहाविओ होइ, इदो वा पडिओ छम।
सव्वधम्मपरिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पई॥
—दशवैकालिक, चूलिका १, २.

जैसे आयु समाप्त होने पर इन्द्र स्वर्ग से भ्रष्ट होकर जब पृथ्वी पर आ पडता है तो वह स्वर्गीय वैभव और सुख को याद कर-करके दुखी होता है उसी प्रकार साधुता से गिरा हुआ मनुष्य, धर्म से भ्रष्ट होकर, मोह शान्त होने पर घोर पश्चाताप करता है।

हाँ, तो मेघकुमार सोचते है कि प्रात काल होते ही मैं साधु का वेष त्यागकर अपने घर चला जाऊँगा। इधर भगवान महावीर पहले से ही जानते थे कि मेघ की भावना बदलने वाली है। उन सर्वज्ञ प्रभु से क्या छिपा रह सकता था?

केवलज्ञानी रे म्हारा वीर प्रभु से नही कोई छानी रे। ध्रुव॥

दीक्षा देने से पहले ही भगवान को पता था—

जाने जाने रे वीर प्रभुजो तीन काल की बात॥ ध्रुव॥

भगवान भूत, वर्त्तमान और भविष्य काल की सब बातो के ज्ञाता थे। प्रात.काल होते ही मेघ भगवान के सन्मुख पहुँचे।

उनके पहुंचते ही भगवान् ने कहा—कहो मेघ ! रात्रि को तुम्हें बहुत कष्ट हुआ ? साधुओं के आने-जाने के कारण अनुभव हुए कष्ट से घबराकर घर लौट जाने का विचार किया है ? मेघ! तुम अपने पूर्वभव को भूल गये हो। पूर्वभव मे तुम हाथी थे। खरगोश जैसे छोटे से प्राणी की रक्षा के लिए, दिल मे दया लाकर, तुमने अपने प्राण दे दिये थे। उस तीव्र दयाभाव के कारण तुम्हें सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति हुई थी। उसी समय तुमने ससार को परीत किया था। दयाभाव के प्रभाव से हाथी के भव की आयु पूर्ण करके तुमने राजा श्रेणिक के कुल में जन्म लिया ! हाथी के भव मे तुमने जो कष्ट झेला था, उसे आज भूल गये हो और रात्रि के थोड़े से कष्ट को असह्य समझ रहे हो और उसके कारण घर लौट जाना चाहते हो ?

भगवान् की प्रभावपूर्ण वाणी श्रवण करके मेघकुमार सोच-विचार मे पड गये। विचार करते-करते उन्हे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। उस ज्ञान से मेघकुमार ने भी जान लिया कि सचमुच मैं पहले के भव मे हाथी था और वहां मैंने बहुत कष्ट सहन किया था हाथी की देह त्याग कर मैं यहां मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ हू। अहा ! उस कष्ट की तुलना में रात्रि का कष्ट तो नगण्य है। मैंने क्यो उसे इतना महत्त्व दे दिया !

आखिर मेघ मुनि ने कहा प्रभो ! मेरे आंतरिक नेत्र अभी तक खुले नही थे। आपकी दया से वे खुल गये हैं। मैंने यथार्थ बात समझ ली है। मेरा आपने उद्धार कर दिया। अब कृपा करके पुनः साधुपना शुद्ध करा दीजिए। उन्होने फिर कहा—दो आंखो

को छोड़ कर मेरा सारा शरीर साधुओं की सेवा में सहर्ष समर्पित है ।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने मेघकुमार मुनि को प्रतिबोधित किया। वे एक भवावतारी हुए और अन्त में सिद्धि प्राप्त करेंगे ।

इस कथानक से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि जब मनुष्य अपने आपको नगण्य समझता है तभी वह ऊँचा चढने की योग्यता प्राप्त करता है। जो विनम्र भाव से जगत की सेवा करेगा, उसको जगत ऊँचा समझेगा। उदाहरण के लिए गांधीजी को ही लीजिए। उन्होंने समस्त जीवन और समस्त शक्तिया देश की सेवा के लिए समर्पित कर दीं। अफ्रीका में भंगी तक का काम करने मे संकोच नही किया। अनेक प्रकार की मुसीबतें सही। वे अपने आपको मानव जाति का सेवक ही समझते रहे। उन्हें असाधारण सन्मान मिला, फिर भी उनके मन मे अहंकार कभी आया हो, यह नही सुना जाता। तो वे कितने ऊँचे माने गये ? 'मैं हूं' का भाव चित्त से निकल जाय अर्थात् अहकार पूरी तरह दूर हो जाय तो वही परमात्मा बन जाता है, और जब तक अहंकार विद्यमान है तब तक वह कुछ भी नहीं है। भाइयो ! संसार मे विरले ही मनुष्य होगे जो आदर सत्कार और कीर्त्ति की अभिलाषा न रखते हैं। मगर उन सब की भावना सफल नही होती। प्रधान कारण यही है कि वे अहंकार का त्याग नहीं कर सकते। यह अहंकार ससार-सागर मे गोते खिलाने वाला है। शरीर सुन्दर हुआ, पैसा कुछ ज्यादा इकट्ठा हो गया, बी. ए. या एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, दुकान मे नफा होने लगा या ग्राहक

अधिक आने लगें प्रेसीडेन्ट साहब बन गये तो बस अहंकार आ जाता है। यह सब अहंकार आने के कारण हैं। मगर सत्वशाली मनुष्य वही है जो अहंकार की सामग्री विद्यमान होने पर भी—विद्या, सम्पत्ति, बल, रूप आदि होने पर भी अहंकार नहीं करता।

हे मनुष्य ! तू अहंकार किस बिरते पर करता है ? उस दिन को याद कर जब तू भंगिन की कूख से जनमा था ! वह दिन क्यों भूल जाता है जब तूने कुत्ते की योनि मे जन्म ग्रहण किया था ! तेरे पास अभिमान करने योग्य क्या चीज है ? उन दिनों का स्मरण क्यो नही करता ? कौन-कौन सी योनियाँ छोड़कर आया है और कौन कौन सी योनियो मे जाना है, इस बात का यदि विचार करेगा तो तेरा अहंकार चूर २ हो जायगा।

वो दिन चितारे क्यों नरक—निगोद गयो,
वो दिन चितारे क्यों न कीड़ा हुआ पोठा में।
वो दिन चितारे क्यों न सूरीपूरी कूख जाया
वो दिन चितारे क्यों न भिष्टो भाड्यो कोठा में।
वो दिन चितारे क्यों न नीचो नाड ऊँचा पाव,
गर्भ मांही उलझियो रे भिष्टा केरा कोठा में।
रिष लालचन्द कहे वे दिन तू भूलि गयो,
धर्म बिना दिन दहाड़े लूटा गयो चोहटा मे ॥

अरे जीव ! भूतकाल में तेरी कैसी-कैसी दुर्गति हुई है, यह बात अगर तू स्मरण कर सके तो तेरा सारा अहंकार चूर-

घूर हो जाय ! तेरी आत्मा अनन्त बार नरक कुंड में गई है ! वहाँ परमाधामियो ने कैसे-कैसे भयानक कष्ट पहुँचाये हैं ! आह भयानक वैतरणी के घोर दुःख तूने सहन किये हैं ! और निगोद मे भी तू जन्म ले चुका है, जहाँ निरन्तर जन्म-मरण की व्यथा भोगता रहा है।

हे आत्मन् ! उन दिनों को भी याद कर जब तूने सड़े हुए गोबर मे कीड़े के रूप में जन्म लिया था ! आज तू इत्र, तेल फुलेल लगाकर फूला नहीं समाता और जिन्हे यह वस्तुएँ प्राप्त नही हैं उन्हे हीन दृष्टि से देखता है, मगर गोबर का कीडा भी तो तू ही था ! तूने राजपूतनी के उदर से जन्म लेकर शूरवीरता दिखला कर नाम भी किया है तो कभी भंगी होकर पाखाना भी झाडा है !

थोडे ही दिन पहले की बात है। तू ऐसी स्थिति में था कि तेरा सिर नीचे और पैर ऊपर थे। माता का मल–मूत्र तेरे पास होकर निकलता था ! यह विडम्बना दो-चार दिन ही नही, नौ महीने तक सहन की है। यह पढे–लिखे आलिमफाजिल, होशियार–सभी लोग औंधे लटके थे। यह तो खैर गनीमत थी कि तेरे पुण्य का उदय था सो कुशलपूर्वक गर्भ मे से बाहर आ गया ! अगर पाप का उदय होता तो माता के प्राण बचाने के लिए काट काट कर तुझे निकालना पडता ! शास्त्र मे लिखा है कि जो गुणवान की बुराई करेगा उसे गर्भ मे कट-कट कर निकलना पडेगा। ऐसा भगवती सूत्र का पाठ है। तो यह जीव में नौ महीने तक चमगादड की भाँति उलटा लटक कर आया है। पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज के गुरु लालचन्दजी महाराज ने अपनी ककाबावनी मे कहा है कि–अरे प्राणी ! अपने उन दिनो को याद कर

अब तू समझता है–जो कुछ हूं मैं ही हूं। मैं मालदार हूं, धनवान् हूं करोडपति हूं. मैं हाकिम साहब का बहिनोई हूं ! यह सब तो कहते हो मगर यह क्यों नही कहते कि किसी दिन मैं मल में कीडा था ! यह क्यो भूल रहे हो ! अगर तू अपने अतीत हालत पर विचार करेगा तो तेरे अन्त.करण मे अहंकार को कहीं जगह नही मिलेगी ।

कहां तक कहूं सच तो यह है कि मनुष्य के पास अहंकार करने योग्य कोई भा वस्तु नही है। फिर भी आश्चर्य है कि लोग अहकार के नशे मे चूर रहते हैं और वास्तविकता का विचार ही नही करते ! भाइयो ! अहंकार तुम्हारा परम शत्रु है। यह तुम्हारी उन्नति मे वहुत बाधक होता है आगे बढ़ने से रोकता है। तुम्हारी दृष्टि को दूषित बनाता है। अहकार के कारण दूसरे लोग तुम्हे तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। अहंकार से मनुष्य सन्मान का नहीं, अपमान का भी भागी होता है। अभिमान का फल हीन योनि मे उत्पन्न होना है। अतएव इस अहंकार का त्याग करो। अहकार को भयानक सर्प समझकर उससे दूर रहो।

अहकार को दूर करने का उपाय है, आत्मा के असली स्वरूप का चिन्तन करना। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप से च्युत होकर, अहंकार के वश होकर नाना प्रकार की कुत्सित योनियों में जन्म लेता है। अहंकार के इस फल का भी चिन्तन करना चाहिए। जब आप एक वार आत्मा के शुद्ध स्वरूप पर विचार करेंगे और अहकार के कारण प्राप्त होने वाली हीनतर स्थिति के साथ उसका मिलान

करेंगे तो अहंकार के दोष आपकी समझ में आजाएंगे। शास्त्र मे कहा है—

माणं मद्दवया जिणे ।

अर्थात्—मृदुता धारण करके अभिमान को जीतना चाहिए।

मृदुता का मतलब है कोमलता, नम्रता। आपको अपनी चित्तवृत्ति मे नम्रता धारण करनी चाहिए। जब कभी अहंकार का उदय होने लगे तो अपनी अपेक्षा जो बडे हैं, उनके विषय में विचार करो। धन का अभिमान हो तो यह सोचो कि ससार में एक से एक बड़े धनवान हैं। मैं उनके सामने क्या चीज हू? ज्ञान का अभिमान जागृत हो तो सोचना चाहिए कि आत्मा में अनन्तज्ञान की शक्ति है। मैं केवलज्ञान स्वरूप आत्मा हूं। उस ज्ञान की तुलना मे मेरा ज्ञान तुच्छ--अति तुच्छ है! मैं इतना अल्पज्ञानी होते हुए कैसे अभिमान करूं? और फिर दुनिया में कितने बड़े बड़े ज्ञानी मौजूद है। मैं तो उनका भी मुकाबिला नहीं कर सकता!

इस प्रकार जिस बात को लेकर अहंकार उत्पन्न हो, उसी के सम्बन्ध मे विचार करने से अहकार मिटेगा और चित्त में शान्ति होगी। जो मनुष्य विनम्र या विनयशील होता है, उसे सर्वत्र सत्कार और स्नेह मिलता है। शास्त्रो मे बड़े विस्तार के साथ विनय का वर्णन किया गया है और कहा गया है—

विवत्ती अविणीयस्स, सम्पत्ती विणियस्स च ।

अविनीत पुरुष विपत्ति का भाजन होता है और विनीत को सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। अतएव अगर आप विपत्ति से बचकर संपत्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो विनीतभाव धारण करो। इससे आपका जीवन उज्ज्वल बनेगा, शान्त बनेगा, प्रसादपूर्ण बनेगा और भविष्य भी मंगलमय बनेगा। आप अहंकार करके जो आनन्द नही पा सकते, वह आनन्द आपको विनयशील होने पर मिलेगा। विनयवान् पुरुष की आत्मा मे सद्गुणो का विकास होता है। उसकी कीर्त्ति होती है और वह इह भव मे तथा परभव में भी सुखी होता है।

अगर तुम्हारा अन्तःकरण विनय से विभूषित होगा तो उसमे धर्म का मधुर फल देने वाला अंकुर अपने आप ही अंकुरित हो जायगा। और यह बात मैं कई बार दोहरा चुका हू कि संसारी जीवो की रक्षा धर्म से ही होती है। अगर धर्म की पूंजी तुम्हारे पल्ले बंधी है तो तुम्हारे रक्षक और सहायक अनेक मिल जाएँगे और यदि धर्म नही है तो कोई भी बचाने वाला नहीं मिलेगा। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन होने के तत्काल बाद जो दंगे हुए, जो मारकाट हुई, रक्त बहा, स्त्रियों और बच्चों के साथ जो नृशंस व्यवहार हुए, और उन्हे कोई बचाने वाला नही मिला, यह सब क्या वस्तु है? गहराई मे पैठ कर देखोगे तो पता चलेगा कि भले ही वह मारकाट धर्म के नाम पर हुई हो, मगर वास्तव मे उसका कारण धर्म का अभाव ही है। धर्म तो रक्षा करने वाला है, मारने वाला नही, बल्कि धर्म ही रक्षा करने वाला है। 'धर्मो रक्षति रक्षित.' अगर तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। इसलिए तुम रक्षा की जड़ को पकड़ो। लोग कहते है—

हम खाएं पीएं मौज करे, व्यापार करें नित गल्ले का।
सामायिक पौषध प्रतिक्रमण, करना है काम निठल्ले का।।

कोई कहता है – चलो भाई, सामायिक कर लें। तो वह कहता है–हमे तो व्यापार करना है, खाना पीना है, दुकान चलाना है। जो किसी काम के नही हैं, जो निठल्ले हैं। वे राम–राम जपे, सामायिक करें! मगर यह याद रख तेरी ऐसी दशा बिगडेगी कि कोई रक्षा करने वाला भी नही मिलेगा!

अगर तेरे मन मे तनिक भी विवेक है, समझ है और अपनी भलाई करने की इच्छा है तो तुझे कहना चाहिए.—

धम्मं सरणं गच्छामि।

अर्थात्—मैं धर्म की शरण मे जाता हूं। क्योकि ससार में धर्म ही एकमात्र शरणागतप्रतिपाल है।

भाइयों! रात को सो रहा था तो मुझे एक स्वप्न आया। उसे तुम भी सुनोः—

श्रोता सांभलो, कहूँ सपना को विचार।
एक दिन सूतो रैन मे, हुओ सपनो इस प्रकार
वन मे देखी सुन्दरी, थी इन्द्रानी अनुहार।।

मैंने जगल मे एक बहुत खूबसूरत सुन्दरी स्त्री देखी। उसके सभी अंग बहुत सुन्दर थे और वह नवयुवती थी। मेरी निगाह उस पर पड़ी। उसके शरीर पर एक भी आभूषण नही था, फिर

भी उसकी शोभा में किसी प्रकार की कमी नही मालूम होती थी। उधर से एक राजा घोड़े पर सवार हुआ आया। उस सुन्दरी पर उसकी भी निगाह पड़ी:—

आया भूपति उसी समय, हो घोड़े पर असवार।
सुन्दर सुन्दर देख ने, तस जाग्यौ कामविकार ।।

राजा ने उसकी तरफ दृष्टि डाली तो उसके परिणामों में विकार उत्पन्न हो गया। कामान्ध होकर उसने सोचा—मैं इसे अपनी स्त्री बना लूँ तो अच्छा हो।

अश्व दौड़ायो पकड़वा, है मोह को काम करार।

यह सोचकर राजा ने उसे पकडने के लिए उसकी ओर घोडा दौडाया। मोहान्ध पुरुष को उचित-अनुचित का, ऊँच-नीच का कुछ भी विवेक नही रहता। वह बेभान होकर अपनी स्थिति का कुछ भी खयाल न करके काम पर बैठता है।

नारी धर्म निज राखवा, वो भागी विपिन मंझार।

राजा को अपनी ओर आता देखकर वह स्त्री समझ गई कि यह दुष्ट मेरे धर्म को हानि पहुँचाएगा। यह सोचकर वह अपना धर्म बचाने के लिए जगल मे भागी। वह मन ही मन ईश्वर का नाम रटती जाती है और भागती जाती है। राजा भी उसके पीछे भाग रहा है।

नदी पूर आड़ो मिली, वह थलवत् उतरी पार।

स्त्री अपने धर्म की रक्षा करने के पवित्र आशय से भाग

रही है तो धर्म भी उसकी रक्षा कर रहा है। काँटे उसके पैरों के तले आते हैं, मगर उसे चुभते नहीं हैं। भाग्य की बात समझिए कि आगे जाने पर नदी सामने आ गई। उसमें भी पूर आ रहा था। उसे देखकर क्षण भर उसे अत्यन्त ही निराशा हुई। वह सोचने लगी-अब मैं किधर भागूँ ? फिर भी धर्म की रक्षा तो करनी ही है। धर्म की रक्षा करते अगर प्राण भी चले जाएँ तो हानि नहीं, मगर जीते जी धर्म का परित्याग नहीं करूँगी। मरूँगी तो धर्म की रक्षा करती हुई ही मरूँगी। धर्मरक्षा के लिए मर जाना श्रेष्ठ है, धर्म गँवा कर जीना भी निकृष्ट है। तत्काल इस प्रकार विचारकर और भगवान् का नाम लेकर वह नदी में घुस पड़ी ! आश्चर्य की बात है कि उसके तलुवों में तो पानी लगता है, मगर वह डूबती नहीं है ! भाई, शील का प्रभाव बड़ा जबर्दस्त होता है। शील के प्रभाव से जल थल बन जाता है, आग पानी बन जाती है, साँप पुष्पमाला बन जाता है और शूली भी सिंहासन का रूप धारण कर लेती है !

उस स्त्री को नदी में घुस कर सकुशल परले पार जाते देख राजा ने समझा कि पानी ज्यादा नहीं है। अतः वह भी नदी में घुस पड़ा—

अश्व सहित नृप नदी में, डूब गयो तिण वार

कामान्ध राजा ने घोड़े को ज्यों ही नदी में उतारा कि वह पूर में बह गया और मर गया। स्त्री ने यह दृश्य देखकर सोचा—जिस पूर ने राजा को बहाकर मार डाला, वह मुझे क्यों नहीं मार सका ? अगर पुर-मारने वाला होता तो मुझे भी मार डालता

और बचाने वाला होता तो राजा को भी बचा देता ! अतएव यही निश्चय होता है कि वास्तव में धर्म ही रक्षा करने वाला है। जो धर्म का नाश करता है, वह स्वय नष्ट हो जाता है और जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी रक्षा होती है।

पापी डूबे सागर में, धर्मी उतरे पार ।

स्त्री कहती है—पापी ससार-समुद्र में डूबेगा और धर्मी पार उतर जाएगे। अतएव धर्म ही शरणभूत है । वही मुझे तारेगा।

स्वप्न में यह दृश्य देखने के बाद मेरी नीद टूट गई:—

चौथमल नया शहर में, कहे कुन्दनभवन मझार ।
चार साल दूजा सावन मे, सपना की जोड़ी ढाल ।।

मुझको ऐसा सपना आया, उस पर मैंने भजन बनाया। इस पर से आपको धर्म की महिमा समझकर उसकी आराधना करनी चाहिए। ससारी जीवो के लिए एक मात्र धर्म ही शरणभूत है। धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, हाथी-घोडा आदि कोई भी वस्तु शरण दायक नही होती। धर्म से ही सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। आचार्य हरिभद्रजी ने कहा है—

धम्मेण कुलपसूई, धम्मेण य दिव्यरूवसपत्ती ।
धम्मेण धणसमिद्धी, धम्मेण सुवित्थडा कित्ती ।
धम्मो मंगलमउलं ओसहमउल च सव्वदुक्खाण ।
धम्मो बलमवि विउल, धम्मो ताणं च सरणं च ।।

अर्थात् - धर्म के प्रभाव से ही सुसंस्कारों से परिपूर्ण, उत्तम वातावरण वाले सत्कुल में जन्म प्राप्त होता है, धर्म के प्रताप से ही देवापम रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। धर्म के फलस्वरूप ही धन एव ऋद्धि मिलती है और धर्म का आचरण करने से ही विस्तृत कीर्ति होती है।

धर्म अनुपम मंगल है। धर्म समस्त दुःखों की अनुपम औषध है। धर्म का बल ही सच्चा और अतुल बल है। धम ही रक्षक है और धर्म ही शरणभूत है।

इसके आगे फिर वही कहते हैं:—

किं जंपिएण वहुणा ज जं दीसइ समत्तजियलोए।
इन्दियमणाभिरामं, त तं धम्मप्फल सव्वं ॥

धर्म के माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है? इस संम्पूर्ण जीव लोक मे इन्द्रियो को और मन को प्रिय प्रतीत होने वाले जितने भी पदार्थ हैं, वे सब धर्म के ही फल हैं। अर्थात् जीवो को जो भी इष्ट वस्तु प्राप्त होती है, वह धर्म का ही फल समझना चाहिए।

भीममि मरण काले, मोत्तूणं दुक्खसविढत्तं पि।
अत्थं देह सयणं, धम्मो च्चिय होइ सुसहाओ ॥

संसार की सुख देने वाली सामग्री बहुत कष्ट से उपार्जित की जाती है। उसमे धन, शरीर और स्वजन सभी सम्मिलित है। यह सब सुख देने वाले हो तो भी जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तभी तक साथ देते हैं। मृत्यु के भयानक अवसर पर इनमें से

कोई भी साथ नहीं देता। उस समय एक मात्र धर्म ही साथी बनता है।

इस प्रकार धर्म इहभव में भी और परभव में भी हितकारी और सुखकारी है। आप जिन पदार्थों को सुखदायी समझते हैं वे स्वयं आपके पास नही आ गये हैं। उन्हें आपके पास लाने वाला धर्म ही है। ऐसी हालत में कौन विवेकवान् व्यक्ति धर्म को त्याग कर धन आदि को ग्रहण करना चाहेगा ? धर्म की उपेक्षा करके धन की आराधना करना वैसा ही मूर्खतापूर्ण है, जैसे किसी वृक्ष के मधुर फल पाने के लिए उसके मूल में पानी न सींच कर पत्तों पर पानी छिटकना ! अरे भाई, पत्तों पर पानी छिटकने से और मूल को भूल जाने से मधुर फल नहीं मिल सकते ! इसी प्रकार इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के मूल कारण धर्म की उपेक्षा करके धनादि की अभिलाषा करना भी मूर्खतापूर्ण है।

धर्म अनुपम सुख और शान्ति प्रदान करने वाला है। सभी अभिलाषित वस्तुएं धर्म से ही प्राप्त होती हैं और धर्म से निर्वाण का अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

भाइयो ! अगर आपको विश्वास है तो क्यों धर्माचरण करने में प्रमाद करते हो ? दुनिया की चीजो को जितना चाहते हो कम से कम उतना तो धर्म को भी चाहो ! मगर तुम तो धर्म को भूल ही जाते हो और दुनियां की दौलत के पीछे पड़ जाते हो ! तुम नही समझते कि मूल उखड़ जायगा तो डालियां और पत्ते हरे-भरे कैसे रह सकते हैं ? जिसने अपना धर्म गँवा दिया, समझ लो उसने सभी कुछ गँवा दिया और जिसने धर्म बचा

लिया उसने सभी कुछ बचा लिया। अतएव, हे भद्र पुरुषों ! और महिलाओ ! मैं कहता हूं कि अगर तुम सचमुच सुख चाहते हो तो सुख के मूल की—धर्म की—रक्षा करो। उसे चाहो।

जम्बूकुमार की कथा—

जम्बूकुमार ने इस रहस्य को भली भांति समझ लिया था। अतएव जबर्दस्त कठिनाइयां आने पर भी उन्होने धर्मपथ पर चलने के अपने सुदृढ संकल्प को स्थिर रक्खा। लोक मे कहावत है जहा चाह वहाँ राह ! इसका तात्पर्य यह है कि जिस काम को करने की प्रबल भावना हृदय मे उत्पन्न होगी, उसे सम्पन्न करने का मार्ग निकल ही आएगा। मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति पर कोई भी काम दुस्साध्य नही। जम्बूकुमार की सयम धारण करने की इच्छा अत्यन्त बलवती थी तो वह पूर्ण होकर ही रही।

सारा राजगृह नगर आज एक ऐसा दृश्य देखकर प्रमोद भाव मे डूबा है जो कदाचित् ही दिखलाई देता है। समस्त धार्मिक जनो के मुख से जम्बूकुमार के लिए वाह-वाह के शब्द ही निकल रहे हैं। आहा ! आज जम्बूकुमार पाच सौ सत्ताईस जनो के परिवार के साथ ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर स्वामी के धर्म की आराधना करने जा रहे है ! सुधर्मा स्वामी के धर्म की आराधना करने जा रहे हैं ! सुधर्मा स्वामी के शिष्य बन रहे हैं। श्रीसुधर्मा स्वामी कैसे थे ?

चौदहजी पूरव धार कहिये, ज्ञान चार वखानिये।
जिन नही पर जिन सरीखा, एवा सुधर्मा स्वामी जानिये ।।

आचार्य सुधर्मा स्वामी चौदह पूर्व के पाठी, द्वादशांगी के ज्ञाता और चार ज्ञान के धनी थे। वे अरिहन्त तो नहीं थे, फिर भी अरिहन्त के ही समान थे। क्या उनकी प्रशंसा की जाय ?

पूज्य उदयसागरजी महाराज की बात है। उनका शरीर बड़ा ही सुन्दर और विशाल था। वे खड़े हुए थे। देवीलालजी महाराज टकटकी लगाकर उनकी शरीर-सम्पत्ति को देख रहे थे। इधर पूज्य महाराज की निगाह भी उन पर पड़ी। महाराज ने पूछा—क्या देख रहे हो देवीलालजी ?

देवीलालजी महाराज ने उत्तर दिया—मैं यह देख रहा हूं कि आप ही ऐसे हैं तो सुधर्मा स्वामी कैसे होंगे ?

पूज्य महाराज ने किंचित् मुस्करा कर कहा—कहां सुधर्मा स्वामी और कहां मैं ? वे धन्य हैं सुधर्मा स्वामी ! मैं उनकी तुलना में क्या हूं ! उनकी होड़ कौन कर सकता है ? उनका प्रभाव तो ऐसा था कि जिस प्रदेश में पांव रक्खे, वहाँ के सारे विघ्न दूर हो जाएं ! वे महान् भाग्यवान् थे ! इत्यादि कहकर पूज्य श्री ने सुधर्मा स्वामी का गुणगान किया !

उस समय भगवान महावीर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। पांचवा आरा लगा ही था। तब का यह वृत्तान्त है।

जम्बूकुमार अपने साथियों के साथ उसी वन में पहुँचे, जहां सुधर्मा स्वामी विराजमान थे। सब सवारी से नीचे उतरे और मुंह के सामने पल्ला लगा कर सुधर्मा स्वामी की सेवा में पहुंचे। सब ने यथाविधि वन्दना की और फिर हाथ जोडकर कहा—गुरुदेव ! हम लोगों को साधु दीक्षा देकर अपने चरणों की

शरण मे लीजिए और साधुधर्म की शिक्षा दीजिए। अनुग्रह करके इस भीषण ससार-सागर से हमारा उद्धार कीजिए। भंते ! ससार मे परिभ्रमण करते करते और जन्म, जरा, मरण की दुस्सह वेदनाए सहते-सहते हम ऊब गये हैं। अब उनसे छुटकारा पाने का हमने निश्चय किया है कृपाकर हमारी सहायता कीजिए। प्रभो ! हमारे सिर पर आप अपना वरद हस्त रखिए। जगत की विविध भाँति की आधियो, व्याधियो, और उपाधियो से हमारा त्राण कीजिए। हमारे मानव-जीवन को कृतार्थ कीजिए। गुरु महाराज ! पतितो को पावन करने वाले आप है, अज्ञान को हरने वाले आप हैं, मुक्ति में पहुँचाने वाले आप है ! हमे भव-भव का दुखिया जानकर अपने चरणो मे आश्रय दीजिये। हम आपके चरण-कमलो के मधुकर बनना चाहते है। भगवन् ! हमारे पाप विशाल हैं मगर आपका प्रताप उनसे भी अधिक विशाल है। आपके प्रताप से वे सब भस्म हो जाए गे। अतएव हमें दीक्षा प्रदान कीजिए।

सुधर्मा स्वामी ने फर्माया—देवो के प्यारे ! आप सब का संकल्प विशुद्ध है। आपकी भावना पावन है। निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान् का उपदेश मंगलकारी है। वह समस्त दु.खो का अन्त करने वाला है। जिन देव के उपदेश से अनन्त जीवो ने प्रेरणा पाई है, कल्याण-साधन किया है और मुक्ति प्राप्त की है। आप भगवान् के धर्म की शरण में आना चाहते हैं, यह उचित हैं। जन्म-मरण से बचने का यही मार्ग है। भव्य जीवो को ऐसा अवसर पाकर अवश्य आत्मकल्याण करना चाहिए। मैं स्वयं प्रभु के मार्ग का साधक हूं और यथासभव आपकी सहायता

करूँगा । मुझमें जो भी शक्ति है, वह मेरी अपनी नहीं. भगवान् की ही शक्ति है हां, यह समझ लेना आवश्यक है कि कोई किसी को तार या उबार नहीं सकता । अपने ही प्रयत्न से साधक को उबरना-तरना होता है । दूसरे सहायक या पथप्रदर्शक मात्र हो सकते हैं । आपको अपने ही अनुष्ठान द्वारा तरना है । आप चाहते हैं तो श्रमणसंघ मे आपको स्थान मिलेगा । भगवान के संघ मे प्राणी मात्र को समान स्थान मिलता है । संघ के द्वार सबके लिए खुले हैं । जिसकी आत्मकल्याण करने की इच्छा हो, आवे और साधना करे । उसके पुरुषार्थ के अनुकूल ही उसे सिद्धि प्राप्त होगी । आप सब के लिए भी संघ के द्वार खुले हैं ।

इस प्रकार सुधर्मा स्वामी की अनुमति मिल जाने पर जम्बूकुमार आदि सब ईशानकोण में गये । वहां जाकर सब ने अपने वस्त्र और आभूषण उतारे और साधु वेष धारण किया । फिर सुधर्मा स्वामी के समीप आये । स्वामीजी ने 'करेमि भंते !' के पाठ से ५२७ जनो को यावज्जीवन सामायिकव्रत अगीकार कराया ।

दीक्षा हो चुकने पर सुधर्मा स्वामी ने कहा—तुम सब ने दीक्षा तो ले ली है, पर इसका पालन किस प्रकार करोगे ? उन्होंने इस सम्बन्ध मे सेठ की चार वहुओं का उदाहरण दिया:—

एक सेठ के चार लड़के थे और चारों की चार वहुएं थी । सेठ ने सोचा—मेरा बुढ़ापा आ रहा है । मैं घर की झंझटों से निवृत्त होना चाहता हू, मगर घर का भीतर का भार किस बहू को सौंपना उचित होगा ? चारो में कौन किस काम के योग्य है,

इस बात को जान लेना उचित है। यह सोचकर उसने अपने कुटुम्ब-परिवार के लोगो को बुलवाया। उन सब को एक भोज दिया और उन्ही के सामने अपनी चारों बहुओ को बुलाकर सब को शालि के पांच-पांच दाने दिये। उनसे कहा—यह दाने अपने पास रहने दो, जब मैं मांगू, मुझे वापिस लौटा देना।

चारों बहुएं दाने लेकर चली गई। सबसे बडी बहू नें विचार किया—इन दानों को संभालकर रखने की क्या आवश्यकता है? मामूली शाली के पाच दाने हैं घर में शालि का ढेर है। पिताजी माँगेंगे तो कही से पांच दाने उठा कर दे दूगी। यह सोचकर उसने वे दाने फेंक दिये।

दूसरी बहू ने सोचा—यह पांच दाने सुसरजी की प्रसादी है। इन्हें फेंक देना योग्य नही है। उन्होने अपने हाथ से, बहुत लोगों के समक्ष यह दाने दिये हैं। यह सोचकर उसने वह दाने खा लिये।

तीसरी ने विचार किया—पिताजी ने दाने वापिस मागने पर लौटा देने के लिए कहा है। इन्हे फेंक देना या खा जाना ठीक नहीं है। ऐसा करने पर इन्हे वापिस कैसे लौटा सकूगी? यह विचार कर उसने वह पांचों दाने सभाल कर एक डिब्बी मे बद करके हिफाजत से रख लिये।

चौथी बहू सब से छोटी थी, मगर सबसे ज्यादा बुद्धिमती भी थी। उसने विचार किया—सुसर जी ने कुटुम्ब-परिवार को बुलाकर और भोज का आयोजन करके, सब के सामने यह दाने दिये हैं यह कोई बड़ी कीमती चीज नही थी कि संभालने को

आवश्यकता होती। फिर भी जब संभालकर रखने का आदेश दिया गया तो अवश्य ही इसमें कोई न कोई रहस्य है। ऐसा विचार करके उसने मायके से अपने भाई को बुलवाया। उसे वे पाँचो दाने देकर कहा-इन्हे लेजाकर खेत में बो देना। जिससे दाने पैदा हो, उन्हे अलग रखना और अगले वर्ष फिर उन सब को बो देना। इस बीच अगर मैं इन्हे न मांगूं तो फिर सब को बो देना।

पांच वर्ष बीत गये। सेठ ने फिर अपने उन्ही कुटुम्ब-परिवार के लोगो को बुलाया। उन्हे फिर भोज दिया। फिर बहुओं को बुलाकर अपने दिये हुए दाने मागे। पहली ने फेंक देने की और दूसरी ने खा जाने की बात कही। तीसरी ने अपनी डिबिया में से निकालकर दाने वापिस ला दिये। चौथी ने कहा पिताजी मेरे मायके मे पाच-दस गाडी भेजी जाएँ तो वे दाने आ सकते हैं। सेठ ने कहा-पाँच दाने लाने के लिए दस-पाच गाड़ियाँ भेजने की क्या आवश्यकता है? तब छोटी बहू ने सारा वृत्तांत बतलाया। सेठ ने गाडियाँ भेजी और उनमें वह सब शालि भर कर आ गये। यह देख सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सभी ने उसकी बुद्धि की सराहना की।

इसके बाद सेठ ने बडी वहु को झाडने-बुहारने का और दूसरी को भोजन-व्यवस्था का काम सौपा। तीसरी बहू को तिजोरियो की चाबियां सौंप दी और अर्थव्यवस्था करने का भार उस पर रक्खा। चौथी से कहा कि तू सब के काम-काज का निरीक्षण करना।

इस प्रकार, हे शिष्यों ! मैंने तुम्हे पांच महाव्रत रूप जो दाने दिये हैं इन्हें उपेक्षा करके नष्ट मत कर देना और खानपान मे लालची बनकर भी इन्हे मत गँवा देना। कम से कम इन्हें सुरक्षित अवश्य रखना, यद्यपि उचित तो यही है कि इन्हे बढाने का प्रयत्न करना। जो साधु पाँच महाव्रतों को लेकर फेंक देता हैं नष्ट कर देता है, वह कचरा-कूडा निकालने योग्य है। जो खान-पान मे आसक्त रहता है, वह मोक्ष नहीं पाता। जो अपने व्रतों को सुरक्षित रखता है, वह मोक्ष का अधिकारी होता है और जो उन्हें बढाता है, वह जल्दी ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भाइयो ! सुधर्मास्वामी का कथन सुनकर आप भी इससे लाभ उठाइए। जब कभी भी आप नियम, व्रत प्रत्याख्यान, त्याग आदि करे तो उसका दृढता के साथ पालन करें। स्वीकार की हुई प्रतिज्ञा को भग कर देना अत्यन्त अनुचित है। ऐसा करने से घोर पाप का बंध होता है। प्रतिज्ञा ग्रहण करते समय अपनी शक्ति को तोल लें, अपने मन को जांच ले। फिर उसे दृढ करके प्रतिज्ञा ले। मगर एक बार प्रतिज्ञा लेकर फिर उसे भग नही होने देना चाहिए। प्राण देकर भी प्रतिज्ञा का पालन करने वाले वीर ही यश और सुख के भागी होते हैं। अतएव आप प्रतिज्ञा भग के पाप से बचने का सदैव प्रयत्न करते रहे।

सुधर्मा स्वामी की शिक्षा सुनकर जम्बूकुमार ने कहा—भगवान् ! मैं जीवन पर्यन्त बेले-बेले पारणा करना चाहता हू। मुझे ऐसी प्रतिज्ञा करा दीजिए।

इस प्रकार वे तपस्या करते हुए गुरु की सेवा में रहने लगे। समितियों और गुप्तियो का पालन करते हुए नौकल्पी विहार

करने लगे। जम्बूकुमार स्वभाव से ही विनीत थे। वे रात-दिन गुरु की सेवा करते थे ।

कुछ दिन व्यतीत होने पर सुधर्मा स्वामी का अन्तिम समय आ पहुँचा। उन्होने संथारा लिया। केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और अन्त मे मोक्ष पधार गये। उनके पाट पर जम्बू स्वामी विराजमान हुए ।

माात पिता कुल जाति निर्मल, रूप अनूप बखानिए ।
देवता ने वल्लभ लागे, एवा श्री जम्बू स्वामी जानिए ।।

जम्बू स्वामी ऐसे थे ! उनकी गुणगाथा कहां तक गाई जाय? उनका त्याग, उनका वैराग्य, उनका ज्ञान-ध्यान, सभी कुछ आदर्श था। जहां वे पधारते, भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। जम्बू स्वामी स्वय अत्यन्त उज्ज्वल करनी करने में दत्तचित रहते और अन्य मुनियों को भी सयम साधना में सहायता पहुंचाते थे। उज्ज्वल और उत्कृष्ट चारित्र की आराधना करते-करते आखिर उन्हे भी केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। वे भी अनन्तज्ञानी हो गये। जैसे महावीर स्वामी थे, वैसे ही सुधर्मा स्वामी हो गये और वैसे ही उनके शिष्य जम्बूस्वमी हो गये। जम्बू स्वामी ने पंचम काल मे भव्य जीवों का महान् कल्याण किया। अन्त मे शरीर त्याग कर वे भी सदा के लिए अशरीरी हो गये।

जम्बूस्वामी के अनन्तर उनके पाट पर प्रभव स्वामी विराजमान हुए। किसी जमाने मे जो चोर और लुटेरे थे, जिनके हृदय मे दया का लैश भी नही था। वही प्रभव आज भगवान महावीर के पाट पर सुशोभित हैं ! भाइयो ! यह धर्म का ही महान् प्रभाव

है। धर्म के प्रताप से बडे पापात्मा भी धर्मात्मा बन जाते हैं। धर्म वह पारस है, जिसके संसर्ग से लोहा भी सोना बन जाता है। प्रभव स्वामी ने भी धर्म को खूब दिपाया।

इस प्रकार जम्बू स्वामी सोलह वर्ष की उम्र तक गृहस्थावस्था मे रहे। सोलहवे वर्ष मे उनका विवाह हुआ। उसी समय दीक्षित होकर बीस वर्ष तक केवली रह कर अस्सी वर्ष की कुल आयु पूर्ण करके निर्वाण को प्राप्त हुए।

जम्बूस्वामी की ढाल का भाव सुनाने में किसी वृतांत को कहने सुनने मे कोई प्रमाद हुआ हो तो "मिच्छामि दुक्कड़" देता हूं।

६-१०-४८ }





शील

स्तुतिः—



चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलित कदाचित् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! अगर देवांगनाएँ भी आपके मन में लेश मात्र भी विकार न उत्पन्न कर सकीं तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या

है ? पर्वतों को हिला देने वाली प्रलयकालीन हवा से भी क्या कभी सुमेरु पर्वत हिल सकता है ? नही, कदापि नही जैसे कल्पान्त की वायु भी सुमेरु को नही हिला सकती, उसी प्रकार स्वर्ग लोक की असाधारण सुन्दरी देवागनाएँ भी भगवान् आदिनाथ के चित्त को चचल नहीं कर सकी।

भाइयो ! संसार में प्राणी मात्र को संकट में डालने वाला दारुण दुःख देने वाला आवागमन के चक्र मे फँसाये रखने वाला और दुर्दशा करने वाला कामविकार ही मुख्य है। यह भोग-विलास आत्मा के प्रबल शत्रु हैं। क्या देवता, क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी आदि तिर्यञ्च– सभी इस कामविकार से ग्रस्त हैं। बड़े-बड़े शूरवीर, हजारो, लाखो और करोडो पर शासन करने वाले, कामविकार के गुलाम बनकर अपने जीवन को नष्ट कर डालते हैं। मगर भगवान् ऋषभदेव ने सर्वप्रथम अपने मन को और इन्द्रियो को ही वशीभूत किया।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं—(१) द्रव्येन्द्रिय (२) भावेन्द्रिय। कान, आंख, नाक, जीभ और शरीर, यह दिखने वाली, पुद्गलो से बनी हुई पांच द्रव्येन्द्रिय कहलाती हैं। इनके द्वारा सुनने, देखने सूंघने, चखने और छूने की शक्ति भावेन्द्रिय कहलाती हैं। द्रव्येन्द्रियां पुद्गलद्रव्य का विकार हैं और भावेन्द्रिया आत्मा की शक्तिविशेष हैं। द्रव्येन्द्रियां अरिहन्त भगवान् की भी ज्यों की त्यों बनी रहती है, मगर वे विकार में प्रवृत्त नही होती। भगवान् की भावेन्द्रियां केवलज्ञान के रूप मे परिणत हो जाती हैं। अर्थात् केवलज्ञान के द्वारा ही भगवान् सब कुछ जानते और देखते हैं।

उन्हें इन्द्रियों की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती। इन्द्रियों के द्वारा जानने वाले अल्पज्ञ होते हैं।

आशय यह है कि अगर संसार में स्त्रियों न होतीं तो सब जीव मोक्ष में चले जाते मगर यह बात ठीक नही है। स्त्रियां न होती तो फिर पुरुष आते ही कहां से ? वास्तव में स्त्री मोक्ष में बाधक नही है, बाधक है कामविकार। अतएव काम-विकार को ही जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। इस विकार को पूर्ण रूप से जीतने वाले भगवान् ऋषभदेव हैं। उनको हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयों ! इन विषयभोगों के चक्कर में पड कर जीव की कैसी दुर्दशा होती है, यह बात कौन नही जानता ? संसार की समस्त आपत्तियो का मूल विषयभोगों की तृष्णा ही है। इसके फंदे में फंस कर कई बड़े-बड़े राजाओ ने अपना राज्य गंवा दिया, कइयों ने अपने प्राण भी दे दिये। पुराणों और इतिहास की बात जाने भी दें और अभी ताजा जमाने की घटनाओ पर ही ध्यान दे तो भी यह सच्चाई सूर्य की तरह चमकती हुई प्रतीत होती है। पिछले दिनों इन्दौर के राजा को इन्ही भोगो की बदौलत ही राज-गद्दी त्यागनी पडी थी। इंग्लैण्ड के बादशाह सप्तम एडवर्ड ने भी कामानुराग के कारण ही विशाल साम्राज्य का त्याग किया। एक साधारण श्रेणी की स्त्री के साथ उसकी प्रीति हो गई। उसने उसके साथ विवाह करने का पक्का इरादा कर लिया। मगर उस समय के प्रधानमंत्री बाल्डविन इस सम्बन्ध के विरोधी थे। पार्लीमेंट ने भी विरोध किया। उसे सूचना दे दी गई कि तुम बादशाह को हैसियत से उस स्त्री के साथ शादी नही कर सकते। मगर

एडवर्ड अपने विचार पर दृढ रहा। उसने कहा—राज्य त्यागना पडे तो त्याग दूंगा, मगर शादी उससे अवश्य करूंगा। अन्त में यही हुआ। उसने राज्य त्याग करके भी उस स्त्री, जिसका नाम सिम्पसन है, शादी की।

पुराने जमाने के भी ऐसे अनेक किस्से हैं, जिन्हें आप सुन चुके है। रावण का वृत्तान्त तो प्रसिद्ध ही है। उसने राज्य ही नहीं गँवाया, अपने परिवार का भी क्षय किया और प्राण भी दे दिये। सचमुच, कामविकार का प्रभाव बहुत व्यापक है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

नारी–विवस नर सकल गुसांई।
नाचत नर मरकट की नाई॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जब पुरुष पूर्ण रूप से स्त्री के वश में हो जाता है तो स्त्री उसे उसी प्रकार नचाती है जैसे मदारी बन्दरिया को नचाता है। दुनियाँ मे दो चीजें जबर्दस्त हैं:—

एक कनक दूजी कामिनी, ये दोनों हैं खाड़।
राजा राणा बादशा, पड़–पड़ फोड़्या हाड़॥

और:—

एक कनक दूजी कामिनी, ये दोनों है तलवार।
उठिया तो हरिभजन को बीच हि लीना मार॥

कई लोग घर–बार छोड कर साधु सन्यासी बाबा बने, किन्तु कनक और कामिनी ने उन्हे वापिस घर मे ले जाकर बिठला

दिया। एक श्रृङ्गी ऋषि हो गये हैं।--कहते हैं,--वे बड़े तपस्वी थे। जंगल में पत्ते खाकर दिन निकालते थे। इनकी तपस्या को देखकर एक राजा के हृदय मे ईर्षाभाव उत्पन्न हुआ। यद्यपि श्रृङ्गी ऋषि ने राजा का कुछ बिगाड नही किया था और उनकी तपस्या से भी उसका कुछ बिगड़ने वाला नही था, फिर भी उसके दिल में अकारण ही जलन पैदा हो गई। इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है। दुनिया मे सभी तरह के लोग मौजूद हैं। कोई कोई अपने स्वार्थ मे बाधा पहुँचा करके भी परोपकार करते हैं, कोई अपना और पर का दोनो का प्रयोजन साधते हैं, अर्थात् वे अपने स्वार्थ मे बाधा नहीं पड़ने देते फिर भी यथासंभव परोपकार करते हैं। कोई अपने स्वार्थसाधन के लिए दूसरे के स्वार्थ मे बाधक होते हैं। नीतिकार इन्हें क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम पुरुष कहते हैं। किन्तु जो लोग बिना मतलब ही—अपना कोई स्वार्थ न होने पर भी परार्थ में बाधक होते हैं, उनके विषय मे नीतिकार कहते हैं कि 'ते के न जानीमहे' अर्थात् यही समझ में नहीं आता कि उन्हें क्या कहा जाय ? ऐसे लोग तो अधमों मे भी अधम है !

राजा को श्रृंगी ऋषि के प्रति ईर्षाभाव उत्पन्न हुआ तो उसने एक दिन अपनी सभा में कहा क्या कोई है ऐसा जो उस तापस को तपस्या से भ्रष्ट कर सकता है ? सभा मे उपस्थित सभासदो मे से किसी की हिम्मत न हुई कि वह ऋषि को भ्रष्ट करने का उत्तरदायित्व अपने माथे पर ले।

यह समाचार एक वेश्या के पास पहुँचा। उसने राजा से कहा--महाराज ! आज्ञा हो तो मैं उस तापस को भ्रष्ट कर सकती हूं।

गालियां सहन की जा सकती है, कटुक वचन भी सहे जा सकते हैं. भूख और प्यास की तीव्र वेदना भी बर्दाश्त की जा सकती है, सर्दी-गर्मी को सहन कर लेना भी अधिक कठिन नही है, मगर स्त्रीपरीषह को सहन कर लेना अत्यन्त कठिन है। बड़े बड़े समर-विजेता स्मर (काम) के वशीभूत होकर अनायास ही विजित हो जाते हैं।

न हयैर्न च मातङ्गैर्न रथैर्न च पत्तिभि.।
स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव, जीयते जगतां त्रयम् ॥

अर्थात् जिन शूरवीरों पर घोड़ों से, हाथियों से, रथों से और पैदल सेना से विजय प्राप्त नही की जा सकती, वे केवल औरत की तिरछी चितवन से ही पराजित हो जाते हैं। स्त्रियों की तिरछी चितवन ने किसे नही जीत लिया है! कहा भी है—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपिस्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥

कवि कहता है—विश्वामित्र और पराशर आदि-आदि ऋषि जो वायु, पानी अथवा पत्ते खा खाकर तपस्या करते थे वे जब स्त्री का सुन्दर मुख-कमल देखकर मोह के वशीभूत हो गये, तो औरों का तो बात ही क्या है! जो लोग शालि खाते हैं और वह घी ... मिला कर और दही मिला

वे अगर इन्द्रियनिग्रह कर लें तो समझना चाहिए कि विन्ध्य पर्वत समुद्र को तैर गया ! अर्थात्-पौष्टिक भोजन करने वाले इन्द्रियों को नही जीत सकते।

यह स्त्रीपरीषह इतना विकट है ! इसे जीतना बडा जबर्दस्त काम है। इसी श्रद्धा को लेकर वह वेश्या राजा के पास आई। राजा ने शृंगी ऋषि को भ्रष्ट करने के लिए उसे नियुक्त कर दिया। वेश्या अपने तान-तंबूरा आदि सामान लेकर जंगल में गई। उसने ऋषि के सामने अपने मनोमोहक हावभाव दिखला कर बातचीत करना आरम्भ कर दिया। मगर ऋषि ने आंख उठा कर भी उसकी ओर नही देखा। वह अपनी तपस्या में मस्त थे। जब उन्हे भूख लगती तो वे पेड को जीभ लगाकर चाट लेते और फिर तपस्या मे मग्न हो गये।

यह हाल देखकर उस वेश्या ने एक नवीन युक्ति निकाली। ऋषि जिस पेड को, जिस जगह चाटते थे, उस जगह उसने बादाम का हलुवा चुपड दिया। ऋषि उस पेड़ को चाटने लगे तो उसमें मिठास मालूम हुई। ऋषि ने एक बार के बदले दो बार उसे चाटा। धीरे-धीरे चाटने की रफ्तार बढने लगी। ऋषि अब उस वेश्या से बातें भी करने लगे। फिर क्या था ? एक बार जो अपनी मर्यादा से डिगा, उसका फिर ठिकाना नही रहता। लुढकने वाला कहाँ जाकर रुकेगा, यह कौन कह सकता है ? ऋषि की वेश्या के साथ घनिष्ठता बढती गई और उसने शीघ्र ही आसक्ति का रूप धारण कर लिया। कुछ दिनो बाद ऋषि और वेश्या के सम्पर्क से एक बालक का जन्म हुआ।

वेश्या के सामने ऋषि की पराजय हुई। मगर वेश्या को इतने से ही सन्तोष न हुआ। जब तक विजय दूसरो पर प्रकट न हो जाय, तब तक विजय का आनन्द ही क्या ? अतएव वेश्या के आग्रह से एक दिन ऋषि उस बालक का पालना अपने सिर पर रख कर शहर की ओर चले। आगे-आगे ऋषि और पीछे--पीछे वेश्या चली। दोनो रास्ते मे चले जा रहे थे कि सयोगवश नारदजी अकस्मात् ही मिल गये। उन्होने देखा, यह क्या मामला है ? उन्होंने ऋषि से कहा—ऋषिवर ! पालने मे क्या परमब्रह्म को सुला रक्खा है।

शृंङ्गी ऋषि को काटे तो खून नहीं ! लज्जा के मारे वे पानी-पानी हो गये। उनकी आखें खुल गई। अपनी करतूत पर विचार करके उन्हें अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। वही पालना छोड़कर वे जगल की ओर भाग गये।

भाइयों ! भला रोज बादाम का हलुवा खाने वाले क्या खाक ब्रह्मचर्य का पालन कर सकेंगे ? इसी कारण भगवान् ने मुनियों को नित्य पौष्टिक भोजन करने का निषेध किया है। वास्तव में काम--विकार को जीतना बडा कठिन है। जिन भाग्यवान् पुरुषो ने इस विकार पर विजय प्राप्त की है, वे धन्य हैं, वन्दनीय हैं। वे उत्कृष्ट तपस्वी हैं क्योंकि ब्रह्मचर्य सब तपो में उत्तम तप माना गया है।

ब्रह्मचर्य तप की साधना के लिए अंकिचन होना और अलोलुप होना अत्यावश्यक है। जो धन रक्खेगा, उसके पास स्त्री भी आ जायगी। इसी प्रकार जो हमेशा घी, दूध, दही आदि

का सेवन करेगा, वह इन्द्रियों को काबू में नहीं रख सकेगा। उसके पास भी औरत आने लगेगी। दिन को नहीं तो रात्रि को आएगी, प्रकट रूप से नहीं तो गुप्त रूप से आएगी। उसका ब्रह्मचर्य भंग हो जायगा। जिसका ब्रह्मचर्य भंग हुआ उसके सभी व्रत भंग हो जाते हैं। हिंसा करने से, झूठ बोलने से, चोरी करने से या ममता रखने से तो एक ही व्रत का भंग होता है किन्तु ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट होने वाला पांचों महाव्रतों से भ्रष्ट हो जाता है। विषय सेवन से असंख्य जीवों की हिंसा होती है। व्यभिचारी को झूठ बोलना पड़ता है और चोरी का पाप भी लगता है, क्योंकि वह स्त्री उसकी नहीं, दूसरे की है। और ममताभाव की भी वृद्धि होती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का भंग करना समस्त व्रतों का भंग करना है। इसके कारण सैकड़ों पापों का आचरण करना पड़ता है। इस पाप की लम्बी परम्परा चलती रहती है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करने के लिए बड़ी साधना की आवश्यकता होती है। इस दुर्जेय विकार ने किसको अपने कब्जे में नहीं किया है? इसके प्रभाव से बड़े-बड़े हाथी, शेर, कबूतर, कुत्ते और घोड़े भी पागल हो जाते हैं। स्वर्ग में इन्द्राणी नाराज हो जाती है तो देवता उसके पैरों में गिरते हैं। इसीलिए कहा गया है कि जिसने भलीभाँति ब्रह्मचर्य का पालन कर लिया, मानो उसने स्वयंभूरमण समुद्र पार कर लिया।

यह शील व्रत है अर्थ मोक्ष का दाता,
महाराज शील की ओपमा वरणीजी।
तिर गये समुद्र संसार रही एक गंगा तिरनीजी ॥

भाई ! जिसने शीलव्रत धारण कर लिया और उसका निर्वाह कर लिया, उसने मोक्ष का द्वार पा लिया। वह संसार समुद्र तिर गया। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे इसकी बत्तीस उपमाएँ वर्णित की गई हैं। ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ने स्वयभूरमण समुद्र को–जो समस्त समुद्रो से बड़ा है–पार कर लिया, अब इसके लिए सिर्फ गंगा पार करना ही शेष रह गया है।

जो मनुष्य ऐसे महान् महत्त्वशाली ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे अपने रहन-सहन और खान पान के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिए। जीवन मे उसे सादगी धारण करनी चाहिए। बाल जमाना, सुगन्धित साबुन लगाना, इत्र लगाना, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करना और भांति-भांति का शृंगार करना यह सब कामदेव को निमंत्रण देने की ही तैयारी करना है। अतएव अपने मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीते का बिना विषय विकार को जीतना कठिन ही नहीं, अशक्य है। किसी ने कहा है—

शेर नर मारा तो क्या मारा,
कि नफ्स मारा नही तो क्या मारा।

शेर और सांप को अगर मार डाला तो कौन सी बहादुरी की बात हो गई ? मन को नही मारा तो कुछ भी नही मारा। मनुष्य की असली शूरवीरता और असली विजय तो मन को मारने मे ही है। धन्य हैं वे महापुरुष जिन्होने अपने मन को वश मे कर लिया है और जिन्होने कामदेव को जीत लिया है। जिसे धन्य बनना है, जिसे अपने मानवभव से पूरा-पूरा लाभ

उठाना है, जो अनादि काल से चली आ रही दुःखों की परम्परा का उच्छेद करना चाहते हैं, अक्षय सुख मे रमण करने की अभिलाषा रखते हैं. उन्हे शीलव्रत को धारण करना चाहिए। शील-व्रत जैसे पुरुषो के लिए सुखदायी है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी सुखदायक है। अतएव—

ओढ़ो—ओढ़ो री बहिनो शील-चूनणी ।

बहिनों! तुमने बहुत-सी चूनणियाँ ओढी हैं, रेशम की ओढी, गोटा-किनारे की ओढीं, मोटडा की ओढी, मगर उनसे तुम्हारी आत्मा का कुछ भी कल्याण नही हुआ। बल्कि उनसे विकार की वृद्धि हुई और आत्मा का अहित ही हुआ है। इसलिए मेरी सलाह है कि अब तुम शील की चूनणी ओढ़ो। एक बार इस चूनणी को ओढ़ लोगी तो तुम्हारा सौभाग्य जाज्वल्यमान हो उठेगा। तुम्हारा सच्चा सौन्दर्य खिल उठेगा। तुम्हारे रोम-रोम से विलक्षण आभा फूट निकलेगी। वह सौन्दर्य दिव्य होगा, भव्य होगा, पुनीत होगा। वह आन्तरिक सौन्दर्य पुरुषो के हृदय में पावन सात्विकता को जागृत करेगा।

शारीरिक सौन्दर्य में यह सब उत्तमता कहां है? गहनों और कपडो की सहायता लेकर तैयार किया हुआ सौन्दर्य अकल्याणकारी है। उसमें अगर दीप्ति एवं चमक हो भी तो वह वैसी ही है जैसी दीपक मे होती है, जिससे आकर्षित होकर बहुतेरे पतगे आकर गिरते, पडते और मरते हैं। उस सौन्दर्य में दूसरो को शाति पहुँचाने की शक्ति नहीं है, जलाकर भस्म कर देना ही उसका काम है। मगर शील का सौन्दर्य अनूठा है। उस सौन्दर्य

में शीतलता होती है। उसे देखकर ही लोग विषय-विकार को भूल जाते हैं। इसलिए बहिनों, तुम शील को धारण करो। यही सब से उत्तम आभूषण है। इस आभूषण को धारण करने से न केवल शरीर ही, वरन् आपकी आत्मा भी खिल उठेगी। यह आपको भी आनन्द देगा और दूसरों को भी आदर्श की सीख देगा।

प्राचीन काल में अनेक महिलाएँ हो चुकी हैं, जिन्होंने इस महान् आभूषण को धारण किया था। इसे छीनने और लूटने का अगर किसी ने प्रयत्न किया तो उन्होंने अपने प्राण दे दिये, मगर अपना यह आभूषण नही लुटने दिया। आप इस बात पर जरा विचार करो। शील रूपी आभूषण मे ऐसी क्या विशेषता है कि उन प्रातः स्मरणीय महिलाओ ने प्राण त्यागकर या अनेक कष्ट झेल कर भी इसकी रक्षा की? उन्हें यह प्राणों से भी अधिक प्रिय क्यों प्रतीत हुआ? बहिनों! उन्होने इसकी असली कीमत समझ ली थी। वे समझ चुकी थी कि इस आभूषण मे अनन्त सौन्दर्य को विकसित कर देने की अपूर्व क्षमता है! इस परम आभूषण को धारण करने वाली सदा के लिए दरिद्रता से छुटकारा पा लेती है। वृद्धावस्था और मौत आकर भी उस सुन्दरता का अपहरण नही कर सकती।

बहिनो! तुम चेतना हो, फिर क्यों इन जड़ आभूषणों की चकाचौंध मे पड़कर सही रास्ता नही देखतीं? इनमे भूलकर क्यों सच्चे आभूषण की महिमा को नही समझती? समझो, समझो यह अपूर्व अवसर है। मैं नहीं कहता कि तुम अपने आभूषणों को उतार कर फेंक दो। मैं केवल यह कहता हूँ कि

तुम शील के दिव्य आभूषण को धारण कर लो। यही आभूषण तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा। यही परभव मे भी तुम्हारे साथ जायगा। इस आभूषण को धारण करने से चौरासी के चक्कर से बच जाओगी। शील से बढकर दुनिया मे कोई दूसरा धर्म नही है जहाँ शीलधर्म होगा, वहाँ सब धर्म आ जाएँगे।

बहिनो! तुम प्राचीन काल की सतियों के चरित्र को पढो, सुनो और उन पर मनन करो। ऐसा करने से तुम शील-धर्म की महिमा को समझ जाओगी और शील के प्रति तुम्हारे चित्त में प्रीति उत्पन्न होगी। देखो राजीमतीजी को—

राजीमती रही अखंड कंवारी, जीवन सफल किया उनरी ॥

राजुलजी आजीवन कुंवारी रही। नेमिनाथजी उन्हे अन-व्याही छोडकर चले गये, किन्तु उन्होने दूसरे पुरुष की इच्छा नही की। माता-पिता आदि के आग्रह करने पर भी विवाह नही किया। उन्होने बाल-ब्रह्मचारिणी रहकर तपस्या की और मुक्ति प्राप्त करने के लिए ही शील की चूनड़ी ओढ़ ली और—

रही ब्रह्मचारिणी धन–धन धन–धन विजयाकुंवरी।

विजयाकुमारी भी धन्य है जो विवाह करके भी जीवन के अन्तिम साँस तक पूर्ण ब्रह्मचारिणी ही बनी रही।

भाइयों! कौशाम्बी नगरी में दो बड़े साहूकार रहते थे। उनमें से एक के यहाँ विजयकुंवर नामक लडका था और दूसरे के यहाँ विजयाकुमारी नामक लड़की थी। दोनो सेठो के घर का

वातावरण धर्म-मय था। जिसके घर में धर्म का वातावरण होता है, उसकी संतान मे अनायास, बिना किसी विशेष प्रेरणा के ही, धर्म के संस्कार पड़-जाते हैं। उस घर के बालकों के चित्त मे अपने आप ही धर्म के प्रति रुचि जागृत हो जाती है। उक्त दोनों सेठो के यहाँ धार्मिक वातावरण होने के कारण उनकी सन्तान भी धर्मप्रेमो हो गई थी विजयकुमार और विजयाकुमारी दोनों साधुओ के सत्संग मे आते-जाते थे।

विजयाकुमारी प्रायः साध्वियों के पास जाती थी। उसने सामायिक, प्रतिक्रमण नवतत्त्व आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष में, विवाह हो जाने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी। अगर विवाह न किया तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालूँगा।

कुछ दिनो बाद विजयाकुमारी ने अपने माता-पिता के सामने दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। मगर आप जानते हैं कि माता-पिता कितने ही धर्मप्रेमी क्यो न हों, अपनी सन्तान को सहज हो दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं देते। प्रायः सन्तान मोह उन्हे आज्ञा देने से रोकता है। जो लोग दूसरे की दीक्षा होते समय अत्यन्त हर्षित होते हैं, वे भी अपनी सन्तान की दीक्षा की बात सुनकर शोक में डूब जाते हैं। आखिर उसके माता-पिता ने उसे दीक्षा लेने की आज्ञा नही दी।

उधर विजयकुमारी भी सत्संगति किया करता था। उसने एक दिन शीलधर्म की महिमा पर उपदेश सुना तो समझ लिया कि शीलधर्म ही सर्वोपरि धर्म है। मगर किसी को मुक्ति प्राप्त

करनी है तो उसे शील रूपी सखा को साथ रखकर ही प्रयत्न करना चाहिए। इसकी सहायता के बिना मोक्ष का भव्य द्वार नहीं खुल सकता। ऐसा समझकर उसने गुरु से कहा—महाराज ! आगे जितना अधिक बन सकेगा, करने की चेष्टा करूँगा, अभी कृष्ण पक्ष में पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा तो करा ही दीजिए। इस तरह विजयकुमार ने प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष मे ब्रह्मचर्य पालने का नियम ले लिया।

विजयाकुमारी और विजयकुमार दोनों क्रमशः युवावस्था में प्रविष्ट हुए। संयोग की बात है कि विजयाकुमारी के पिता ने विजयकुमार को ही योग्य वर समझकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देने का विचार किया। उसने विजयकुमार के पिता के पास संदेश भेजा और उसने भी इस सम्बन्ध को पसन्द कर लिया। विजया जैसी धर्मशीला, सुशीला और सब तरह से योग्य लड़की को आखिर कौन अपने घर मे लाना पसन्द नही करता ? वह सुन्दरी भी थी और धर्म को भी जानती थी।

आज लोग अपनी लड़कियों को बी. ए. और एम. ए कराने लगे है। उन्हें बीजगणित और रेखागणित आदि की शिक्षा देते हैं। पर नारी के जीवन में उनका उपयोग क्या है ? जो विषय हजारों लडकों में से भी कठिनाई से दो-चार के काम आते हो, वे लड़कियों के क्या काम आ सकते हैं ! पर आज किसे इसकी चिन्ता है ? काम की बात कौन सोचता है ? उपाधि चाहिए सब को और वह विना बेकार विषयो को पढ़े मिलती नही है। विश्व विद्यालयों के विधाता लोगों को इतना सोचने की परवाह नही है कि जीवन को सुखी और पूरी तरह समुन्नत बनाने के लिए बालकों

को और बालिकाओं को कैसी और किन-किन विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए ?

यह सही है कि स्त्री सिर्फ गृहस्थी के संकीर्ण दायरे में ही बन्द होकर अपना जीवन समाप्त न कर दे। वह देश, समाज एवं विश्व की समस्याओं को भी समझे और उनकी सेवा में जितना योग दे सकती हो, अवश्य है। मगर यह सब होगा किस प्रकार ? उचित शिक्षा के अभाव मे, जो अपनी गृहस्थी को भी सुखमय नही बना सकेगी, वह देश और दुनिया को सुखी बनाने मे क्या सहयोग दे सकेगी ? अतएव स्त्री का पहला काम अपनी गृहस्थी को संभालना है। जो स्त्री बुद्धिमत्ता के साथ अपनी गृहस्थी को संभालती है, वह एक प्रकार से देश एवं संसार की भी महान् सेवा करती है क्योंकि वह अपनी सुयोग्य सन्तान के रूप मे देश एवं विश्व को योग्य सदस्य भेंट करती है।

स्त्री की सच्ची शिक्षा दूसरे प्रकार की ही होनी चाहिए। उसे धर्मशास्त्र की भी शिक्षा मिलनी चाहिए। यह एक स्वतंत्र विषय है और इस पर विस्तार के साथ प्रकाश डालने के लिए काफी समय की आवश्यकता है। अतएव अभी संक्षेप मे सिर्फ इतना कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की महत्ता तभी कायम रहेगी जब कि स्त्री को आर्यधर्म की शिक्षा दी जायगी। अगर आर्यधर्म की शिक्षा न दी गई तो यह देश भी अनार्य देश हो जायगा।

हाँ, तो विजयकुमार और विजयाकुमारी की सगाई हो गई। दोनों की प्रतिज्ञाओं के विषय मे उनके माता-पिता को किसी प्रकार की जानकारी नहीं थी।

संसार में आज धर्म भी एक प्रकार से सौदा बन गया है। लोग थोड़ा-सा कोई धर्म का काम करते हैं तो उसका ढिंढोरा पीटते हैं दान देते है तो अखबारों में विज्ञापन करते हैं। इस तरह धर्मक्रिया को भी कीर्त्ति का एक साधन समझ लिया गया है। यह अत्यन्त अनुचित है। धर्मक्रिया निर्जरा के लिए ही करनी चाहिए। मान-सन्मान प्राप्त करने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह अपना वास्तविक फल नही देती। देखो विजयकुमार और विजयाकुमारी ने, नवयौवन के समय मे ही कितनी उग्र प्रतिज्ञा ली थी; मगर उन्होंने उसका ढिंढोरा नहीं पीटा। यहाँ तक कि उनके माता-पिता को भी पता नहीं चल पाया !

इस कथा से यह भी विदित होता है कि सांसारिक लेन-देन आदि व्यवहार के सम्बन्ध मे तो पिता आदि की आज्ञा लेना चाहिए, मगर धर्म कार्य के लिए ऐसा करना आवश्यक नही है। संसारत्याग की बात दूसरी है, परन्तु कोई भी पवित्र धार्मिक प्रतिज्ञा आत्मा के आदेश से ही ले लेनी चाहिए। धर्म-कार्य के लिए किसी की परवाह मत करो। धर्म की जगह किसी से मत पूछो। उसके लिए तो भगवान् की सदैव आज्ञा ही है। फिर भगवान् से बड़ा कौन है, जिसकी आज्ञा की राह देख कर धर्मक्रिया मे विलम्ब करना उचित हो ?

देखो, मीरा को राणाजी ने कितना मना किया था ? मगर वह मान ही नही सकती थी। राणाजी ने कहा—तू बाबाओं के पीछे फिरती रहती है, इससे मेरी बदनामी होती है और तेरी भी। तब मीरा ने कहा—

राणाजी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।

अहा ! कितना सुन्दर और भावपूर्ण उत्तर है ? वास्तव में जिसका अन्तःकरण धर्म के पक्के रंग से रंग गया होगा, उसी को, धर्म कार्य के बदले में होने वाली बदनामी मीठी लगेगी ! मीरां के हृदय में ऐसी भक्तिभावना थी कि उन्हें अपनी निन्दा भी प्रशंसा मालूम होती थी ! अगर कोई कहता कि देखो मीरां अपने कुल की परम्परागत मर्यादाओं को भंग करके अपने गोपाल के पीछे पागल हो रही है तो मीरां इसे निन्दा नहीं प्रशंसा ही समझती थी। वास्तव में जहाँ धर्म की बात आ जाती है, वहाँ पति भी कोई चीज नहीं। श्रीकृष्ण जैसे त्रिखंड के नाथ की आठों पटरानियां उन्हें त्याग कर साध्वी बन गई।

कहा जा सकता है कि अगर कोई बेटा अपने बाप की बात न माने तो वह बेटा ही कैसा ? बात ठीक है। बेटे को बाप की बात माननी ही चाहिए, मगर कभी-कभी इसका अपवाद भी होता है और खास तौर पर धर्म के विषय में। देखो न प्रह्लाद ने हिरण्यकश्यपु की बात नहीं मानी। हिरण्यकश्यपु कहता था कि तू परमात्मा का नाम मत ले। मगर प्रहलाद के लिए तो परमात्मा का नाम श्वास लेने के समान बन गया था। अन्त तक उसने अपने पिता की बात नहीं मानी तात्पर्य यह है कि धर्म का संबंध आत्मा के साथ है और सांसारिक संबंध शरीर के साथ होते हैं। अतएव आत्म हित के लिए मात्र परमात्मा के आदेश का ही मुख्य रूप से विचार करना चाहिए।

तो विजयकुमार और विजयाकुमारी का विवाह हो गया। खूब खुशियां मनाई गई। रात्रि के समय दोनों का मिलाप हुआ। तब—

वह सज सोले शृंगार पिया ढिग आती,
बालम से सुन्दर प्रेम धरी बतलाती।
धन विजयकुंवर अरु विजयाकुंवरी नारी,
यौवन में पाल्यो शील ममत्व निवारी ॥

विजयाकुमारी सोलहों शृंगार सजकर रम-झम करती हुई अपने पति के पास आई। बहुत देर तक पति के सामने खड़ी रही, मगर पति ने भाषण नहीं किया। तब उसने कहा—

स्वामी कारण क्या रंज मनाने का है ?
मौका यहाँ पर तो प्रेम दिखाने का है ?

स्वामिन् जीवन में यह तो असाधारण अवसर समझा जाता है। इस अवसर पर आप रंज किस कारण मना रहे हैं? अपने प्रेम को प्रकट करने का तो यही अवसर है। मगर आप बात भी नहीं करते हैं? मुझे आपने तनिक भी आदर नहीं दिया। क्या कारण है ?

नाथ ! इस समय आप किस चिन्ता में डूबे हैं ? मैं आपकी अर्धांगिनी हूं। मुझसे कोई बात छिपानी नहीं चाहिए। क्या मेरे पिताजी ने दहेज में कम धन दिया है ? इस कारण आप मुझ पर रुष्ट हैं ?

होवे जमाई लाड़ला केसरिया,
ज्यों रूसै त्यों रंग हो केसरिया।

जमाई लाड़ला होता है तो जीमने की जगह रूसता है, बीटी की जगह रूसता है। रूसने का अवसर यह तो नही है। बिना अवसर के रूसना तो रंग में भंग कर देना है। आप जैसे पढ़े लिखे, विचारवान्, विवेकवान् को यह रूसना शोभा नहीं देता। अगर इसके सिवाय कोई और कारण हो तो साफ-साफ बतला दीजिए।

विजयकुमार ने सोचा—मेरी पत्नी दूसरी तरह की कल्पनाओं मे बही जाती है। अतएव उसने कहा-प्रिये ! मैं इतना तुच्छ नही हूँ कि दहेज के लिए तुम पर रुष्ट होऊँ। प्रथम तो तुम्हारे पिताजी ने दहेज देने मे किसी प्रकार की कमी नही रक्खी है, अगर कमी होती तो भी मैं उसका विचार न करता। विवाह दहेज के लिए नही किया जाता। विवाह कोई व्यापार नही है। वह तो दो प्राणियों का महत्त्वपूर्ण आन्तरिक सम्बन्ध है जो परस्पर एक दूसरे की सहायता करें और एक दूसरे की अपूर्णता को पूर्ण करें। मैं तुम्हे पाकर सन्तुष्ट हूँ। तुम सरीखी सुशीला पत्नी पा कर कौन अपने को भाग्यवान् न समझेगा ? परन्तु प्रिये ! सच बात तो यह है कि मैंने कृष्णपक्ष मे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा की है। अभी उसके तीन दिन और शेष हैं। तब तक मैं अपनी मर्यादा का पालन करूँगा।

विजयकुमार का यह स्पष्टीकरण सुन कर विजय की आँखों से आसुओं की धारा बहने लगी। यह देख कुंवर ने पूछा-प्रिये ! महीने में पन्द्रह दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना क्या बहुत बडी बात है ? फिर आंसू क्यो बहाती हो ? विजयाकुमारी ने कहा—

मैं तो सच-सच कहूँ सुन लो पिया,
इस कारण से भर कर आया हिया ।।

हे नाथ ! मैं आपके समक्ष सत्य–सत्य ही निवेदन करती हूँ। मैंने अपनी गुरुणी के सामने, जीवनपर्यन्त, शुक्लपक्ष में ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा ली है।

पत्नी की बात सुन कर विजयकुमार सन्नाटे में आ गया। दोनों के सामने बड़ी विषम समस्या उपस्थित हो गई।

भाइयों ! कदाचित् आपके सामने ऐसी समस्या उपस्थित हो तो आप क्या करेंगे ? साधारण मनुष्य इस प्रकार के अवसर पर अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर देते है। लोग कोई बहाना खोज कर, रास्ता निकाल लेते है और सन्तोष मान लेते हैं। मगर जिसकी चित्तवृत्ति धर्म में स्थिर है, जिसने लोक दिखावे के लिए नही, वरन् आत्महित के लिए प्रतिज्ञा ली है, जिसने दूसरे की प्रेरणा से नही वरन् अन्तःकरण की प्रेरणा से ही प्रतिज्ञा ग्रहण की है, वह कैसा भी विषम से विषम परिस्थिति क्यो न उत्पन्न हो जाय, अपनी प्रतिज्ञा से तिल भर भी नही डिगता है।

कई लोग कहते हैं कि प्रतिज्ञा लेने की आवश्यकता ही नही है। जिसे जो व्रत् नियम पालना हो, पाले, मगर प्रतिज्ञा क्यो ले ? प्रतिज्ञा लेने की पराधीनता में क्यों पडे ? मगर ऐसा सोचने वाले लोग वही हैं जिनका हृदय दुर्बल है जो अपने सकल्प पर डटे रहने से डरते हैं वही इस प्रकार की बातें करते हें। वास्तव मे प्रतिज्ञा लेने से हृदय सबल बनता है । गिरने के

अवसर पर प्रतिज्ञा गिरने से रोकती है। वह दृढता और शक्ति प्रदान करती है। आप अपने अनुभव से पूछिए। जिन बातों को आपने प्रतिज्ञा नहीं ली है और सिर्फ मानसिक विचार मात्र किया है उन बातों पर आप कब तक स्थिर रहते हैं ? क्या जरा-सी कठिनाई पड़ते ही उस विचार को नही बदल देते ? क्या इसी प्रकार गुरू के सामने विधिपूर्वक ली हुई प्रतिज्ञा को भी बदल सकते हैं ? नही, प्रतिज्ञा एक पाषाण-रेखा है। वह बदल नहीं सकती। प्राण देकर भी प्रण का पालन करना वीरो का कर्त्तव्य है। कायरो की बात छोड दीजिए, मगर वीर पुरुष किसी भी अवस्था मे अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट नहीं होते। कठिनाई के समय प्रतिज्ञा उन्हे रास्ता दिखलाती है।

गांधीजी जब पहली बार विलायत जाने को तैयार हुए तो उनकी माता ने विरोध किया। उनका खयाल था कि विलायत जाने वाले सब धर्मभ्रष्ट हो जाते हैं। आखिर बहुत कुछ समझाने बुझाने पर उन्होंने कहा—यदि मोहनदास साधु के सामने मांस, मदिरा और परस्त्री सेवन न करने की प्रतिज्ञा कर ले तो मैं उसे आज्ञा दे सकती हूँ, अन्यथा नही। आखिर यही हुआ। गांधीजी बेचरजी स्वामी नाम जैन साधु के पास गये। उन्होंने उक्त प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की और तब वे विलायत जा सके।

गांधीजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि विलायत मे रहते हुए अनेक प्रसंग ऐसे आये कि अगर उन्होने प्रतिज्ञाएँ न ली होती तो वे भ्रष्ट हुए बिना न रहते। मगर प्रतिज्ञाओं का स्मरण करके वे दृढता पाते थे और पूरी तरह प्रतिज्ञाओ का निर्वाह करते थे। गांधीजी ने सच्चे दिल से प्रतिज्ञाओ का पालन

किया। विलायत मे बीमार होने पर डाक्टर ने अण्डे खाने को कहा। गांधी बोले-मैंने मास का त्याग कर दिया है, अतएव अण्डे नही खा सकता। डाक्टर ने उन्हे बहुतेरा समझाया कि अण्डा वनस्पति-आहार में गिनने योग्य है, पर गांधीजी न माने। उन्होंने कहा-मांस त्याग करते समय अण्डो का त्याग करना भी समझा गया है अतएव मैं उनका सेवन नही करूंगा। सचमुच उन्होंने अण्डे नही खाये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिज्ञा के निमित्त से मनुष्य पतन से बच जाता है। प्रतिज्ञा जीवन को ऊँचा उठाने वाली शक्ति भी है। वह दोहरा काम करती है। नीचे गिरने से बचाती है और ऊंचा चढाती है।

जो लोग किसी नियम का पालन करना तो अच्छा समझते है, परन्तु प्रतिज्ञा लेना अच्छा नही समझते, समझना चाहिए कि उनके दिल के किसी न किसी कोने मे दुर्बलता अवश्य छिपी है। वे समय आने पर गिर जाने के लिए रास्ता रखना चाहते हैं। अन्यथा क्या कारण है कि वे प्रतिज्ञा लेने से भयभीत होते हैं?

विजय और विजया ने स्वेच्छा से ही प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की थी। उनका हृदय भी दुर्बल नहीं था। हृदय दुर्बल होता तो अपनी प्रतिज्ञा पर डटे न रहते। पूरी तरह भग न करते तो भी रास्ता निकाल लेते। दोनो मे से कोई एक अपने पक्ष का परिवर्त्तन कर लेता। कृष्णपक्ष के बदले शुक्लपक्ष या शुक्लपक्ष के बदले कृष्ण-पक्ष में ब्रह्मचर्य पालने का विचार करके समस्या को हल कर लेते। वे सोच सकते थे कि प्रतिज्ञा लेने का मुख्य प्रयोजन तो एक मास

मे पन्द्रह दिन तक ब्रह्मचर्य पालना ही है। किस पक्ष में ब्रह्मचर्य पाला जाय, यह बात मुख्य नहीं, गौण है। महत्त्व ब्रह्मचर्य का है, पक्ष का नहीं। मगर उन्होंने ऐसा नही सोचा। यह गिरने का मार्ग था, चढने का नही। वे ऐसा करते तो आगे चलकर और भी ज्यादा गिर जाते। फिर सोचने लगते पक्ष का प्रश्न मुख्य नही है सिर्फ पन्द्रह दिन की बात मुख्य है। अतएव एक-एक दिन बीच में छोड़कर भी पन्द्रह दिन तक ब्रह्मचर्य पाला जा सकता है। इस प्रकार वे अपनी प्रतिज्ञा से गिर कर सँभल ही न पाते।

कायर पुरुष समय आने पर अपने शब्दो के आशय को तोड मरोड कर व्याख्या किया करते हैं। वीर पुरुष ने जो कह दिया पत्थर की लकीर बन गया! मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह सोच-समझकर शब्दों का प्रयोग करे आगा-पीछा सोच कर और अपनी शक्ति को तोल कर प्रतिज्ञा ले। मगर प्रतिज्ञा ले लेने के पश्चात् प्रमाण से उसका पालन करे। राजा हरिश्चन्द्र की यह चुनौती सदा स्मरण रखने योग्य है:—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत—व्यवहार।
पै दृढ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य-विचार॥

कुछ भी हो, प्रकृति मे भले ही उलट पुलट हो जाय, मगर धीर वीर कुलीन पुरुष जो संकल्प कर लेता है, जो प्रण कर लेता है, उससे भ्रष्ट नही होता।

विजयकुमार और विजयाकुमारी ने क्षण भर के लिए भी अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ देने का विचार नहीं किया। उसने आगे

कहा-प्रियतम ! पहले तो मेरा विवाह करने का इरादा ही नही था और दीक्षा लेने का विचार था ! किन्तु माता पिता ने आग्रह करके विवाह कर दिया। अब मेरे लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वतः हो गया। आपने कृष्णपक्ष में ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत लिया है और मैंने शुक्लपक्ष मे ब्रह्मचर्य पालन करने का। अपने व्रत को भंग कर देना न मेरे लिए ही योग्य है और न आपके लिए अतएव मेरे लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत हो गया है। मगर आपके लिए दूसरा मार्ग खुला है और वह यह कि आप दूसरा विवाह कर सकते हैं। पुरुषो का दूसरा विवाह होता है आप मेरे लिए चिन्ता न करें। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे भाग्य से सहज ही जहर का प्याला ढुल गया है।

विजयकुमार का हृदय, यह बात सुनकर अत्यन्त आहत हुआ। उसने कहा—तुम बाल ब्रह्मचारिणी रहो और मैं दूसरा विवाह कर लूँ, यह नही होने का है। तुमने जिनेन्द्र भगवान् की वाणी का अनुपम अमृत–रस पान किया है तो मुझे भी उसके पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। क्या तुम मुझे भोगो का कीडा समझती हो ? आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप से न स्त्री है, न पुरुष है। स्त्रीत्व और पुरुषत्व तो शरीर की पर्यायें हैं। आत्मा इन सब पर्यायो से रहित है। स्त्री के शरीर मे जैसी आत्मा है, पुरुष के शरीर में भी वैसी ही है। मगर व्यवहार मे स्त्री की अपेक्षा पुरुष प्रधान और अधिक शक्तिशाली माना जाता है तो क्या, उसकी शक्ति भोगने मे ही खर्च होनी चाहिए ? तुम स्त्री होकर जो तपस्या करना चाहती हो, वह तपस्या मैं पुरुष होकर न करूँगा ? नीतिकार कहते हैं कि स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा आठ गुना कामविकार होता है। जैन शास्त्र भी पुरुषो की कामवासना

की अपेक्षा स्त्रियों की कामवासना को प्रबलतर कहते है। फिर भी तुम उस पर विजय प्राप्त करना चाहती हो। तो क्या मैं अपनी वासना को नहीं जीत सकता ? तुम विजया हो तो मैं भी आखिर विजय हूं ! मैं कैसे तुमसे पीछे रहूँगा ? मुझे अपने पुरुषत्व की लाज भी तो रखनी ही चाहिए ! मैं अपने कर्त्तव्य और विवेक को तिलाजलि कैसे दे सकता हूं ?

विजया को अपने व्रत के लिए कोई वेदना नहीं थी, मगर विजयकुमार के दृढ़तापूर्ण सकल्प को सुनकर उसे उदासी हुई। उसकी आँखों से फिर आंसू बहने लगे। उसने कहा—नाथ ! आपका कथन सत्य है। आपमें मेरी अपेक्षा अधिक बल है, अधिक शक्ति है और अधिक विवेक है। फिर भी वश की परम्परा पुरुष से चलती है। अतएव वश-परम्परा को चलाने के लिए और माता-पिता को सन्तोष देने के लिए भी आपको दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।

विजयकुमार बोला—प्रिये ! तुम क्या कह रही हो ? जगत् तो अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। सभी का वंश भी अनादि काल से चला आ रहा है, मगर उससे किसी का क्या उपकार होता है ? अगर मेरा वश आगे न चले तो क्या जगत् में प्रलय हो जायगा ? और अगर चलता रहे तो उससे क्या हमारा निस्तार हो जायगा ? जिन लोगो का खयाल है कि पुत्र होने से ही पिता का उद्धार होता है, पुत्र के अभाव मे सद्गति नही होती अथवा पुत्र द्वारा श्राद्ध न करने पर मृतात्मा भूखा प्यासा बैठा रहता है, वे लोग

पुत्र उत्पन्न करने मे अपना हित भले समझें, मगर हमारा तो ऐसा अभिमत नही है। हम तो यही मानते हैं कि जीव जैसा भी शुभ या अशुभ कृत्य करता है, उसी के अनुसार उसको फल की प्राप्ति होती है। बेटे के द्वारा किये हुए दान पुण्य से बाप की आत्मा को फल नहीं प्राप्त होता। ऐसी स्थिति में वंश परम्परा को चालू रखने की चिन्ता क्यों की जाय? इस आत्मा ने किस-किस वंश में जन्म नही लिया है? सभी वंशों मे इसने जन्म लेकर उन्हे अपना बना लिया है। फिर भी वह वंश इसके कोई काम नही आये।

रह गई माता-पिता के सन्तोष की बात! सो उन्हें सन्तोष पहुँचाने के लिए मैं स्वयं मौजूद ही हूं। तुम भी हो। हम दोनो शक्ति भर उनकी सेवा करेंगे। बल्कि बाल-बच्चों की तरफ से निश्चिन्त होने से उनकी सेवा और भी अच्छी तरह कर सकेंगे।

विजया ने कहा—जब आपके समवयस्क साथियो के बाल बच्चे होगे और आपका घर बाल-बच्चो से शून्य रहेगा तो माता-पिता को अवश्य ही दुख होगा। हम लोग कितनी ही सेवा करे, फिर भी उन्हे उतनी प्रसन्नता नही होगी, जितनी सन्तान को देख कर होती है। इस बात पर आप गम्भीरता से विचार कीजिए। जल्दी मे कोई निश्चय करना उचित नही है। यह जीवन भर प्रभाव डालते रहने वाला विकट प्रश्न है।

विजय—प्रिये! मैं समझता हूं कि अब अधिक सोच-विचार के लिए कोई अवकाश नही है। उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। किसी अदृष्य शक्ति ने मेरे और तुम्हारे लिए आजीवन ब्रह्म-

चर्य का विधान कर दिया है। उस विधान का विरोध नहीं किया जा सकता। उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना ही हितकर है। कौन कह सकता है कि दूसरा विवाह कर लेने पर सन्तान होगी ही। संसार में बहुत लोग सन्तान की लालसा से दूसरा विवाह करते हैं। फिर भी निस्संतान ही बने रहते हैं। यह सब मन को समझाने की बातें हैं। अतएव चित्त मे दुर्बलता उत्पन्न करने वाली बातो की ओर ध्यान देना ठीक नही है। निश्चय हो चुका है, वह अन्तिम है है और हमे उसी पर दृढ़ रहना चाहिए।

भाइयो! बातें कर लेना सरल है मगर मन को वश में कर लेना कठिन है। खास तौर पर गृहस्थी में रहते हुए और पत्नी का सम्पर्क होते हुए जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह धन्य है, कोटिशः धन्यवाद का पात्र है। इसी प्रकार वह नारी भी, जो पति के साथ रहती हुई ब्रह्मचर्य पालती है, अतिशय सराहनीय है!

विजयकुमार बोले-हम दोनों बहिन-भाई की तरह वासना-हीन भावना से साथ-साथ रहेंगे। जब हमारी प्रतिज्ञा की बात प्रकट हो जायगी तो उसी समय दीक्षा ग्रहण कर लेंगे।

भाइयो! विजय और विजया का त्याग कितना महान् है? साथ-साथ रहते हुए भी उन्होने ब्रह्मचर्य का पालन किया। एक वर्ष हो गया, दूसरा वर्ष भी बीत गया और धीरे धीरे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके। पति-पत्नी अपनी साधना मे सदा सावधान रहे।

उस समय इस भूतल पर विमल केवली भगवान् विराजमान थे। उनका धर्मोपदेश हो रहा था। बड़े बड़े लोग सभा में बैठे थे। उस दिन उपदेश का विषय ब्रह्मचर्य था। उन्होंने फर्माया-

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बंभयारि नमंसंति, दुक्करं जे करेन्ति तं ।।

उत्त. अ. १६ गा. १६

जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह देवताओं के द्वारा भी वन्दनीय और पूजनीय हो जाता है। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर, तात्पर्य यह कि सभी जातियों के देवता उसके चरणों मे नमस्कार करते हैं। उस महिमामय ब्रह्मचर्य का पालन करना बहुत कठिन है।

भाइयो ! मोक्ष मे जाने का मार्ग चतुर्मुखी है। दान, शील, तप और भावना मोक्ष के कारण हैं। इनमे शील का दूसरा स्थान है। तप मे भी उसकी प्रधानता है। शील की बडी महिमा है। शील आत्मा को निर्मल बनाने का पवित्र तम साधन है।

इस प्रकार का उपदेश सुन कर सभा मे किसी ने प्रश्न किया इस प्रकार का शील पालने वाला संसार मे कोई गृहस्थ भी है ?

प्रश्न का उत्तर देते हुए केवली भगवान् ने कहा—कौशाम्बी नगरी मे विजयकुँवर और विजयाकुँवरी का शीलव्रत बहुत उग्र और प्रशसनीय है। एक शय्या पर ब्रह्मचर्य का पालन करते-करते उन्होने बारह वर्ष बिता दिये हैं। उनकी यह साधना बडी महत्त्व-पूर्ण है।

लोगो ने यह बात सुन कर विचार किया-ऐसी महान् आत्माओ के हमे अवश्य दर्शन करने चाहिए। यह विश्व की मूल्यवान् विभूतियां हैं। ऐसी विभूतियां अत्यन्त विरल होती हैं।

ऐसी महान् आत्माओं के सहारे ही धर्म का प्रकाश होता है । ये हमारे लिए आदर्श हैं, हमारे पथप्रदर्शक हैं। वे अपनी साधना को प्रकट नही करते, अपने तप और त्याग का ढिंढोरा नही पीटते, फिर भी उनके यश का सोरभ विश्व मे व्याप्त हुए बिना नहीं रहता। हम लोग उनके चरण-चिह्नो पर न चल सकें तो कम से कम उनके तप की सराहना तो करें। अन्तःकरण में उनके प्रति आदर का भाव रक्खें और उसे व्यक्त करें। ऐसा करने से भी धर्म की प्रभावना होती है और आत्मा उस दिशा मे अग्रसर होने के लिए तैयार होता है।

इस प्रकार विचार कर बड़े-बडे सेठ-साहूकार और धर्मात्मा लोग इकट्ठे हुए और उनके दर्शन के लिए रवाना हुए। चलते-चलते जब कौशाम्बी नगरी मे पहुँचे तो वहां के आगेवानो ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। उनके आगमन का प्रयोजन पूछा।

आगत लोगों मे से एक ने विजयकुमार के पिता का नाम लेकर उनका मकान पूछा। कहा-आप हमे उनसे मिला दीजिए। आखिर वे उन्हें सेठ के मकान पर ले गये। सेठ ने भी उन सब का प्रेमपूर्ण स्वागत किया और आने का प्रयोजन पूछा। तब उन्होने बतलाया कि हम आपके सुपुत्र विजयकुमार के दर्शन करने आये हैं!

विजयकुमार के पिता को यह रहस्य मालूम नही था। आये हुए सेठों की बात सुन कर उन्हे आश्चर्य हुआ। वे समझ नही पाये कि आखिर क्यो यह सब विजयकुमार के दर्शन करना चाहते है?

अतएव उन्होने कहा-विजय यही है। अभी बुलवाता हूं। मगर वह कोई साधु तो है नही, फिर आप क्यो उसके दर्शन करना चाहते हैं ?

आये हुए सेठों मे से मुखिया ने कहा—आप अतिशय भाग्यशाली हैं जिन्होने ऐसे महात्मा पुत्र को जन्म दिया आपके पुत्र विजयकुमार साधु नही है, मगर उनकी साधना साधुओ से कम नही है। बल्कि एक प्रकार से कई साधुओ की अपेक्षा भी बहुत उच्च और महान् है। भला जो अपनी पत्नी के साथ रहते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का बारह वर्ष से पालन कर रहे हैं, उनकी महिमा का बखान किन शब्दों से किया जाय ?

पिता ने कहा—क्या कह रहे हैं आप ! इस बारे मे मैं भी कुछ नही जानता। आपको इतनी दूरी पर रहते हुए यह बात कैसे मालूम हुई।

तब उन्हे सारा वृत्तान्त सुनाया गया विजयकुमार के पिता को यह हाल सुन कर हर्ष हुआ या विषाद हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु वह चकित रह गये।

इसी समय विजयकुमार आये। उनके वदन पर अनुपम तेज चमक रहा था। मुखमण्डल पर अपूर्व शान्ति थी। सौम्य-भाव लहरा रहा था। उन्होंने गम्भीर भाव से, पिता को प्रणाम किया और फिर पिता से कहा—पिताजी आज्ञा दीजिए, अब मैं साधु जीवन अंगीकार करूंगा।

विजयकुमार का यह प्रस्ताव सुन कर उनके पिता को सहसा एक आघात-सा हुआ । कोई कितना ही विवेकवान् हो, फिर भी पुत्र के वियोग को सहन करना सहज नही होता । मोह के उदय से वियोग की वेदना का अनुभव होता ही है विजय-कुमार के पिता भी ससारी प्राणी थे उनका मोह इस अवसर पर और ज्यादा प्रबल हो उठा । उन्होने और उनकी पत्नी अर्थात् विजयकुमार की माता ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया, मगर वे सफल न हो सके । आखिर विजय और विजया दोनो ने दीक्षा ले ली और उसी भव से अपना कल्याण किया ।

भाइयो ! यह आर्यावर्त्त महान् आत्माओं की खान है । इसमें अनेक महिलाएँ शीलवती हो गई हैं । उन्ही का यहाँ जिक्र चल रहा है । विजयाकुमारी के महान् त्याग की बात आपको सुनाई गई । मगर ब्राह्मी और सुन्दरी जैसी सतियो की जीवनी भी कम उज्ज्वल नही है —

ब्राह्मी सुन्दरी दोनों बहिने, रही अखण्ड कुमारीजी ।
मोटी सतियां मोक्ष पधारी, जांकी जग मे महिमा भारीजी ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की दो कन्याएँ थी । भगवान् ने दीक्षा ली और तपस्या करके केवल ज्ञान प्राप्त किया । तत्पश्चात ब्राह्मीजी ने भी दीक्षा ले ली । सुन्दरीजी को उनके ज्येष्ठ पुत्र भरतजी ने रोक रक्खा । सुन्दरीजी दीक्षा लेने के लिए लालायित थीं, मगर अपने भाई की आज्ञा के बिना दीक्षा न ले सकीं । भरतजी छह खण्डो की विजय यात्रा के लिए रवाना हो गये । सम्पूर्ण भारत वर्ष को एकछत्रा के नीचे लाकर जब वे

वापिस लौटे तो अपने समस्त परिवार से मिले । उस समय सुन्दरीजो का शरीर बहुत कृश हो गया था । भरतजी ने उन्हें देख कर कहा—तुम इतनी दुबली क्यों हो गई ? क्या भरपेट भोजन नहीं मिला ? अथवा कोई चिकित्सक नहीं था जो तुम्हारी बीमारी दूर कर देता ? तब उन्हे बतलाया गया कि ब्राह्मीजी की दीक्षा होने पर भी इन्हें दीक्षा लेने से रोक दिया गया है । तभी से यह बेले-बेले पारणा करती हैं । पारणा मे भी रूखा-सुखा भोजन करके आयबिल व्रत कर रही हैं ।

भरत ने पूछा—कहो बहिन क्या मर्जी है ?

सुन्दरी-आपकी पिछली बात ही ठीक थी । वास्तव में मुझे कोई चिकित्सक नहीं मिला है जो मेरी बीमारी दूर कर देता । मुझे अनेक बीमारियां हैं, मगर उनकी चिकित्सा नहीं हो रही है । आपके विशाल राज्य मे शरीर की चिकित्सा करने वाले वैद्यों की कमी नही है, मगर शरीर की चिकित्सा कराने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता । आज चिकित्सा कराई, कल नयी बीमारी उत्पन्न हो गई ! कदाचित् ऐसा न भी हुआ तो फिर शरीर बदलने पर तो बीमारी की संभावना रहती ही है । इसके अतिरिक्त जन्म और मरण की भयंकर बीमारी को कोई लौकिक वैद्य नहीं मिटा सकता । उसे मिटाने के लिए तो लोकोत्तर वैद्य की आवश्यकता है । मैं उसी की शरण में जाना चाहती हूँ । मैं साध्वी-दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ ।

इस प्रकार सुन्दरी की आन्तरिक और गहरी लगन देख कर भरतजी ने आज्ञा दे दी । अब सुन्दरीजी भी बालब्रह्मचारिणी साध्वी बन गई । इसी तरह श्रीबाई और चन्दनबाला भी हुई

है। देखो चन्दनबाला राजा दधिवाहन की लाड़ली लड़की थी। उसने अपने जीवन में अनेकानेक कष्ट सहन किये, बड़ी से बड़ी विपत्तियां झेली पर अपने शील की रक्षा की। बालब्रह्मचारिणी रह कर मोक्ष में गईं। आज भी उनका यश संसार में फैला हुआ है। इसी प्रकार ब्राह्मी भी एक सती हो गई हैं। कहां तक मैं, सतियों के नाम सुनाऊँ? सोलह सतियों के नाम आप प्रातःकाल ही स्मरण करते हैं। यह उनके शील का ही महान् प्रभाव है।

भाइयो! शील की महिमा इतनी विशाल है कि शब्द-शास्त्र उसके सामने हार जाता है। कोई शब्द नहीं, जिनसे शील के प्रभाव का वर्णन किया जा सके। शील आत्मा का सर्वश्रेष्ठ शृंगार है। शील से शरीर ही नहीं, आत्मा भी विभूषित हो जाती है। अपने जीवन को सफल, सार्थक, कृतार्थ और पवित्र बनाना चाहो तो मेरी बात सुनो। मैं वही बात कहता हूं जो अनादिकाल के सभी ज्ञानी एक स्वर मे कहते आये है। वह यही है कि ब्रह्मचर्य का तन, मन और वचन से पालन करो। ऐसा करने से तुम्हारा महान् कल्याण होगा—निस्तार हो जायगा।

आज लोगो मे एक प्रकार की पामरता दिखलाई देती है। जिनकी उम्र ढल चुकी है, जिनके चेहरे पर सफेदी आ चुकी है, जिनकी इन्द्रियों की शक्ति भी क्षीण होने लगी है, वे भी अपने चित्त को वशीभूत नही कर पाते। उनके लिए यही उक्ति चरितार्थ होती है—

तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णाः ॥

शरीर का बुढ़ापा आ गया मगर तृष्णा का बुढ़ापा नहीं आया ! शरीर का यौवन समाप्त हो गया, मगर 'तृष्णैका तरुणायते' तृष्णा अब भी ज्यों की त्यों तरुण है !

इस पामरता का परित्याग करो। युवावस्था में अगर ब्रह्मचर्य नही पाला जाता तो कम से कम एक देश ब्रह्मचर्य तो पालो ! बहिनो स्वपति सन्तोषव्रत को धारण करें और पुरुष स्वपत्नीव्रत को धारण करे। इतना करोगे तो भी महान् लाभ प्राप्त कर लोगे। ऐसा करने पर जब कभी तुम्हारा चित्त विद्रोह करने लगे, इन्द्रियाँ प्रबल होकर तुम्हारे काबू से बाहर होने लगें और तुम विवश अवस्था का अनुभव करने लगो तो इन ब्रह्मचारी पुरुषों और नारियों का स्मरण करना। आदिदेव भगवान् ऋषभदेवजी को याद करना, जिनके चित्त को देवागनाएँ भी विचलित नही कर सकी थीं। इस प्रकार दृढ़ता प्राप्त करके ब्राह्मचर्य की रक्षा करना और आनन्द के भागी बनना।

७-१०-४८ }



उपदेश का रस्सा

स्तुति :



सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति सचरतो यथेष्टम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं ?

भगवान् ऋषभदेवजी के गुणों के विषय मे आचार्य महाराज ने बतलाया है कि भगवान् के गुण पूर्णमासी के चन्द्रमा

समान निर्मल हैं और वे समस्त जगत् मे व्यापक हैं। तीन लोक के अद्वितीय नाथ एक मात्र स्वामी—का जिसने आश्रय लिया हो, उसे इच्छानुसार विचरण करने से कौन रोक सकता है? प्रभो! आपके निर्मल धवल गुणों को समस्त विश्व में विचरण करने से कोई रोक नही सकता, क्योकि उन्होने आपका अवलम्बन ले लिया है और आप कोई साधारण व्यक्ति नही हैं, वल्कि तीन लोक के नाथ हैं। अतएव हे प्रभो! आपको ही मेरा वार-वार नमस्कार हो।

भाइयों! भगवान् के आध्यात्मिक गुण सारे जगत् में व्याप्त है तो उन्हे रोकने की किसमे शक्ति है? प्रयत्क्ष मे देख लो। अगर आज किसी व्यक्ति में सद्गुण हों तो ससार में वह फैल जाते हैं अगर उन सद्गुणो से विरोध रखने वाले चाहे कि हम उन्हें रोक दें, तो क्या वह उन्हे रोक सकता है? कभी नहीं। मान लो, किसी बुढ़िया को सूरज निकलने से पहले-पहले ही बहुत से काम करने हैं। वह वुढिया चाहती है कि मेरे सब काम जब तक पूर्ण न हो जाएँ तब तक सूर्य का उदय न हो। मगर सूर्य नियत समय पर उदित होता है। बुढिया की लड़की दौड कर उसके पास आती है और कहती है—मां, सूरज उग आया है। तब बुढ़िया सूरज के सामने अपनी टोकरी करती है. यह सोच कर कि सूर्य का उदय रुक जाय। तो क्या वह सूर्य के प्रकाश को रोक सकेगी? उसकी टोकरी संसार को प्रकाशित कर देने वाले सूर्य को उगने से या प्रकाश करने से रोक सकेगी? हर्गिज नही। भले ही उसके मुंह पर कुछ अन्धकार रह जाय या वह अपनी आंखें ही मीच ले, मगर जगत् में फैले हुए प्रकाश को तो वह रोक नही सकती।

यही बात सद्‌गुणों के सम्बन्ध में है। भगवान् के, तीर्थङ्करों के तपस्वियों के या ज्ञानियों के गुण संसार में व्याप्त हो जाते हैं। मगर कोई कहता है कि हमें यह गुण पसन्द नहीं हैं तो इससे क्या हो गया ? अरे भाई, तुझे पसंद न होने के कारण ही क्या वे गुण छिप जाएंगे ? दब जाएंगे ? या उनका अभाव हो जायगा ? महाराज श्रेणिक की मौसी भगवान् को देखना नहीं चाहती थी। तो क्या उसके चाहने मात्र से भगवान् के शरीर की अनन्तु छवि लुप्त हो सकती थी ? वह भले ही अपनी आँखें फोड लेती परन्तु भगवान् की वह वीतरागत्तामयी छवि तो मिटने वाली नहीं थी।

हाथी अपनी मस्त चाल से चलता जाता है और कुत्ते भौंकते रहते हैं। कुत्तों के भौंकने से हाथी की चाल न बन्द हो जाती है, न बदल जाती है हाथी कुत्तों को कोई हानि नहीं पहुँचाता फिर भी अगर वे भौंकते हैं तो भौंकते रहे ! हाथी का क्या बिगड़ता है ?

संसार गुण-दोषमय है। सत्य और असत्य दोनों यहाँ अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। सत्य का विरोध करने वालों की कमी नहीं है। दया, दान, शील तप आदि दिव्य गुणों का विरोध करने वाले भी है ही। मगर उनके द्वारा विरोध करने के कारण इन गुणों की सचाई नहीं मिट सकती। शीलवती सीता के मत्थे पर कलक मढने की कोशिश की गई, परन्तु आखिरकार जो सच्चाई थी, वह सामने आ ही गई। आशय यह है कि सद्‌गुणों मे कस्तूरी की तरह एक अनोखे प्रकार का सौरभ होता है। वह सौरभ फैलता है, अवश्य फैलता है और फैले बिना रह नहीं सकता। इसी प्रकार सद्‌गुणों की सुगन्ध भी फैलती है और दबाने से दब नहीं सकती।

एक आदमी कहता है कि मैं साधु-संत को देखना नहीं चाहता। अब आप स्वयं ही विचार कीजिये कि उसके चाहने का प्रभाव उसी पर पड़ेगा अथवा साधु-सन्त पर पड़ेगा? क्या इससे सन्त के उज्जवल गुणों में, यदि वे वास्तव में उसमे हैं, तो क्या कुछ कमी हो जायगी? नहीं। उसके चाहने से क्या सन्त का घूमना या विचारना बन्द हो जायगा? यह भी नही हो सकता। सन्त तो गाँव-गाँव और नगर-नगर घूमते फिरते हैं और उपदेश देते हैं। वे अपनी मर्यादा और सुविधा के अनुसार विचरण करते रहते हैं। चाहे कोई उनके दर्शन करने की इच्छा करे अथवा न करे या राग करे अथवा द्वेष करे। ऐसे सन्तो में दो बातें होना आवश्यक है- बुद्धे परिनिव्वुडे।

सन्त में सर्वप्रथम ज्ञान होना आवश्यक है। ज्ञान ही ऐसा महान् सद्गुण है, जिसके प्रकाश में अपना-आत्मा का शुद्ध स्वरूप देखा जा सकता है। ज्ञान के अभाव मे आत्मा-अनात्म का विवेक नही होता, कल्याण और अकल्याण मे अन्तर नहीं मालूम होता। इसका परिणाम उल्टा आता है। मनुष्य अपने कल्याण की इच्छा से प्रवृत्ति करता है, उसके लिए प्राप्त सुख सुविधाओं का स्वेच्छापूर्वक परित्याग करता है, विपत्तियों और कठिनाइयों को गले लगाता है, अनेक प्रकार के दुःख सहन करता है, फिर भी ज्ञान के अभाव में उसके हाथ कुछ भी नही आता! इतना ही नहीं, वह कल्याण के बदले अकल्याण कर बैठता है। उसके सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं और जब वह सोचता है कि मेरे समस्त प्रयत्न विफल हुए, तो बेहद व्याकुलता उसे बेचैन बना देती है।

मगर ज्ञान के साथ क्रोध का उपशम भी होना चाहिए। बहुत-से ज्ञानवान् ऐसे देखे जाते हैं जिनके बदन पर क्रोध झलकता रहता है, किन्तु तत्त्वज्ञ होकर क्रोध कषाय को जीत लेना ऊँचा पुण्यवान् होने की निशानी है। तत्त्वज्ञानी को अभिमान नही होना चाहिए। ज्ञान के साथ स्वभाव की शीतलता होना सोने मे सुगन्ध होने के समान है। ज्ञान ही परम अमृत है। उस अमृत की सार्थकता कषायो के विष को नष्ट करने में ही है। मगर जब ज्ञान ही अभिमान-कषाय का कारण बन जाता है तब बड़े खेद की बात होती है। वह मनुष्य भाग्यहीन है जो अपने ज्ञानगुण को कषाय का हेतु बना लेता है। वह अपने जीवन के अमृत को विष बना डालता है।

मान लीजिए; कोई मुनि है। गृहस्थ भक्ति से प्रेरित होकर मुनि के पैरो को हाथ लगाता है, किन्तु मुनि इससे क्रोध करता है गृहस्थ मागलिक सुनना चाहता है और मुनि क्रोधावेश में मागलिक नही सुनाता। यह उचित नही है। अतएव बडा होना गुणवान होना और साथ मे कषायो का उपशम होना बहुत बडी बात है। कषायो की उपशान्ति ही आत्मा के उत्थान का चिन्ह है। ज्ञान उच्च श्रेणी का हो, फिर भी अगर कषायों का उपशम न हुआ तो ज्ञान व्यर्थ है। आत्मा की पवित्रता का प्रधान आधार निष्कषायवृत्ति ही है। जैन धर्म का यही सार है। जिसने सोच विचार के साथ जैन धर्म का अध्ययन किया होगा, उसे यह समझने मे विलम्ब नही लगेगा कि कषायों की ज्यों-ज्यो उपशान्ति होती है त्यो त्यो गुणस्थानों की उच्चता प्राप्त होती है। ससार भर के साहित्य को कंठस्थ कर लेने पर भी जिसने अपने कषाय

को बिलकुल नही जीता, वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नहीं चढ़ सकता। इसके विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नही हुआ है फिर भी कषाय-विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान श्रेणी ऊँची चढ़ जायगी।

अतएव भाइयों! इस जीवन का अगर पूरी तरह लाभ उठाना है तो ज्ञान का उपार्जन करो और साथ ही कषायों को जीत लेने का भी प्रयत्न करो। ऐसा करने से अन्तःकरण निर्मल होगा, आत्मा पवित्र होगी और कल्याण के मार्ग पर आप अग्रसर हो सकोगे। कषायों को जीतने के लिए यह बात सदैव ध्यान में रखने योग्य है:—

> तुलसी या संसार में, भाति–भांति के लोग।
> सब से हिलमिल चालिए, नदी–नाव संयोग॥

संसार में तरह–तरह के लोग हैं। सब की प्रकृति में भिन्नता होती है, रूचि और रंग ढंग मे भी भेद होता है। आपकी प्रकृति, रूचि और रंग ढंग से सब का मेल नही बैठ सकता। ऐसी स्थिति मे अगर आप सहनशील नहीं बनेंगे तो कैसे काम चलेगा? किस किस से झगड़ा करते फिरोगे? अतएव आपके हक में यही अच्छा है कि आप सबसे हिलमिल कर रहें। कभी अपनी रुचि का आग्रह त्यागना पड़े तो त्याग दें, मगर अपने कर्त्तव्य और धर्म पर स्थिर रहे। अपनी खिचडी अलग पकाने से काम नही चलेगा। कभी गाडी नाव पर और कभी नाव गाड़ी पर, यों ही जगत् का व्यवहार चला करता है।

सरल भाव से रहो। चित्त मे कोमलता और उदारता रक्खो कभी किसी ने तुम्हारे प्रति अप्रिय व्यवहार भी कर दिया हो तो उसके लिए हृदय मे गांठ मत बांध रक्खो। सामने वाले की बाह्य और आन्तरिक परिस्थिति का भी ध्यान रक्खो। किस मानसिक परिस्थिति में उसने ऐसा व्यवहार किया है, इस बात का उदारता के साथ विचार करो। उसके प्रति सहनशील होकर विचार करने से तुम्हे ही लाभ होगा। तुम्हारे चित्त में क्षोभ नही बढ़ेगा, व्याकुलता नही होगी। समता के अपूर्व रस का आस्वादन कर सकोगे।

मतलब यह है कि तत्त्वज्ञान के साथ कषाय का उपशम होने से ही आनन्द होता है। कोई बेले-बेले पारणा करे परन्तु कषायों का निग्रह न करे तो वह सच्चा तपस्वी नही कहला सकता। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कषायो को नही शांत कर पाता तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नही है।

कषाय के अनेक रूप हैं। मोहनीय कर्म राक्षस के समान अनेक रूप धारण करके आत्मा को गिराने का प्रयास करता है। विवेकवान् और सावधान व्यक्ति सदा चौकन्ना रहता है और मोह से, चाहे वह किसी भी रूप मे ठगने के लिए आवे, दूर ही रहता है। कुछ साधुओ मे और श्रावकों मे साम्प्रदायिक संकीर्णता का रूप धारण करके भी वह आकर ठगने की कोशिश करता है। उसके इस रूप से बहुतेरे ठगे जाते है। कोई-कोई साधु, दूसरे गच्छ या सम्प्रदाय के साधुओ से अहकार के कारण वार्तालाप करने से नफरत करते है, साथ बैठ कर धर्मोपदेश अथवा तत्त्वचर्चा करना पसन्द नही करते। कोई-कोई अपनी

उत्कृष्टता दिखलाने के अभिप्राय से भी ऐसा करते हैं। वे समझते हैं कि जो कुछ हैं, हम ही हैं, हमारे सिवाय और किसी में साधुत्व ही नहीं है! कई अपने सम्प्रदाय के श्रावकों की समृद्धि का अभिमान करते हैं, कई अपने शिष्यों की संख्या की बहुलता और योग्यता का अभिमान करने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि नाना रूपों में मोहनीय कर्म आत्मा को मलीन बनाता है। विवेकशील पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह जगत् से अलिप्त रहकर, विरक्तभाव से, अपनी साधना मे जुटा रहे। आत्मा को गिराने वाले जितने भी कारण हैं, उन सबसे बचता रहे और समभाव में रमण करता हुआ प्रभु का भजन करे, प्रभु की स्तुति-प्रार्थना करे और उन्हीं को अपना आदर्श मानकर उनके ही चरणचिन्हों पर चलता हुआ अपना उत्थान करे।

भाइयों! निश्चित समझो कि तुम्हारी आत्मा का उद्धार निष्कषायभाव से ही होगा। कषाय आत्मा को गिराने वाला भाव है। कषाय से प्रेरित होकर अगर तुम किसी के गुणों को गुण के रूप मे स्वीकार न करोगे तो क्या उसके गुण मिट जाएंगे? कदाचित् दूसरे के गुणों को ईर्ष्या के कारण अवगुण समझ लोगे और अवगुणों के रूप में ही उन्हें प्रकाशित करोगे तो क्या वे गुण अवगुण बन जाएँगे? नहीं। ऐसा कुछ होने वाला नहीं है। तुम्हारे विपरीत समझने से दूसरे का कुछ भी बिगाड़ होने वाला नहीं है। अगर बिगाड़ होगा तो उसी का ही होगा। तुम स्वयं भ्रम या मिथ्या अभिनिवेश मे पड़ कर अपना अहित कर बैठोगे। अतएव इस प्रकार की बुरी वृत्तियों को अपने भीतर से निकाल बाहर करो।

मेरे कहने का आशय यह नहीं समझना चाहिए कि मैं गुड और गोबर को समान समझने और समानभाव से अपनाने का उपदेश दे रहा हूँ। मेरे कहने का आशय यह है कि तुम गुड को गुड और गोबर को गोबर ही समझो. गुड को गोबर मत समझो और गोबर को गुड मत समझो। ईर्ष्या द्वेष या भ्रम आदि के वश होकर सरल, समभावी, जगत् से विरक्त, संयमपरायण और आत्मकल्याण मे मग्न मुनियो को बुरा न कहो, बुरा न समझो। इसी प्रकार जिसमे ऐसे सद्गुण नहीं हैं फिर भी जो साधु का वेष धारण किये हैं, उन्हें व्यक्तिगत स्नेह या पक्षपात के कारण साधु मत समझो। दोनो बातें ध्यान मे रखने की आवश्यकता है। भगवान् ने मिथ्यात्व के भेद बतलाते हुए दोनो बातों से बचने की अगाही कर दी है। साधु को असाधु समझना भी मिथ्यात्व है और असाधु को साधु समझना भी मिथ्यात्व ही है। इसका अर्थ यही है कि साधुओ के विषय मे किसी भी प्रकार के पक्षपात से काम लेना उचित नही है। किसी के प्रति अनुराग धारण करके उसे सच्चा न होने पर भी अगर साधु समझ लोगे, तो तुम्हारी आत्मा का हित नही बल्कि अहित होगा। इसी प्रकार किसी के प्रति द्वेषभाव से प्रेरित होकर सच्चा साधक साधु होने पर भी उसे असाधु कहोगे, मानोगे या प्रकट करोगे, तब भी तुम्हारा अहित ही होगा। दोनो में से कुछ भी करने पर साधु की महत्ता को धक्का लगता है। साधु धर्म की जीती-जागती प्रतिमा है। उसके विषय में कदाग्रह, पक्षपात, राग, द्वेष, आदि से काम मत लो। साधु का अविनय करना धर्म का अविनय करना है और असाधु को साधु समझकर विनय करना अधर्म की उपासना करना है।

जो प्राणी सचमुच आत्मकल्याण का इच्छुक है जो आत्मकल्याण के लिए धर्म की उपासना करता है, जो धर्म की उपासना के लिए अपने हृदय को सरल, समभाव से परिपूर्ण और स्वच्छ रखना चाहता है, उसे धर्म के विषय में अवश्य ही मध्यस्थ भाव धारण करना चाहिए। इसीलिए कहा है –

ईर्या भाषा एषणा, ओलखजो आचार ।
गुणवंत गुरु देखने, वदो बारम्बार ॥

जो ईर्यासमिति का ध्यान रखते हैं, अर्थात् जिनकी चाल में संयम है, जिनकी भाषा में संयम है, जिनके खानपान में संयम है, जिनका समस्त आचार-विचार संयममय है, उन्हे पहचानो । उनके आचार की परीक्षा करके अगर यह सिद्ध हो जाय कि वे शास्त्रोक्त साधु के गुणो से युक्त हैं, तो उनके चरणो मे बारबार वन्दना करो, फिर यह मत सोचो कि यह हमारे सम्प्रदाय के है अथवा भिन्न सम्प्रदाय के है । सद्गुणो की पूजा करो, अवगुणो की पूजा से बचो । साम्प्रदायिकता का मलीन भाव मिथ्यात्व की ओर घसीट ले जाता है ।

मुनि भव-समुद्र में जहाज के समान है । वे सभी को संसार सागर के तीर पर पहुँचाने वाले है और बदले मे एक भी कोड़ी नही लेते । और जहाज वाले तो पूरा पैसा लेकर बहुत-बहुत दूर जाएगे तो विलायत के किसी बन्दरगाह पर छोड देंगे, मगर मुनि बिना पैसा लिये ही ससार के किनारे तक पहुँचा देते है ।

समुद्र के बीच, जहाज मे बैठा हुआ कोई मुसाफिर अगर जहाज मे से कूद पड़ता है तो उसे विवेकहीन और मूर्ख ही कहा

जायगा. इसमे न जहाज का दोष है और न मल्लाह का दोष है। यह तो उसी की बुद्धि का दोष समझा जायगा। इसी भाँति अगर कोई मनुष्य धर्म के जहाज मे बैठकर फिर कूद पडता है, अर्थात् ग्रहण किये हुए व्रत-प्रत्याख्यान को त्याग देता है तो वह उसी का महान् दोष है।

प्रभु नाम की नाव पर, पकड़ बिठाया हाथ।
आगे जाते गिर पड़ा, सद्गुरु का क्या वांक ॥

यह धर्म की लोकोत्तर नौका है और संसार-समुद्र में तैर रही है। इसके खिवैया गुरू महाराज हैं। अनन्त करूणा उनके अन्तः करण मे लहरा रही है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि वाहर समुद्र लहराता है। फिर भी अगर कोई अभागा चलती हुई नौका मे से जान-बूझ कर गिर पड़ता है, तो इसमे सद्गुरू का क्या दोष है? वे तो उसे भी, औरो की तरह ही, परले पार पहुँचाना चाहते थे। उनके अन्तः करण मे तो अन्यान्य पथिको की भाँति ही उस पर भी करूणा का ही भाव विद्यमान था।

भगवान् महावीर जब गृहस्थावस्था मे थे, उनके एक पुत्री थी। जमाली के साथ उसका विवाह हुआ था। बाद मे उस पुत्री ने और जमाली ने भी दीक्षा अगीकार कर ली थी। जमाली ने पाँच सौ के परिवार से दीक्षा ली थी। जमाली के सौभाग्य से उसे प्रभु महावीर जैसे महान् गुरू मिल गये। भगवान् ने उसे सहारा दिया और धर्म के जहाज मे विठला लिया।

जमाली पढ-लिख कर ठीक हो गये। उन्होने भगवान् की आज्ञा लेकर स्वतन्त्र विहार किया। अलग विचरते-विचरते एक

वार किसी गांव में पहुंचे तो बीमार हो गये। बुखार चढ़ आया। अधिक जी घबराया तो अपने चेलों से कहा—जल्दी बिस्तर बिछा दो। इधर चेले बिस्तर बिछा रहे थे, उधर जमाली बेचैन और व्याकुल हो रहे थे। उन्होने तत्काल प्रश्न किया-अरे बिस्तर बिछा दिया? चेलो ने उत्तर दिया-हाँ महाराज! बिछा दिया। जमाली उसी समय वहाँ जा पहुंचे। उन्होने देखा कि बिछौना फैला दिया गया है और चेले कुछ सलवट निकाल रहे हैं कुछ निकालना शेष है। यह देखकर ज्वर से व्याकुल जमाली से न रहा गया। उन्होने कहा—तुम तो कह रहे थे कि बिस्तर बिछा दिया है और आकर देखता हूं तो अभी तक बिछा ही रहे हो!

जमाली की बात सुनकर एक चेले ने नम्रतापूर्वक कहा—गुरू महाराज! 'कडमाणे कडे' अर्थात् जो काम किया जा रहा है, उसे किसी अपेक्षा से किया हुआ कह सकते है। ऐसा भगवान् ने बतलाया है और अपना सिद्धान्त है। इसी ख्याल से कहा गया था कि बिस्तर बिछा दिया है।

भाइयों! 'कडमाणे कडे' इस सिद्धान्त की चर्चा काफी सूक्ष्म है। उस पर मैं अधिक विवेचन नही करूंगा, फिर भी उसे समझाने के लिए एक उदाहरण दे देना उपयुक्त समझता हूं —

कल्पना करो, आप घर से बम्बई जाने के लिए रवाना हुए हैं और स्टेशन तक पहुंचे हैं, अथवा स्टेशन से भी रवाना हो चुके हैं और रास्ते मे है। उस समय कोई आदमी आपके घर जाकर आपके विषय मे पूछताछ करता है। जब वह पूछेगा कि अमुक साहब कहाँ हैं तो घर वाले क्या उत्तर देंगे? वे कहेंगे—

'बम्बई गये हैं।' यद्यपि घर वालों को पता है कि इस समय वे स्टेशन पर होंगे अथवा रास्ते में होंगे, फिर भी आम तौर पर उत्तर यही दिया जाता है कि बम्बई गये हैं। ऐसा उत्तर किसी को धोखा देने के लिए नहीं दिया जाता। उसके पीछे किसी प्रकार की धूर्तता नहीं होती। अतएव वह उत्तर सच्चा ही समझा जाता है। इसी प्रकार किसी किये जाते हुए काम को 'किया' ऐसा कह देना भी असत्य नहीं है सत्य ही है।

ऐसा कहने में एक सूक्ष्म दृष्टि है। कोई भी काम क्यों न किया जाय, वह चाहे छोटा हो या बड़ा, उसमें अनेक क्षण लगते हैं। शास्त्रीय शब्दों में कहें तो असंख्यात अथवा अनन्त समय लग जाते हैं। उस कार्य की निष्पत्ति प्रत्येक समय में आंशिक रूप से होती रहती है। उसके कुछ अंश हो चुकते हैं, एक अंश हो रहा होता है और कुछ अंश होने वाले होते हैं। ऐसी स्थिति में सुविधा के लिहाज से, जो अंश सम्पन्न हो चुके हैं उन्हें ध्यान में रख कर अगर 'हो गया' कह दिया जाता है तो इसमें कोई अयुक्ति नहीं है।

मगर उस समय जमाली की समझ में यह बात नहीं आई। उनकी खोपड़ी बदल गई। उन्होंने बेचैनी और आवेश में आकर कह दिया—भगवान् के इस सिद्धान्त को मैं गलत मानता हूँ। थोड़े दिनों बाद जमाली स्वस्थ हो गये, लेकिन यही कहने लगे कि भ० महावीर की मान्यता विपरीत है और मैं जो कहता हूँ वही सच है। इस प्रकार तीर्थंकर भगवान् का अवर्णवाद करते हुए जमाली गाँव गाँव विचरने लगे।

एक बार इधर-उधर घूमते-घूमते जमाली भगवान् महावीर के पास पहुँचे। बोले-मैं जब आपके पास से गया तब भी मुझे केवलज्ञान प्राप्त था और अब भी मुझे केवलज्ञान प्राप्त है। भाइयो! ऐसा कहे बिना उनकी दुकान जमती भी कैसे ? जनसमूह को अपनी ओर खींचने के लिए यह ढोंग करना जमाली को जरूरी मालूम हुआ। केवल ज्ञानी होने का दावा किये बिना भगवान् की भूल निकालने का उपाय ही और क्या था ? लेकिन गौतम स्वामी ने जमाली से कोई प्रश्न किया तो उसका भी उत्तर देते न बना। तब भगवान् ने कहा-जमाली, गौतम छद्मस्थ है और तुम अपने आपको केवली कहते हो। फिर भी छद्मस्थ के प्रश्न का उत्तर नही दे सकते ? अपनी वास्तविक स्थिति को समझो और सन्मार्ग पर आओ।

भगवान् के इतना कहने पर भी जमाली ठीक मार्ग पर नही आये। वह चुपचाप वहाँ से चल दिये और अपना राग अलापते रहे। परिणाम यह हुआ कि जिस ध्येय से साधुता स्वीकार की थी वह ध्येय पूरा नही हो सका। गौतम स्वामी अपने मार्ग पर अग्रसर होते गये तो उन्हें वही पद मिला जो भगवान् महावीर स्वामी को और अनन्त तीर्थंकरो को मिला था। मगर जमाली को कायक्लेश सहन करने के कारण देवयोनि मे जन्म लेना पड़ा और उसमे भी हीन कोटि की योनि मे।

भगवतीसूत्र की यह बात है। जब मनुष्य की बुद्धि बिगड जाती है तो उसे सत्य, असत्य नजर आने लगता है। मिथ्यात्व के उदय से सच्ची बात को मनुष्य झूठी समझता है और झूठ को सत्य मानकर अपनाता है। कोई सच्ची बात उसके सामने कह

दे तो मारने को दौड पड़े। बुद्धि विपरीत होने पर समस्त साधना विफल हो जाती है।

तो जमाली जहाज से नीचे कूद पड़ा और संसार-सागर मे डूब गया तो कोई क्या करे ? भगवान् महावीर स्वामी भी क्या करते ? यह तो उसी के कर्मों का फल है। इसी प्रकार मैं आपको किसी प्रकार का त्याग कराऊँ और आप त्याग करके उसे भग कर दें मैं आपको धर्म के जहाज मे बिठलाऊँ और आप उसमें बैठकर फिर गिर जाएँ तो मेरा क्या अपराध है ? प्रथम तो धर्म के जहाज मे बैठना ही कठिन होता है और फिर उससे न गिरना और बड़ी बात है। धर्म पर दृढ एव अविचल आस्था हो जाना और फिर उस आस्था का अन्त तक कायम रहना बडी बात है। जो पुण्यशाली हैं, भाग्यवान् हैं, उन्हे ही ऐसी स्थिर आस्था प्राप्त होती है।

ज्ञानवान् और कषायविजेता मुनि संसार की भयानक आग मे से बाहर निकल चुके हैं। वे शान्ति का अपूर्व आनन्द अनुभव करते हैं। मगर जब वे जगत् के जीवो को नाना प्रकार की व्याधियों की भट्टी मे पडा हुआ देखते हैं, विविध प्रकार की वेदनाओ से व्याकुल पाते हैं, तब उनका करुणाभाव उग्र हो जाता है। उनके चित्त मे अनुकम्पा की ऊर्मियाँ उठने लगती हैं। तब वे लोगो से कहते हैं—अरे सुख के अभिलाषी ! तू सबसे पहले अपनी दृष्टि को निर्मल बना। दृष्टि शुद्ध होगी तो तुझे शान्ति का मार्ग अपने आप नजर आने लगेगा। तू स्वय शान्ति का अनुभव कर और दूसरो को भी शान्ति पहुँचा। शान्ति ! शान्ति शान्ति ! अनादि काल से चौरासी मे चक्कर लगा रहा है, अब

शान्त हो ! जन्म-मरण की असीम वेदनाएँ भुगत चुका है, अब शान्त हो। षट्काया का आरम्भ-समारंभ बहुत कर चुका है ! अब शान्त हो ! संसार के सभी प्रकार के भोगों को भोग चुका है, कोई भी भोगना शेष नहीं रहा है, अब शान्त हो ! राग द्वेष की ज्वालाओं में बहुत समय से जल रहा है, अब शान्त हो। अरे शान्ति के पथ पर चल और अशान्ति के मार्ग से हट। परमात्मा के पावन नाम को रट, संसार में मत भटक ! त्याग दे सब प्रकार की खटपट और शान्ति के सरोवर में अवगाहन करने के लिए आ-जा झटपट !

जगत् में तीन प्रकार के जीव हैं। उनका स्वरूप समझने के लिए उदाहरण देना उपयुक्त होगा:—

तीन मित्र कमाई करने के लिए परदेश गये। कमाते-कमाते तीनों मालदार हो गये। जब मालदार हो गये तो उन्हें स्वदेश लौटने की सूझी। तीनों जहाज पर सवार होकर आ रहे थे कि समुद्र में तूफान आया। ऐसा तूफान आया कि जहाज संभल न सका और एक चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो गया। भाग्य की बात कि उन तीनों मित्रों को जहाज का एक-एक टुकड़ा हाथ आ गया। वे उस टुकड़े पर बैठे रहे। उसे अभीष्ट दिशा में ले जाना उनके वश की बात नहीं थी। अतएव जिस तरफ की आंधी आती, उधर ही जहाज का टुकड़ा बह जाता और वे लोग भी उधर ही जाते थे। भूखे-प्यासे रहते तीन दिन बीत गये। घोर संकट में फंस गये। घर में आराम से बैठा हुआ मनुष्य उस संकट की पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकता। उस भयानक संकट को वही समझ सकता है, जिसके सिर पर

बीत रहो हो ! प्रथम तो प्रतिक्षण मौत की आशंका और फिर भूख तथा प्यास ! चारो ओर पानी ही पानी और वह भी अथाह और असीम ! किसी ओर किनारा नहीं नजर आता, कहीं मनुष्य की सूरत नही दिखाई देती, कोई सहायक नही मालूम होता ! अब मरे, अब मरे, बस यही भावना हृदय मे उत्पन्न होती है ! ऐसा समय बडा ही विकराल होता है ! जीवन की क्षणभगुरता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है !

तो वह तीनों मित्र कभी इधर और कभी उधर हिलोरें खा रहे थे। भाग्ययोग से हवा का एक प्रबल झौका आया और वे एक किनारे की ओर बह चले। बहते-बहते किनारे के निकट पहुँचे। समुद्र के किनारे एक बडा सा नगर दिखाई दिया और कुछ आदमी भी घूमते हुए नजर आये। उन्हें जीवन-रक्षा की आशा हुई। उधर उन आदमियो की दृष्टि भी इन पर गई।

घोर संकट मे फँसे मनुष्य को देखकर मनुष्य के दिल में दया जाग उठती है। निर्दय से निर्दय मनुष्य के दिल मे भी दया की देवी, किसी न किसी कोने मे विराजमान रहती है। जन्म का हिंसक शेर जैसा पशु भी अपनी सन्तान पर दया-भाव रखता है। ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक ही था कि किनारे के लोगो को दया आई और उन्होने उन तीनो को समुद्र से बाहर निकालने का विचार किया। उन्होने एक रस्सा फेंका और कहा कि तुम इसे पकड लो और हम तुम्हे खींच लेंगे। तीनो मे से एक ने फेंका हुआ रस्सा पकड लिया। लोगों ने उसे खींच लिया वह तट पर आ पहुंचा। बाहर आने पर उन लोगो ने उसकी यथोचित सेवा की, कहा भी है:—

खिदमते धर्म पर जो कि मर जाएँगे ।
नाम दुनिया में रोशन वो कर जाएँगे । ध्रुव ।।

विपत्ति में पड़े हुए जीव की सेवा करना एक उत्तम कर्त्तव्य माना गया है। वास्तव मे प्राणी मात्र की सेवा करना ही धर्म की सेवा करना कहलाता है। पर आज बहुत कम लोग इस तथ्य को समझते हैं। अधिकांश लोग अपना पेट भर लेने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। मगर याद रक्खो, सेवा करते करते मर जाओगे तो मरते-मरते तीर्थंकर गोत्र का भी बंध करते जाओगे। सेवा कभी निष्फल नही जाती। गांधीजी ने सेवा करते-करते शरीर छोड़ दिया तो समस्त विश्व में उनका यश फैला हुआ है। वे अपना नाम रोशन कर गये हैं। उन्होने मानव-जाति की सेवा के लिए अपना समग्र जीवन और समस्त शक्तियाँ समर्पित न कर दी होती तो कौन उनके नाम को पूछता? लाखो करोडों आदमी पैदा होते और मरते हैं। कौन उनका नाम जानता है? मगर एक गांधीजी हैं, जिनका नाम आज भी देश-विदेश मे प्रसिद्ध है और बालक-बूढ़े सभी की जबान पर चढा रहता है। उनका नाम सुनते ही लोगो का हृदय श्रद्धा से भर जाता है। यह सब किसका प्रताप है? गाधीजी के शरीर का नहीं। शरीर तो उनका दुबला—पतला था और खास खूबसूरत भी नही था। तो क्या उनकी विद्वत्ता का प्रताप था? नही। अवश्य वे बैरिस्टर थे और विद्वान् भी थे, मगर दुनिया में उनसे बढ़कर विद्वान् भी मिल सकते हैं। पर उन्हे बहुत थोड़े लोग जानते हैं। दरअसल यह प्रताप उनकी सेवापरायणता का ही था। जनसमाज की सेवा करना ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था। सेवा करते-

करते ही उन्होने शरीर छोड़ा और अमर बन गये । युग-युग तक विश्व के और खास तौर मे भारत के इतिहास में उनके नाम का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया जाता रहेगा।

गांधीजी के अतिरिक्त और भी अनेक स्वार्थ त्यागी नेता हुए और हैं, जिनकी शक्तियां देश की भलाई मे लगी और लग रही हैं, आप उनकी तरह सेवा न कर सकें-अपना सर्वस्व समर्पित न कर सकें, तो भी उनके हितकर आदेशों पर चल कर तो अवश्य उनकी सहायता कर सकते हैं। आज आपकी मातृभूमि भी अनेक प्रकार से संकटो के समुद्र मे फँसी हुई है। आप अपनी थोड़ी-सी भी शक्ति उसके उद्धार मे लगा दें-सभी थोड़ा-थोड़ा त्याग करें तो क्या देश एकदम ऊँचा नही उठ आएगा ? अगर इतना भी आपसे न हो सके तो कम से कम उसे डुबाने के काम तो मत करो ! व्यापारी अपने व्यापार मे प्रामाणिकता वरते, ब्लेक मार्केट न करें, नौकरी पेशा लोग ईमानदारी के बिना अपना काम न करें, अधिकारी लोग रिश्वत लेना बन्द कर दे, सब दूसरे की कठि-नाइयो को हल करने मे योग दें भोग-विलास की वस्तुओ को अधिक से अधिक त्यागे, परिश्रम करें, तो देश का कल्याण हो। आप स्वयं कुछ न करें और सिर्फ स्वार्थ साधने मे ही लगे रहें और चाहे कि देश की समस्याएँ सरकार हल कर दे, तो यह सभव नहीं है। देश के उद्धार मे सभी देशवासियों को अपने अपने योग्य स्वार्थ की आहुति देनी होती है।

हाँ तो यह कह रहा था कि किनारे के लोगों ने रस्सा फेंक कर और फिर उसे खीच कर एक आदमी को बाहर निकाला। उन्होने फिर रस्सा फेंका और दूसरे को खीचना चाहा। दूसरे ने

रस्सा पकड लिया, मगर कहा—जरा ठहर जाओ। मैं विश्राम करके फिर किनारे पर आऊँगा।

तीसरे आदमी ने कहा—भाई, मेरी आने की इच्छा नहीं है अथवा रस्सा पकडने की ताकत भी नही है

अब आप ही सोच देखें कि अगर यह दोनो किनारे पर नही पहुँचना चाहते तो रस्सा फेंकने वालों का क्या अपराध है?

इसी प्रकार ससार-सागर मे जीव फंसे हुए हैं। कर्म की हिलोरें आती हैं और वे कभी नरकगति की ओर तो कभी देवगति की ओर, कभी मनुष्यगति की तरफ तो कभी तिर्यञ्चगति की तरफ बहते रहते हैं। कभी प्रकृष्ट पुण्य की प्रबल लहर आती है, जिन धर्म की प्राप्ति हो जाती है और उस पर श्रद्धा हो जाती है तो जीव भव-सागर के किनारे के निकट पहुँच जाते हैं। उन्हें दुःखी देखकर तटवर्ती सतजन करुणा करके उन्हे उपदेश देते हैं। कोई जीव उपदेश रूपी रस्से के सहारे खिच आते हैं। संतजन उन्हे खींचकर पाटे पर बिठलाते हैं—साधु बना लेते हैं और उनकी यथोचित सार-संभाल करते हैं: दूसरी श्रेणी के लोग ऐसे हैं जो हमारे पास तो नही आते, मगर रस्सा पकड जरूर लेते हैं। वे श्रावक धर्म का पालन करते हैं। उन्होने यदि रस्सा छोड न दिया तो उनका भी कल्याण होगा तीसरी श्रेणी के लोग वे हैं जो कहते हैं कि हमे रस्सा पकडना ही नहीं है। अर्थात् जो न धर्मोपदेश सुनना चाहते है, न सत्संगति करना चाहते हैं। वे अपनी हालत में मस्त हैं। ऐसे जीव विशेष दया के पात्र हैं। आह! इनका उद्धार कैसे होगा? मगर उनका उद्धार नही होता तो कोई क्या करे?

भव–सागर मे पापो की नैया,
अधबीच आय के डूबी रे लो।

भाइयो ! तीसरे आदमी ने समझाने पर भी रस्सा नही पकडा। परिणाम यह आया कि एक जोरदार हिलोर आई और उसे बीच समुद्र में ले गई। उसका तख्ता उलट गया। अन्त मे उसे प्राण गँवाने पड़े।

तुम लोगों ने मनुष्य का जन्म पाया, वीतराग-वाणी श्रवण करने की अभिरुचि तुम्हारे चित्त मे उत्पन्न हुई अतएव तुम भव–सागर के तट के निकट आ गये हो। मैं उपदेश का रस्सा तुम्हारे पास फेंक रहा हूं। आ जाओ, अपना उद्धार कर लो। यह अपूर्व अवसर है। यह अवसर स्थायी नही है। कर्म की एक हिलोर आते ही न जाने किस ओर बह जाओगे, फिर पश्चात्ताप करोगे और पश्चात्ताप करके भी कुछ न पाओगे।

देखो, अभी तुम्हारे पुण्य का उदय आया है और इसी कारण तुम्हे अनुकूलताएँ प्राप्त हैं। विवेक है बुद्धि है, इन्द्रियां परिपूर्ण है, शरीर स्वस्थ है। जब तक यह पुण्योदय है तब तक आत्मा का कल्याण करडालो। पुण्य के बिना भवसागर से पार उतरना कठिन है। जिसके पुण्य का उदय नही है वह धर्म क्या करेगा ? जो बावजी, रोटी का टुकड़ा दो' की रट लगाये फिरता है, जो पेट पालने के लिए दर-दर भटकता फिरता है उसे भगवान् का भजन करने की फुर्सत ही कहा है ? पुण्यवान् को ही सद्धर्म की प्राप्ति होती है। वही दान, शील, तप और भावना का सेवन कर सकता है। पुण्यहीन बेचारा क्या करेगा ?

'पुण्यहीन खेती करे के तो बलद मरे के उपड़े।'
'पुण्यहीन जीमने जावे, लोठ्यो गमावे या माखी खावे।'

पुण्यहीन जन की लालसा बहुत होती है परन्तु उसे लड्डू नही मिलते। किसी सेठ की लड़की का विवाह था। विवाह के अवसर पर एक पुण्यहीन को न्योता मिला। उसकी प्रसन्नता का पार नही रहा। शामको जीमने जाना था। उसने सुबह भी भोजन नहीं किया। शामको लोटा लेकर भोजन करने गया। जीमने बैठा तो 'लाओ सा लड्डू' 'परोसो सा लड्डू' की झड़ी लगा दी। थाली की तरफ उसका ध्यान नही था, लड्डूओ पर ही निगाह रख रहा था। नतीजा यह हुआ कि किसी ने उसका लोटा ही उठा लिया! भोजन के साथ पेट मे मक्खी चली गई। वमन हो गया। लालसा पूर्वक खाये हुए लड्डू बाहर निकल गये। भाई! पुण्य का काम बड़ा जबर्दस्त है।

जो पूरव भव में पुण्य कमा कर आये,
वे मनवंछित संयोग सकल फल पाये।।ध्रुव।।

पुण्य के उदय से ही मन चाहे पदार्थों की प्राप्ति होती है। मगर जगत् मे हम उलटी ही बात देखते हैं। लोग अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करने के लिए पाप का आचरण करते हैं! ऐसे लोग कितने विवेक हीन हैं! उन्हें समझना चाहिए कि पाप का आचरण करने से अनिष्ट सामग्री मिलती है, इष्ट की प्राप्ति के लिए पाप का आचरण करना आम पाने के विचार से बंबूल की खेती करने के समान है।

भविष्यदत्त चरित—

भाइयो ! भविष्यदत्त इसी प्रकार प्रबल पुण्य कमाकर आया था। उसके चरित का वर्णन आपको इसलिए सुनाता हूं कि आप अपने जीवन को उसी साचे में ढाल सकें।

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक नगर था। हस्तिनापुर तो आज भी मौजूद है, मगर जिस समय की यह कथा है, उस समय उस नगर की शोभा और समृद्धि कुछ और ही थी। उस समय वहां नरेन्द्रसिंह नामक राजा राज्य करते थे। राजा बडा तेजस्वी, प्रतापवान् बलवान् और न्यायपरायण था। उसकी प्रेमवती नामक एक रूपवन्ती रानी थी। राजा अपनी प्रजा को प्राणों के समान प्रिय अनुभव करता और आनन्द के साथ उसका पालन करता था। प्रजा की सुख–सुविधा को ही वह अपना सुख मानता था।

इसी नगर में एक करोडपति सेठ रहता था। धनाढ्य होने के साथ ही साथ धर्म में भी उसकी गहरी रुचि थी। वहां एक नगर-सेठ भी थे। सब सेठो ने मिल कर उन्हे नगर सेठ की पदवी दी थी। उसके घर भी लक्ष्मी का विशाल भण्डार था। पुण्य के उदय से उनकी एक ही पत्नी थी और उसका नाम कमलश्री था। कमलश्री रूप–लावण्य से मंडित थी धर्म का आचरण करने वाली थी और बड़ी पुण्य शालिनी थी।

कमलश्री की कुक्षि के एक पुत्र का जन्म हुआ। पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में खूब खुशियां मनाई गई। बारहवें दिन अशुचि–

निवारण करके पुत्र का नाम भविष्यदत्त रक्खा गया। भविष्यदत्त की सेवा के लिए पांच धायों की नियुक्ति की गई। कोई वस्त्र पहनाती, कोई स्नान कराती, कोई खेलाती और कोई सुलाती थी। इस प्रकार भविष्यदत्त सुख के साथ अपना शैशव व्यतीत करने लगा।

धीरे-धीरे भविष्यदत्त आठ वर्ष का हो गया। तब माता-पिता ने विद्याध्ययन कराने के लिए उसे गुरु के पास भेज दिया। लड़का बुद्धिमान् था, क्योंकि उसने पहले प्रबल ज्ञानावरण कर्म का बन्ध नही किया था। वह परीक्षा मे कभी अनुत्तीर्ण नही हुआ। चित्त लगा कर अध्ययन करने मे वह कभी प्रमाद नही करता था। वह जितना बुद्धिमान् था, उतना ही विनयशील भी था।

गुरु को योग्य शिष्य की प्राप्ति हो जाना और शिष्य को सुयोग्य गुरु का मिल जाना भी पुण्य का ही फल है। भविष्यदत्त की कुशाग्र बुद्धि और विनयशील वृत्ति देख कर उनके गुरुजी अत्यन्त सन्तुष्ट थे। उन्होने सच्चे अन्त.करण से, प्रेमपूर्वक भविष्यदत्त को शिक्षा दी। प्राचीनकाल मे भारत मे, शिक्षा की पद्धति आज के समान नही थी। अब तो सारा ढग ही बदल गया है। उस समय शिक्षक के पास ही बालक को भेज दिया जाता था। बालक अपने माता-पिता के घर को घर नहीं समझता था, बल्कि गुरु के घर को ही अपना घर मानता था। गुरु और गुरु पत्नी भी उसे अपनी ही सन्तान समझकर ग्रहण करते थे-प्रेमपूर्वक उसका पालन-पोषण करते थे और साथ ही जीवनोपयोगी विषयो की शिक्षा उसे मिलती थी।

आज विद्यार्थी के ऊपर पाठ्यक्रम की पुस्तकों का भारी बोझा लाद दिया जाता है। यह बोझा इतना भारी होता है कि विद्यार्थी की सम्पूर्ण शक्ति उसके भार से दब जाती है। केवल दिमागी पढ़ाई पढाई जाती है। प्राचीन काल की शिक्षा सर्वाङ्गीण थी। वह मस्तिष्क का विकास करने वाली हृदय को सहानुभूतिशील बनाने वाली, आत्मा का भान कराने वाली और समग्र जीवन को ऊँचा उठाने वाली थी। उस शिक्षा के साथ सुसंस्कारों का भी मेल होता था। इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ मनुष्य अपने जीवन-संग्राम मे विजयी होता है। एकांगी शिक्षा जीवन को भारभूत बना देती है। भविष्यदत्त के सौभाग्य से उसे ऐसी सर्वांगीण शिक्षा देने वाले गुरु का संयोग प्राप्त हो गया। भविष्यदत्त को पाकर गुरु अपने को पुण्यवान् समझा और भविष्यदत्त ने समस्त कलाओ मे पारंगत, प्रेममूर्त्ति सुयोग्य गुरु को पाकर अपने आपको भाग्यशाली समझा।

इधर सेठानी अर्थात् भविष्यदत्त की माता धर्म ध्यान करती हुई अपना समय व्यतीत कर रही थी। उसका हृदय दयालु और कोमल था। उदारता से परिपूर्ण था। आशा लगा कर जो कोई भी उसके द्वार पर आता, कभी खाली हाथ नही लौटता था। वह जानती थी कि दान देने से लक्ष्मी का क्षय नही होता है। बल्कि दान देने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और वृद्धि होती है। लक्ष्मी पाने की सार्थकता उसे संग्रह कर रखने में नही है, जमीन मे गाड देने मे भी नही है। वही व्यक्ति वास्तव मे लक्ष्मीवान् हैं जो अपनी लक्ष्मी को परोपकार मे लगाता है। वह वर्त्तमान में प्राप्त लक्ष्मी से परोपकार करके भविष्य के लिए उस लक्ष्मी को

दासी बना लेता है। इसके विपरीत, जो कजूस धन का संचय करता है और उस संचय को बढता देख हर्षित होता रहता है, उसे धर्म-कार्य में शासन की प्रभावना में, परोपकार मे, दीन-दुखियो की सहायता मे, या अन्य किसी पुण्यकार्य में नहीं लगता है, तुम्ही सोचो कि उसकी लक्ष्मी उसके क्या काम आई? वह उस लक्ष्मी का स्वामी है या सेवक मात्र है? वह लक्ष्मी उसे ऊँचा उठाएगी या नीचे की ओर ले जाएगी?

भविष्यदत्त की माता ने किसी सद्गुरु से शिक्षा पाई होगी। इसी कारण वह लक्ष्मी का सदुपयोग करना सीख गई थी। दान और परोपकार मे वह कभी पीछे नहीं रही। उदारता उसकी आदत बन गई थी। बहुत-सी बहिनें द्वार पर आये दीन दरिद्रो को कुछ देती हैं, मगर कटुक वचन भी कह देती हैं, मगर सेठानी ऐसा नही करती थी। वह आये हुए का यथायोग्य सत्कार करती थी और मधुर तथा प्रेमपूर्ण वाणी से उसको आश्वासन भी देती थी।

सेठानी को किसी प्रकार की कमी नही थी। संसार में जो भी सुख समझे जाते हैं, उसे सभी प्राप्त थे। पति का प्रेम, धन-सम्पत्ति की प्रचुरता, सुयोग्य सन्तान, स्वस्थ शरीर! और उसे चाहिए ही क्या था? वह सन्तोष के साथ रहती और भगवान् का भजन भी किया करती थी।

परन्तु 'सब दिन जात न एक समान!' जीवन का सारा समय एकसी स्थिति मे व्यतीत होना कठिन है। कब किसके कौनसा कर्म उदय मे आ जायगा, यह कोई नहीं जानता। न

मालूम पूर्वोपार्जित कौन-सा अशुभ कर्म उसका उदय मे आ गया ! अचानक सेठ का हृदय सेठानी के प्रति उदासीन हो गया। अब तक पति का उसके प्रति जो अनुराग था, वह कम हो गया। यह अपनी पत्नी से उदासीन और विमुख रहने लगा।

सेठानी अपने पति के हृदय-परिवर्त्तन को ताड़ गई। उसे यह दशा देखकर कितना कष्ट हुआ, कहना कठिन है। वह समझ नही सकी कि पति क्यो मुझ पर अप्रसन्न हैं ? साधारण स्त्री होती तो पति को अप्रसन्न देख कर स्वयं भी ऐंठ जाती। पर वह सुशीला थी, अपने कर्त्तव्य को भलीभाँति समझने वाली थी और विवेक शीला थी। अतएव न वह क्रुद्ध हुई, और न उसने अपने चित्त में किसी प्रकार की दुर्भावना ही उत्पन्न होने दी। उसने सब से पहले अपने व्यवहार की आलोचना की। वह सोचने लगी, कि मुझसे कोई काम ऐसा तो नही हो गया है, जिससे मेरे पति को आघात लगा हो ? जब उसने अपनी आलोचना कर ली और कोई भी ऐसा व्यवहार उसके ध्यान में न आया तो उसने सोचा-अब व्यर्थ संकल्प-विकल्प मे पड़ने से क्या लाभ है ? दूसरे के विषय में अपनी कल्पना से कोई सम्मति बना लेने की अपेक्षा यही उत्तम है कि उसी से साफ-साफ बात पूछ ली जाय। ऐसा करने से बहुत बार गलतफहमी दूर हो जाती है।

अन्त में सेठानी अपने पति के पास पहुँची। उसनें सहज विनम्रता एवं मधुरता के साथ कहा-नाथ ! कुछ दिनो से मैं आपका हृदय बदला हुआ देखती हूं। आप मुझ पर असीम स्नेह की वर्षा करते आये हैं। पर अब ऐसा नही कर रहे हैं। मैंने बहुत सोच-विचार किया, किन्तु मुझे अपना कोई अपराध ध्यान में नहीं

आया। बहुत वार मनुष्य अपने आपके विषय में भूल कर बैठता है। उसे अपनी बुराई ध्यान मे नहीं आती। वह दूसरों के दोषों को बहुत जल्दी देख लेता है, मगर अपने निज के दोषो को नहीं देख पाता। सम्भव है, मैं भी ऐसे भ्रम मे पड़ गई होऊँ! अतएव मैं आपसे ही पूछ लेना उचित समझती हूं। कृपा कर बतलाइए कि मुझसे क्या अपराध बन गया है? क्या मैंने आपकी सेवा मे कोई प्रमाद किया है? आपका अपमान किया है? आपके चित्त को किसी भी प्रकार से कष्ट पहुंचाया है? आपकी रुचि के प्रतिकूल कोई व्यवहार किया है? किस कारण आप मेरे प्रति उदासीन हुए है? आपके बतलाने से मैं अपनी गलती को समझ कर उसे दूर कर सकूंगी।

सेठानी ने आगे कहा-प्राणाधार! आप जानते हैं कि स्त्री के लिए पति ही गति है। संसार के समस्त सुख एक ओर और पति का सुख दूसरी ओर हो तो पति का सुख ही उसके लिए मूल्यवान् होगा। पति अगर रुष्ट हों तो पत्नी को कोई भी सुख प्रीतिकर नहीं हो सकता। पति की प्रसन्नता ही कुलीन स्त्री का सर्वस्व है, वही उसका मूल्यवान् धन है, वही उसका जीवन है। पत्नी का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य अपने पति को सन्तुष्ट रखना है। जो स्त्री अपने पति को सन्तुष्ट न रख सकेगी, उसका जीवन वरदान नहीं, अभिशाप बन जायगा। नाथ! आपका सुख ही मेरा सुख है, आपकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है। मैं आपको पूर्ण रूप से प्रसन्न और सन्तुष्ट देखना चाहती हूं। अतएव मुझ से जो त्रुटि हुई हो, उसे स्पष्ट कह दीजिए। कोई बात मन मे न रखिए।

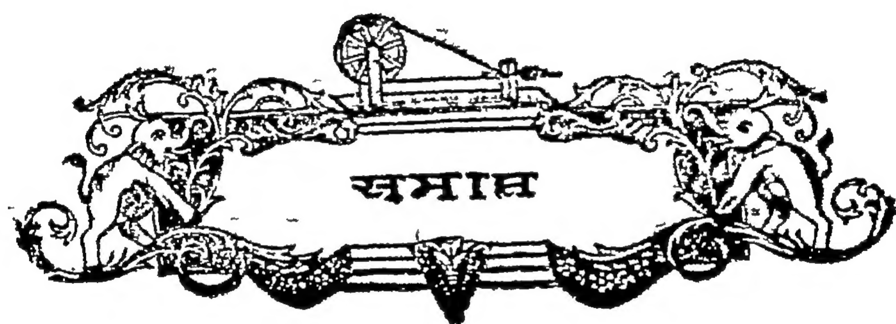
अपनी पत्नी की मधुर, विनम्रतापूर्ण और धर्ममय वाणी सुन कर सेठ का हृदय गद्गद हो गया । उसने अपने हृदय को टटोला । सेठानी का कोई भी अपराध उसके ध्यान मे नही था । अतएव उसने उत्तर दिया प्रिये ! तुम जैसी पतिव्रता स्त्री का संयोग मिल जाना बडे पुण्य का फल है । तुम आदर्श रमणी हो, सदैव अपने कर्त्तव्य मे सावधान रहती हो । तुमसे कोई त्रुटि नहीं हुई है । कोई भी अपराध नही हुआ है । फिर भी न जाने क्या कारण है कि मेरा चित्त तुम्हारी ओर से हटता जाता है । मैं उसे बहुत समझाने का यत्न करता हूं, मगर समझा नही सकता । कोई आन्तरिक और अज्ञात कारण मुझे तुमसे दूर ही दूर घसीटे लिये जाता है । ऐसी स्थिति मे मैं तुम्हे क्या सफाई दूं ?

देखो, रामचन्द्रजी ने क्या अपराध किया था कि उन्हें वनवास करना पडा ? सीता देवी ने क्या बुराई की थी, जिससे उन्हे वनवास के भयानक कष्ट भुगतने पडे ? श्रीपाल मे क्या दोष था कि उन्हे जगलो की खाक छाननी पडी ? शीलवान् सुदर्शन को किस दोष के कारण शूली पर चढना पडा था ? पवनकुमार ने अजना जैसी सती का किस कारण परित्याग किया था ? क्या अजना का रत्ती भर भी अपराध था ? नही, ऐसा कुछ भी नही था फिर भी किसी अज्ञात् कारण से ऐसा हुआ ।

प्रिये ! मैं तुम्हारा कोई दोष नही देख पाता । तुम सुशीला हो,कर्त्तव्यनिष्ठा हो,निर्दोष हो । फिर भी अब मेरा चित्त तुम्हे नहीं चाहता । अतएव तुम्हारे लिए यही हितकर है कि तुम अपने पीहर चली जाओ । इसी में तुम्हारा हित है और इसमे मेरा भी हित है ।

८-१०-४८

—★—


समाप्त